CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

# शककालीन भारत



प्रशानकुमार जायसवाल

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

3557

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

# शककालीन भारत

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इतिहास जीवन की थाती है। उसमें हमारे उन गुणों का सञ्चय होता है जिनके कारण हम ऊपर उठे और हमारी उन भूलों की गाथा होती है जिनके कारण हम गिरे। इतिहास हमें पुकारकर कहता है, सँभलो, ये तुम्हारी भूलें थीं; इनसे बचो और अपने उन गुणों की ओर देखो जिनमें तुम्हारा गौरव प्रकाशित हुआ था। इतिहास हमारे निराशा से थके हुए मन के अन्धकार का प्रकाशस्तम्भ है। वह हमसे कहता है, श्रेय को लो और प्रेय को छोड़ो। यही इतिहास का उपयोग है और यही उसका गौरव है।

—श्री रामनाथ 'सुमन'

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

# शककालीन भारत

लेखक

प्रशान्तकुमार जायसवाल

भूमिका

डा० अवध किशोर नारायन

[अध्यक्ष प्राचीन इतिहास विभाग, काशी विश्वविद्यालय, वाराणसी]

सम्पादक

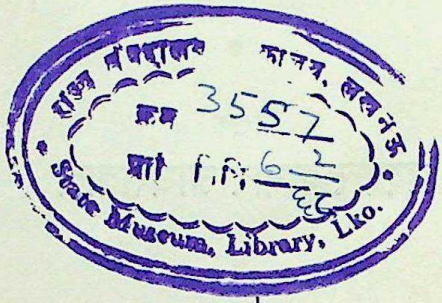
श्रीरंजन

प्रकाशक

साधना-सदन

लूकरगंज, इलाहाबाद-१

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh




प्रकाशक
साधाना-सदन
लूकरगंज, इलाहाबाद-१

मुद्रक
भार्गव प्रेस,
१, बाई-का-बाग, इलाहाबाद-३

प्रथम संस्करण
फरवरी : १९६३

मूल्य
चार रुपये पचास नये पैसे

954.01
अ 2T

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh



# समर्पण

श्री भगीरथजी कनोडिया

जिनके व्यक्तित्व ने मुझे

आकर्षित किया

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

# भूमिका

हिन्दी में अभी भी ऐतिहासिक साहित्य की कमी है। स्कूलों और कालेजों के लिए कुछ पाठ्यग्रन्थ तो उपलब्ध हो रहे हैं, किन्तु स्वतन्त्र रूप से शोधग्रन्थ या किसी कालविशेष अथवा राजवंश विशेष का विवरणात्मक इतिहास हिन्दी में उतनी संख्या में उपलब्ध नहीं है, जितनी उसकी आवश्यकता होनी चाहिए। एम० ए० और पी०-एच० डी० के शोध ग्रन्थों के लिए कई विश्वविद्यालयों में हिन्दी का माध्यम स्वीकार कर लिया गया है और यदि इनका भी समुचित ढंग से प्रकाशन की व्यवस्था हो तो हिन्दी में ऐतिहासिक साहित्य का संवर्धन एक अच्छे ढंग से हो सकेगा। प्रस्तुत ग्रन्थ मूलतः एम० ए० की उपाधि के लिए निबंध के रूप में लिखा गया था। बड़ी प्रसन्नता की बात है कि श्री प्रशान्तकुमार जायसवाल के उत्साह के फलस्वरूप और प्रकाशक श्री श्रीरंजन के सहयोग से इसका हिन्दी में प्रकाशन संभव हो पा रहा है।

शक जाति विशाल सीथियन जाति की एक शाखा थी, जिसका मूल निवास मध्यएशिया का भूमि प्रदेश था—कास्पियन सागर से इसिक्कूल झील तक यह फैले हुए थे। शक जाति इसकी पूर्वतम शाखा थी जो इसिक्कूल झील के कांठे में बसी थी। चीनी वृत्तांतों में इनको 'साइ' कहा गया है। इन्हीं साइ ( Sai ) सके ( Sacae ) अथवा शक जाति को, ह्स्युंग-नु जाति के आतंक से भागकर आई यूह-चियों द्वारा आक्रमण कर दिये जाने के कारण, अपना मूल निवास छोड़ना पड़ा। उन्हें सुरक्षित स्थान की आवश्यकता थी। वह दक्षिण की ओर बढ़े और अनेक राज्यों की स्थापना करते हुए भारत, की-पिन में, पहुँचे और वहाँ पर अपना शासन स्थापित किया। की-पिन का समीकरण अभी भी विवाद का विषय है फिर भी चीनी वृत्तान्तों के विवेचन से मुझे लगता है कि प्रारंभ में की-पिन

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh



का अर्थ स्वात और पश्चिमी गंधार से रहा होगा। कालांतर में पूरे कश्मीर को की-पिन कहा जाने लगा और बाद में तो कुषाण साम्राज्य को भी कभी-कभी की-पिन नाम से जाना जाता था। भारत में इनके और भी कई केन्द्र थे। इन्होंने लगभग चार सौ वर्षों तक शासन किया और यहाँ के जन-मानस में घुल-मिल गये। मुसलमानों और अंग्रेजों से पूर्व जिस विदेशी जाति ने बहुत दिनों एक भारत-भूमि पर शासन किया और यहाँ के धर्म, समाज, संस्कृति एवं कला को प्रभावित किया, उनमें शकों का स्थान प्रमुख है। भारतीय संस्कृति के संवर्धन में शकों के योगदान के पहलुओं का मूल्यांकन करना शोध का विषय होना चाहिए।

इस विषय पर अभी तक अंग्रेजी अथवा हिन्दी में इतना विस्तृत विवेचन किसी ने प्रस्तुत नहीं किया है। यद्यपि शकों के जीवन पर अंग्रेजी में कई ग्रन्थ उपलब्ध हैं तथापि वे सभी विशेषकर उनके राजनीतिक जीवन का ही चित्रण करते हैं। अंग्रेजी भाषा में स्वतंत्र रूप से डा० सुधाकर चट्टोपाध्याय, अध्यक्ष इतिहास विभाग, विश्वभारती, ने ग्रन्थ प्रस्तुत किया है। किन्तु आधे से अधिक, लगभग पूरा का पूरा, ग्रन्थ शकों के राजनीतिक जीवन का ही चित्रण करता है। उसी प्रकार श्री सत्यश्रव का ग्रन्थ भी, जो पंजाब विश्वविद्यालय से एम० ए० उपाधि के लिए लिखा गया था केवल सामग्री एकत्र करता है। इस पुस्तक में महाराष्ट्र के क्षहरात और उज्जयिनी और सुराष्ट्र के चष्टन कुल के ही इतिहास का वर्णन किया गया है। इससे समझा जा सकता है कि शकों के जीवन की विवेचना किसी ने सम्यक् रूप से नहीं की। किन्तु प्रस्तुत पुस्तक के लेखक ने शकों के जीवन की सम्यक् रूप से विवेचना प्रस्तुत करने की चेष्टा सभी उपलब्ध सामग्रियों के आधार पर किया है, जो प्रोत्साहनीय है।

**अवध किशोर नारायन**
अध्यक्ष
प्राचीन भारतीय इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

# विषय सूची


| विषय | पृष्ठ |
|---|---|
| संकेत सूची | i—xvi |
| शककालीन भारत (मानचित्र) | ( प्रारंभ में ) |
| **१-जातीय परिचय और भौगोलिक स्थिति** | **१-१३** |
| स्रोत | १ |
| (१) शक नाम पड़ने का कारण | ३ |
| (२) शकों का आदि देश | ४ |
| (३) भारत की ओर प्रस्थान | ८ |
| (४) भारतीय शक कौन थे ? | ११ |
| (५) शक स्थान की भौगोलिक स्थिति | १३ |
| **२-शकों का राजनीतिक उत्थान** | **१४-६४** |
| (१) शक के आक्रमण से पूर्व भारत की राजनीतिक स्थिति | १४ |
| (२) शकों का भारत आगमन | १६ |
| (३) सिन्ध-पंजाब का शक-कुल | १८ |
| अ. मोग | १८ |
| आ. साम्राज्य की सीमा | २१ |
| इ. अय | २३ |
| ई. विजय और राज्य-सीमा | २६ |
| (४) चुक्ष और क्षहर का क्षत्रप कुल | २९ |
| (५) मथुरा के क्षत्रप | ३१ |
| (६) मथुरा सिंह शीर्ष लेख | ३३ |
| अ. राजूल | ३४ |
| आ. शोडास | ३४ |

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh


| विषय | | | पृष्ठ |
|---|---|---|---|
| इ. राज्य विस्तार | .... | .... | ३५ |
| ई. खरपल्लान | .... | .... | ३५ |
| उ. क्षहरात कौन थे ? | .... | .... | ३६ |
| ऊ. क्षहर की अवस्थिति | .... | .... | ४० |
| ए. भूमक | .... | .... | ४१ |
| ऐ. नहपान | .... | .... | ४२ |
| ओ. उषवदात | .... | .... | ४४ |
| औ. अयम | .... | .... | ४५ |
| **३-उज्जयिनी और सुराष्ट्र के महाक्षत्रप** | | | **४५-६४** |
| अ. चष्टन | .... | .... | ४५ |
| आ. जयदामन | .... | .... | ४६ |
| . रुद्रदामन | .... | .... | ४७ |
| ई. दामघसद | .... | .... | ५१ |
| उ. जीवदामन और रुद्रसिंह प्रथम | | .... | ५२ |
| ऊ. रुद्रसेन प्रथम | .... | .... | ५३ |
| ए. उत्तरकालीन शक नृपति | .... | .... | ५४ |
| ऐ. शक महाक्षत्रपों का पतन | .... | .... | ५६ |
| **४-राजनीतिक विचार और शासन-पद्धति** | | | **६५-९०** |
| (१) राज्य का स्वरूप | .... | .... | ६५ |
| (२) प्रतिज्ञा का महत्व | .... | .... | ६६ |
| (३) मंत्रिमण्डल | .... | .... | ६८ |
| (४) पौर जानपद | .... | .... | ७१ |
| (५) पौर जानपद का महत्व | .... | .... | ७३ |
| (६) सैन्य-विभाग | .... | .... | ७४ |

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh




| विषय | | | पृष्ठ |
|---|---|---|---|
| (७) युद्ध में नैतिक परम्पराओं का पालन | .... | | ७५ |
| (८) राजस्व-व्यवस्था | .... | .... | ७६ |
| (९) करों पर मंत्रिपरिषद् का अधिकार | .... | | ७७ |
| (१०) 'कर' राजा का वेतन होता था | .... | | ७८ |
| (११) राजकर संबधी सिद्धान्त | .... | .... | ७९ |
| (१२) राजस्व के सोत | .... | .... | ८० |
| (१३) न्याय-व्यवस्था | .... | .... | ८२ |
| (१४) अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध एवं व्यवहार | .... | | ८२ |
| (१५) द्वैराज्य-शासन-प्रणाली | .... | .... | ८३ |
| (१६) शासन पद्धति | .... | .... | ८५ |
| अ. केन्द्रीय शासन | .... | .... | ८५ |
| आ मंत्रिपरिषद् | .... | .... | ८६ |
| इ. कोषाध्यक्ष | .... | .... | ८६ |
| ई. युवराज | .... | .... | ८६ |
| उ. प्रान्तीय शासन | .... | .... | ८७ |
| ऊ. स्थानीय शासन | .... | .... | ८७ |
| (१) जनपद | .... | .... | ८७ |
| (२) पौर | .... | .... | ८८ |
| **५-सामाजिक जीवन** | | | **९१-१०१** |
| (१) वर्ण व्यवस्था | .... | .... | ९१ |
| (२) विवाह | .... | .... | ९५ |
| (३) बहुपत्नी-प्रथा | .... | ... | ९७ |
| (४) अन्तर्जातीय विवाह | ... | .... | ९८ |
| (५) स्त्रियों की दशा | .... | .... | ९८ |

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh




| विषय | | | पृष्ठ |
|---|---|---|---|
| **६ —आर्थिक जीवन** | | | **१०२-११०** |
| (१) कृषि | .... | .... | १०२ |
| (२) शिल्प | .... | .... | १०४ |
| (३) वाणिज्य एवं व्यापार | .... | .... | १०५ |
| (४) श्रेणियाँ | .... | .... | १०६ |
| (५) श्रेणियों का संगठन और उनका कार्य | | .... | १०७ |
| (६) सिक्के | .... | .... | १०६ |
| **७—धार्मिक स्थिति** | | | **१११-१२६** |
| (१) पृष्ठभूमि | .... | .... | १११ |
| (२) बौद्ध धर्म | .... | .... | ११३ |
| (३) जैन धर्म | .... | .... | ११६ |
| (४) भक्ति आन्दोलन | .... | .... | १२१ |
| (५) भागवत धर्म | .... | .... | १२३ |
| (६) शिवोपासना | .... | .... | १२५ |
| (७) सूर्य-पूजा | .... | .... | १२६ |
| (८) कार्तिकेय-पूजा | .... | .... | १२७ |
| **८—भाषा और साहित्य** | | | **१३०-१४१** |
| **६—कला** | | | **१४२-१६** |
| (१) पृष्ठभूमि | .... | .... | १४२ |
| (२) मूर्तिकला | .... | .... | १४६ |
| (३) भारतीय कला की व्यापकता | .... | .... | १५२ |
| (४) भारतीय कला की सर्वग्राहिकता | | .... | १५३ |
| (५) स्थापत्य कला | .... | .... | १५४ |
| अ—धार्मिक प्रकार | .... | .... | १५४ |

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh




| विषय | | | पृष्ठ |
|---|---|---|---|
| आ—स्तूप | .... | .... | १५५ |
| इ—चैत्य व विहार | .... | .... | १५७ |
| ई—मन्दिर | .... | .... | १५६ |
| उ—लौकिक प्रकार | .... | .... | १६० |
| (६) वस्त्राभूषण | .... | .... | १६१ |
| **१०—उपसंहार** | | | **१६३-१६७** |

परिशिष्ट—

| | |
|---|---|
| १—शक : अभिलेख | १—२४ |
| २—शक : तिथिक्रम | १—४ |
| ३—सहायक ग्रन्थ सूची | क—ग |
| ४—शककालीन चित्र | |

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

# शक-अभिलेख सूची

पृष्ठ

१. सिंध—पंजाब के लेख .....अ
( क ) मेरा अभिलेख
( ख ) शहदौर अभिलेख
( ग ) तक्षशिला ताम्रपत्र लेख
२. मथुरा के क्षत्रपों के लेख.....आ
( क ) मथुरा सिंह शीर्ष लेख
( ख ) मोरा कूप लेख
( ग ) मथुरा अयागपट्ट लेख
( घ ) शोडास के काल का मथुरा प्रस्तर लेख
( ङ ) ,, ,, ,, ,, ,,
( च ) जैन मूर्ति पर लेख
( छ ) महाराज महाक्षत्रप म....का लेख
( ज ) कनिष्क का बौद्ध मूर्ति पर अंकित लेख
३. महाराष्ट्र के क्षहरातों के लेख.....ओ
( क ) नासिक गुहाभिलेख ( अ, ब, स, द, ध )
( ख ) कार्ले गुहाभिलेख ( अ, ब )
( ग ) जुन्नर गुहाभिलेख
४. उज्जयिनी और सुराष्ट्र के महाक्षत्रपों के लेख.....ख
( क ) अन्दउ प्रस्तर लेख
( ख ) रुद्रदामन प्रथम का जूनागढ़ लेख
( ग ) जीवदामन प्रथम—जूनागढ़ लेख
( घ ) रुद्रसिंह प्रथम—गुण्डा लेख
( ङ ) जयदामन-पौत्र-जूनागढ़ लेख
( च ) रुद्रसेन प्रथम—गरहा लेख
( छ ) जीवदामन—कानखेरा लेख
( ज ) रुद्रसेन—मूलवासार लेख
( झ ) बसाढ़—मिट्टी की मुद्रा
( ञ ) मेवसा—प्रस्तर लेख

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

# संकेत सूची

म० भा०—महाभारत
कू० पु०—कूर्म पुराण
मनु० स्मृ०—मनु स्मृति
कैं० हि० इं०—कैंब्रिज हिस्ट्री आफ इंडिया
अर्ली हि० इं०—अर्ली हिस्ट्री आफ इंडिया
ग्री० बै० इं०—ग्रीक इन बेक्ट्रिया एण्ड इण्डिया
का० इं० इं०—कार्पस इंस्क्रिप्शनम इंडिकेरम
सी० पी० इं० हि०—सीथियन पीरियड आफ़ इंडियन हिस्ट्री
से० इं०—सेलेक्ट इंस्क्रिप्शन्स बियरिंग आन इंडियन सिविलाइजेशन
पो० हि० एं० इं०—पोलिटिकल हिस्ट्री आफ एंसेंट इंडिया
हि० इं० एण्डो० आर्ट—हिस्ट्री आफ इंडियन एण्ड इण्डोनेशियन आर्ट
ए न्यू हि० इं० पी०—ए न्यू हिस्ट्री आफ इण्डियन पीपुल
म० म्यू० कै०—मथुरा म्यूजियम कैटलाग
इं० ऐं०—इण्डियन ऐंटिक्वेटी
एपि० इं०—एपिग्राफिया इंडिका
ज० रा० ए० सो०—जर्नल रायल एशियाटिक सोसाइटी
ज० बां० ब्रां० रा० ए० सो०—जर्नल बांबे ब्रांच रायल एशियाटिक सोसाइटी
मे० आर्के० सर्वे इं०—मेमायर्स आफ दि आर्केलाजिकल सर्वे इंडिया
ज० बि० उ० रि० सो०—जर्नल बिहार उडीसा रिसर्च सोसाइटी
ज० उ० प्र० हि० सो०—जर्नल उत्तर प्रदेश हिस्टारिकल सोसाइटी
आर्के० सर्वे० वे० इं०—आर्केलाजिकल सर्वे वेस्टर्न इंडिया
वि० स्मृ० ग्रं०—विक्रम स्मृति ग्रन्थ
ना० प्र० प०—नागरीप्रचारिणी पत्रिका
भा० इ० मी०—भारतीय इतिहास की मीमांसा
हिं० सा० बृ० इ०—हिंदी साहित्य का बृहत् इतिहास
पं० म्यू० कै०—पंजाब म्यूजियम कैटलाग

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh



इ० म्यू० कै०—कैटलाग आफ दि क्वायंस आफ इंडियन म्यूजियम

वि० पु०—विष्णु पुराण

ऋ०—ऋग्वेद

न्या० सू०—न्याय सूत्र

ज० इं० सो० ओ० आ०—जर्नल आफ दि इंडियन सोसाइटी आफ ओरियंटल आर्ट

पो० हि० पा०—ए पोलिटिकल हिस्ट्री आफ पार्थिया

इं० हि० क्वा०—इंडियन हिस्टारिकल क्वाटरली

बी० एस० ओ० ए० एस०—बुलेटिन आफ दि स्कूल आफ ओरियंटल एंड अफ्रीकन स्टडीज

ज० इं० हि०—जर्नल इंडियन हिस्ट्री

ब्रि० म्यू० कै०—ब्रिटिश म्यूजियम कैटलाग

ए हि० सं० लि०—ए हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर

प्रा० भा० इ०—प्राचीन भारत का इतिहास

हि० ए० इं०—हिस्ट्री आफ ऐंसेंट इंडिया

ज० ए०—जर्नल एशियाटिक

एं० हि० दकन—ऐंसेंट हिस्ट्री आफ़ दकन

आर्के० सर्वे रि० वे० इं०—आर्केलाजिकल सर्वे रिपोर्ट वेस्टर्न इंडिया

प्रा० भा० शा० प०—प्राचीन भारतीय शासन-पद्धति

दि श० इ०—दि शकस इन इंडिया

वा० पु०—वायु पुराण

ज० ब० हि० यू०—जर्नल, बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी

इं० क०—इंडियन कल्चर

अहि० सं०—अहिर्बुध्न्य संहिता

मे० आर्के० सर्वे० ए० रि०—मेमायर्स आर्केलाजिकल सर्वे एन्युअल रिपोर्ट

बौ० ध० सू०—बौधायन धर्म सूत्र

श० ब्रा०—शतपथ ब्राह्मण

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

# प्रथम अध्याय

## जातीय परिचय और भौगोलिक स्थिति

भारत भूमि प्राचीन काल से ही अनेक जातियों के आगमन का लक्ष्य रही है। अनेक जातियाँ इस देश में संक्रमण अथवा आक्रामक के रूप में आईं। पर इस मिट्टी में अपनी एक विशेषता भी रही है जो थी सबको आत्मसात् कर लेने की प्रवृत्ति। सब आकर यहाँ एक ही रंग में रंग गए और पृथकत्व में एकत्व का अपना ऐसा अपूर्व उदाहरण बना गये जो विश्व के इतिहास में अद्वितीय है। अतः आज के समाज़ में शकों को ढूँढ़ निकालना कठिन है।

**स्रोत**—भारत में बाहर से आने वाली जातियों में शक विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। प्राचीन भारतीय साहित्य में और अभिलेखों में इनका वर्णन मिलता है। शकों का उल्लेख अधिकतर यवनों के साथ हुआ है। भारतीय साहित्य में शकों के निम्नांकित उल्लेख पाये जाते हैं; बाल्मीकि रामायण में शकों का उल्लेख तथा प्राचीन भारतीय आर्यों के साथ युद्ध करते हुए, हुआ है। बालकाण्ड में एक जगह उल्लेख आता है—"पुनः घोर शकों को पैदा किया उनमें यवन भी मिले हुए थे। शक और यवनों से मिली हुई जाति से भूमि आच्छादित हो गयी[१]।" महाभारत में शकों का उल्लेख यवन, तुषार, कम्बोज आदि जातियों के साथ हुआ है। महाभारत में ऐसा वर्णन मिलता है कि ये जातियाँ भारत युद्ध—में कुरुओं की ओर से लड़ी

---

१. भूय एवासृजद्घोरान् शकान् यवनमिश्रितान्।
तैरासीत्संवृता भूमिः शकैर्मपनमिश्रितै : ॥ बाल० ५४।२१।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh


थीं—शक तुषार और यवन साथ-साथ काम्भोज लड़ने की इच्छा वाले.....।[१] मानव धर्म शास्त्र के भृगु संहिता में भी इन शकों का उल्लेख यवन, पहलव और पौण्ड्र, द्रविड़, किरात, दरद, खश पारद आदि जातियों के साथ हुआ है तथा इनको ब्राह्मणों से सम्पर्क न रहने के कारण वृषल बतलाया गया है।[२] पुराणों में भी इनका वर्णन मिलता है।[३] पाणिनि[४], कात्यायन[५], पतंजलि[६] आदि ने भी इनका वर्णन किया है। अभिलेखों में इनका वर्णन वासिष्ठीपुत्र श्री पुलोमावी[७], समुद्रगुप्त की इलाहाबाद प्रशस्ति[८], मथुरा सिंह शीर्ष लेख[९] एवं मयूरशर्मण के चंद्रवल्ली प्रस्तर लेख[१०] आदि में हुआ है।

मध्य एशिया में निवास करने वाली स्कीथियन जाति की शाखा-

---

१. शकास्तुपारा यवनागिश्रितान्
सहैव काम्भोजवरैर्जिघांसवः ॥ कर्ण पर्व ६४।१६।

२. वृषलत्वं गता लोके ब्राह्मणादर्शनेन् च ॥
पौण्ड्रकाश्चौड्रदविड़ाः काम्भोजा यवनाः शकाः।
पारदाः पहलवाश्चीनाः किराता दरदाः खशाः ॥
मनु० १०।४३, ४४

३. वा० पु० ८८; डाइनेस्टीज आफ दि कलि एज, पृ० ४७, ७२।

४. अष्टाध्यायी; ४।१।१७५; ४।३।६२; ५।४।३८।

५. अष्टाध्यायी के १।१।६४ पर वार्तिक—शकन्ध्वादिषु पर रूपो वाच्यम्।

६. पतंजलि द्वारा व्यवहृत शक-यवन समास-अष्टाध्यायी सूत्र संख्या २।४।१०।

७. एथि० इं० ८।२।६०।

८. वही २२।३५।

९. " ६।१३५।

१०. मे० आर्के० सर्वे ए० रि० १६२६ पृ० ५०।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh


रूप से विद्यमान शकों का उल्लेख बेहिस्तुन, हाखामनी साम्राज्य के अभिलेखों में मिलता है।[१] इतिहासकार हेरोडोट्स का इस तथ्य की ओर स्पष्ट संकेत है कि स्कीथियन लोग दारा के साम्राज्य के पूर्व ही मिड्स को जीत कर एशिया के स्वामी हो गये थे।[२] उनके द्वारा वहाँ पर निश्चित प्राप्त सूचना का भी उल्लेख किया गया है। स्कीथियनों में काल—गणना की परंपरा विद्यमान थी। उनके प्रथम सम्राट से लेकर ईरानी सम्राट दारा के आक्रमण तक का समय पूर्ण-रूपेण १००० वर्ष का था।[३] दारा के संबंध में निर्धारित तिथि ५२६-४८६ ई० पू० मानी जाती है। इस प्रकार यदि हेरोडोटस को प्राप्त तथा उसके द्वारा उल्लिखित उपर्युक्त सूचना पर विचार किया जाय तो इतिहास के रंगमंच पर शकों का उदय १५०० ई० पू० से भी पहले हो जाता है।[४]

## शक नाम पड़ने का कारण :

शक 'शक' क्यों कहलाये यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है। किन्तु इसका समाधान केवल भारतीय साहित्य ही से हो सका है। ग्रीक लेखकों ने इस प्रकार का समाधान किया ही नहीं है। पुराणों में ऐसा वर्णन मिलता है कि शकों का निवास स्थान नदियों से घिरा हुआ था जिनकी शाखाओं की आकृति शक अथवा साखू के वृक्ष सदृश थी।[५] भारत में शकों के लिये 'सागवान' शब्द व्यवहृत होता है और हम स्पष्टतता देखते हैं कि इसकी व्युत्पत्ति मूल संस्कृत के 'शक' शब्द से ही है।[६] मत्स्यपुराण में इस विवरण का उल्लेख है कि

१. सि० इं० १, ५—११।
२. डेरोडोटस १। १०४।
३. " २। ११०।
४. सत्यश्रव, दि शकास इन इंडिया, पृ० २।
५. वा० पु० ४६। ८८ एवं ८६।
६. सत्यश्रव, दि शकास इन इंडिया, पृ० ४।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh



"शकों के निवास-स्थल में शक नामक एक पर्वत विद्यमान था अत-एव उनका नामकरण शक हुआ।"[१] ऐसी भी संभावना हो सकती है कि इस पर्वत पर शक नामक वृक्ष रहे हों जिससे यह पर्वत शक संज्ञक हुआ हो। विभिन्न संस्कृत कोशों में 'शक' शब्द का अर्थ विभिन्न दिया हुआ मिलता है।[२] प्रसिद्ध कोषकार मोनियर विलियम्स ने इसका अर्थ एक पशु विशेष बतलाया है तथा इसके स्त्रीलिंग का अर्थ एक पक्षी, मक्षिका अथवा लम्बे कान वाला पशु दिया है।[३] इससे एक निष्कर्ष यह भी निकाला जा सकता है कि कान लम्बे होने के कारण संभवतः उनका नामकरण 'शक' हुआ। चीनी वृतान्तों में इनके 'शक' नाम पड़ने के कारण पर तो नहीं पर 'शक' नाम की ही भाँति इनको 'सस' अथवा 'सेक' कहा गया है जिनका समीकरण इतिहासकार रैप्सन ने सीरदरिया के कांठे में निवास करने वाले स्की-थियनों अथवा शकों से किया है।[४]

## शकों का आदि देश :

शकों के आदि देश स्कीथिया के संबंध से हेरोडोटस[५] द्वारा दिया हुआ विवरण विशेष उल्लेखनीय है। इसके अनुसार स्कीथिया आकार में वर्गाकार है और इसके दोनों किनारे समुद्र का स्पर्श करते हैं।[६]

सिसली के डायडोरस के अनुसार शकों के पास पहले एक छोटा ही प्रदेश था, किन्तु धीरे-धीरे जैसे-जैसे इनकी संख्या में वृद्धि होती

---

१. मत्स्य पुराण १२३। ३६।

२. द्रष्टव्य, विश्व प्रकाश कोश, नानार्थ शब्द कोश एवं नानार्थ-संग्रह मद्रास संस्करण।

३. ए संस्कृत इंगलिश डिक्शनरी पृ० ९८५।

४. कै० हि० इं० पृ० ५६५।

५. भाग ४।

६. वही ४। ४०१।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh



गयी इन लोगों ने अन्य प्रदेशों पर भी प्रभुत्व जमाना प्रारम्भ किया और अर्द्ध ( सीरदरिया के कांठे से ) नदी प्रदेश से, जहाँ के वे निवासी थे, आगे बढ़ते हुए काकेशस पर्वत तक पहुँच गए और उसके काल ( ५७ ई० पू० ) तक तो वे भारत के सीमांत प्रदेश तक बस गये थे।[१] स्त्रावो जरा स्पष्ट हो कहता है—कास्पियन सागर के पूरब में स्कीथियन जाति के लोग बसते हैं और दधि के पूरब शकों का निवास है।[२]

शकों के आदि देश के संबंध की चर्चा करते हुए भारतीय साहित्य उस स्थल को 'शाकद्वीप' नाम से अभिहित करते हैं। महाभारत में शाकद्वीप का उल्लेख हुआ है। इसके अनुसार क्षीरोद्सागर (कास्पियन सागर) का कुछ भाग शकद्वीप से घिरा हुआ था।[३] वायुपुराण के अनुसार क्षीरोद्सागर का कुछ भाग शकद्वीप से घिरा हुआ था तथा दधि एवं मण्डोदक सागरों का स्पर्श करता था।[४] मत्स्यपुराण में ऐसा उल्लेख मिलता है कि लवणोदधि शकद्वीप से घिरा था।[५] महाभारत में ऐसा वर्णन है कि शकद्वीप के एक भाग अथवा मर्गियाना के लोग ब्राह्मण थे और मशक निवासी क्षत्रिय तथा इसके अन्य भागों में वैश्य एवं शूद्र भी निवास करते थे।[६] महाभारत का यह कथन हेरोडोटस के उस वर्णन से भी मेल खाता है जिसमें यह कहा गया है कि स्कीथिया के बीच के प्रदेश में पशुपालक तथा

१. डायडोरस आफ सिसली, २, ४३।
२. स्त्रावो ११, २५४।
३. भीष्म पर्व, ११। ६। १०।
४. क्षीरोदेन समुद्रेण सर्वतः परिवारित।
शाकद्वीपस्तु विस्तारात्समेन तु समन्ततः। वा. पु. ४६। ६६।
परिवार्य समुद्रं स दधिमण्डोदकं स्थितः। वा. पु. ४६। ७५।
५. तेना वृतः समुद्रो यं द्वीपेन लवणोदधिः। मत्स्य. १२२। ३।
६. भीष्मपर्व, ११। ३६—३७।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh



कृषक स्कीथियन निवास करते थे।[१]

शकों के मूल निवास के संबंध में साहित्यिक प्रमाणों के अतिरिक्त पुरातात्विक प्रमाण भी उपलब्ध हैं। हाखामनी सम्राटों के वृत्तान्तों से विदित होता है कि शक तीन स्थानों पर बसे थे और वे उनकी प्रजा थे।[२] इस वंश के अभिलेख शकों के वासस्थान की ओर भी संकेत करते हैं। उनका संकेत 'पर-सुग्द' की ओर है। 'पर-सुग्द' का ग्रीक अनुवाद ट्रांसियाक्सियाना किया जा सकता है जो सीरदरिया (Syr Darya) के विशाल मैदान की ओर संकेत करते हैं।[३] सोग्द की राजधानी हमेशा से समरकन्द रही है।

द्वितीय अथवा पहली शती ईसवी पूर्व में इन शकों को स्थान छोड़ना पड़ा होगा। उनके मूलभूमि छोड़ने तथा दूसरे स्थान पर बसने के संबंध चीनी स्रोत महत्वपूर्ण सामग्री प्रस्तुत करते हैं।

चीनी विवरण 'शी-की' तथा 'शान-हान-शू' से ज्ञात होता है कि हूणों ने काशगरिया के सुदूर पूर्व तथा उत्तर-पूर्वी में बसने वाली यूहची जाति को बुरी तरह से परास्त किया। टार्न के अनुसार यह तिथि १७६ ई० पू०—७४ ई० पू० तक रही होगी।[४] क्लप्रोथ ने इस घटना का काल-निर्धारण लगभग १६५ ई० पू० किया है जो कि स्मिथ को भी मान्य है।[५] किन्तु चीनी स्रोत तिथि के संबंध में कोई विवरण नहीं देते हैं। वहाँ केवल यही कहा गया है कि चि-यू के राज्य-काल में यह घटना घटी।

इस युद्ध में यूहची राजा मारा गया। यूहची हूणों के सामने टिक न सके। पश्चिम की ओर भागे। रास्ते में उनकी मुठभेंड़ वुसुन से

---

१. भाग. ४। १८।
२. मे. आर्के. सर्वे इं. ३४। ३—४।
३. वही
४. ग्रीक बै. इं. पृ. २७६।
५. डा. चट्टोपाध्याय, दि शकास इन इंडिया, पृ. १।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh


हुई। किन्तु यूहची रुके नहीं आगे बढ़ते ही गए और इसक्कूल झील पर ही जाकर दम लिया। यहाँ दो शाखाओं में विभक्त हो गए—क्षुद्र यूहची और ता-यूहची उनकी दो शाखाएँ हुई। क्षुद्र दक्षिण की ओर चले गए और तिब्बत के सीमान्त प्रदेश में जाकर बस गए। ता-यूहची पश्चिम की ओर बढ़ते ही गए और अपर इली की घाटी में ससे, साई अथवा सेक लोगों से जा टकराये। किन्तु कुछ चीनी वृत्तान्त यूहची तथा वुसुन के इस मुठभेड़ के संबंध में सर्वथा मूक हैं। उनके अनुसार हिंगनू से पराजित होने के बाद यूहची सीधे सीरदरिया के काठे में चले गए।[१]

इस प्रकार हिंगनू जाति से मुठभेड़ होने के बाद यूहची पश्चिमी की ओर भागे और उनकी भिड़न्त साई अथवा शक लोगों से हुई। परिणामस्वरूप साई-वांग अथवा शक लोग दक्षिण की ओर भागे और की-पिन[२] में जा बसे और अनेक राज्यों की स्थापना की।[३] साई-

१. वही पृ. २।

२. 'की पिन' विद्वानों में बड़े विवाद का विषय बना हुआ है। 'हान-कुल' के वृत्तान्त 'की-पिन' का वर्ण न करते हुए कहते हैं—वह स्थान जो गरम हो तथा जो दक्षिण-पश्चिम में वु-ह-शन लि (आकोंशिया) द्वारा घिरा हो और उत्तर-पश्चिम में ताहिया (बल्ख) द्वारा। स्तेन कोनो इसकी कापिश से व्याख्या कर इसकी भौगोलिक स्थिति को बल्ख में कहीं स्थापित करते हैं। परंतु यह प्रदेश हिमांचल है, यह गर्म नहीं हो सकता। हवेनत्सांग के के अनुसार कापिश सर्द प्रदेश है। बहुत से विद्वानों ने की-पिन को कश्मीर से भी मिलाया है जिसको आज की विद्वान् मण्डली ने मान भी लिया है। सर आरेल स्टेन ने अपनो 'सेंट खोतन' १। ५३ और स्मिथ ने अपनी 'अर्ली हिस्ट्री आफ इंडिया' पृ. २५१ में इस सिद्धान्त को मान्यता प्रदान किया है।

३. न्यूमिसमेटिक-क्रानिकल १८८८—९२ पृ. २२९।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh


वांग को हम शकों के अर्थ में निर्द्वन्द्व रूप से ले सकते हैं अथवा नहीं इस पर भी विचारकों ने भिन्न-भिन्न मत व्यक्त किये हैं। डा० चट्टोपाध्याय ने इस पर प्रकाश डाला है तथा इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि यह शब्द शकों के लिए ही प्रयुक्त हुआ है।[१]

## भारत की ओर प्रस्थान :

अब प्रश्न उठता है साई-वांग की-पिन किस मार्ग का अनुगमन कर पहुँचे। हान-शू से ज्ञात होता है कि साई-वांग दक्षिण की ओर मुड़कर 'हीन-तू' अथवा हिन्दूकुश के रास्ते से 'की-पिन' पहुँचे। फाहयान ने 'हीन-तू' को स्कई से थोड़ा पश्चिम काशगर से दक्षिण-पश्चिम दिशा में सिंधु-नदी के पास अवस्थित बतलाया है। किन्तु चीनी वृत्तान्त इस संबंध में सर्वथा मौन हैं—उन्होंने इस बीहड़ तथा दुर्गम मार्ग को ही क्यों चुना ? इस विषय पर टॉलमी थोड़ा प्रकाश डालता है। उसके अनुसार शकों का विस्तार दक्षिण में बाल्टिस्तान तक हो गया था। अतएव इस प्रदेश की जातियों के लिए इस बीहड़ मार्ग से भारत में प्रवेश करना कोई दुष्कर कार्य नहीं था।[२]

इस प्रकार शकों की एक शाखा ने, यूहचियों से भिड़न्त के बाद, कश्मीर के मार्ग से भारत में प्रवेश किया और कश्मीर-पंजाब में आकर बस गयीं।[३]

१. दि शकास इन इंडिया पृ. ३।
२. डा. चट्टोपाध्याय, दि शकास इन इंडिया, पृ. ४।
३. सी. पी. इं. हि. पृ. ३५७—यद्यपि यह संभव है कि सीस्तान के शकों ने प्राचीन काल में भारत पर आक्रमण किया किन्तु संभावना यही है कि पश्चिमोत्तर भारत के खरोष्ठी अभिलेखों के रचयिता पश्चिम से न आकर उत्तर ही से आये थे—किन्तु सी. हेविजोई और बनर्जी शास्त्री ने क्रमशः पोलिटिकल हिस्ट्री आफ पार्थिया पृ. ५८-५९ में एवं इं. हि. क्वा. १३। २०९ के अपने लेख में शकों के दोनों मार्गों से आने की संभावना व्यक्त किया है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh


उपर्युक्त धारणा के अतिरिक्त हमारे पास अन्य प्रमाण भी विद्यमान हैं जो शकों के आगमन स्थान को पूर्वी ईरान के भूमिप्रदेश में अवस्थित करती हैं। ऊपर हम इस तथ्य की ओर संकेत कर चुके हैं कि यूहचियों के मुठभेड़ के कारण शकों की कई शाखाएँ हुईं तथा उनके अनेक राज्यों की आगे चलकर स्थापना हुई। जो लोग 'की-पिन' में जा बसे थे उनके अतिरिक्त कुछ और कबीले आर्कोशिया और ड्रेंजियाना की ओर बढ़े। संभवतः उन्हीं को जस्टिन ने स्कीथयन की संज्ञा दी है।[1] उनकी चपेट में पार्थव एवं बाख्ची राजकुल आए और इस प्रकार संपूर्ण हेलियाक्लीज सपरिवार शकों की चपेट में आ गया। यूक्रेतिय का ग्रीक राजकुल अपनी गृहकलह के कारण स्वयं क्षीण तथा दुर्बल हो गया था। वह शक आक्रमणकारियों का सामना न कर सका।[2] बाख्ची पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर शक और आगे बढ़े। रास्ते में पार्थव पड़ते थे। ई० पू० १२८ में पार्थव राजा फ्रात द्वितीय धाराशायी हुआ। उसके उत्तराधिकारी आर्तबानस द्वितीय (१२८-१२३ ई० पू०) ने उनको कुछ 'कर' आदि देकर एक अस्थायी शांति की व्यवस्था की। किन्तु यह व्यवस्था अधिक दिनों तक न चल सकी। वह भी पाँच वर्ष बाद शकों द्वारा युद्ध में मार डाला गया।[3] परन्तु उसका उत्तराधिकारी मज्दात द्वितीय (१२३-८८ ई० पू०) शक्तिशाली राजा हुआ। उसने उस संपूर्ण क्षेत्र में अपना प्रभुत्व स्थापित करके शकों को आगे बढ़ने से रोक दिया। उसके राजत्व काल में उसका इतना दबदबा रहा कि शक ज़रा भी आगे नहीं बढ़ सके।

विद्वानों की ऐसी धारणा है कि उपर्युक्त राजा के राजत्वकाल में अथवा उसके पश्चात् शक भारतीय सीमा की ओर बढ़े। रास्ते में

१. एपिटोम हिस्टोरिकेरम फिलिप्पिकेरम पाम्पेई ट्रोगि १६।१।२।
२. डा० भगवतशरण उपाध्याय, प्राचीन भारत का इतिहास, पृ० २०४।
३. पो० हि० पा० पृ० ३१, ३५-३६, ५८।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh


काबुल का राज्य पड़ता था जो बाख्त्री राजकुल की ही एक शाखा द्वारा शासित होता था। वे आगे नहीं बढ़ सकते थे। अतएव जहाँ थे वहीं कुछ काल के लिए उन्होंने डेरा डाला। उनकी वह निवास भूमि सोस्तान कहलाई।[१] कुछ कालोपरान्त कंधार और बलोचिस्तान (बोलन दर्रे) के रास्ते से वे भारत पहुँचे और सिंधु-नदी के निचले कोठे में जा बसे। उनके इस नवीन स्थान को हिन्दू लेखकों ने 'शक-द्वीप' और ग्रीक भूगोलविदों ने 'इण्डोस्कीथिया' कह कर पुकारा है।

पाणिनि के ग्रन्थ अष्टाध्यायी पर अपना वार्तिक ग्रन्थ प्रस्तुत करते हुए कात्यायन ने 'शकन्धु' तथा 'कर्कन्धु' शब्दों का उल्लेख किया है।[२] ऐसा लगता है कि कात्यायन द्वारा वर्णित शक शकस्थान में आकर बसने वाले शकों के पूर्वज थे। ऐसा अनुमान किया जाता है कि जब शक लोगों का निवास स्थान अभी मध्यएशिया ही था तभी ई० पू० चौथी या तीसरी शताब्दी में 'शकन्धु' शब्द का प्रचलन हो गया था। 'शकन्धु' का अर्थ शक लोगों का कुआँ होता है। यह शब्द संस्कृत भाषा के व्याकरण में अपना विश्लेषण रखते हुए यह सिद्ध करता है कि भारत के लोग शकों के यहाँ आगमन से पूर्व से ही उनसे परिचित थे और पाणिनि-कात्यायन परिचित शक ईसवी पूर्व प्रथम शती

१. न्यूमिसमेटिक क्रानिकल १८८८-९२ पृ० २२९-३०।

चारज़ के आइसेडोर ने इसको स्कीथिया कहा है और इसमें निम्नलिखित नगरों के नाम बतलाया है—(१) बर्द (२) मिन (३) पलकेंति (४) साइगल, (५) अलेक्जेंड्रिया और (६) अलेक्जड्रोपोलिस। साइबल को कनिंघम ने शकों की राजधानी बतलाया है तथा 'बाल' से उसका मिलान किया है। बाल अथवा कोट्ट (क्वेटा दुर्ग) जो कि हमेशा से सैनिक महत्त्व का स्थान रहा है। कंधहार और निचले सिंधु-कोठे के बीच यह पड़ता है। तोलेमी का 'कोट्टोबर' संभवतः यही था।

४४  ६।१।९३ वा० ४।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh



में यहाँ आकर बसने वाले शकों के पूर्वज थे। पाणिनि ने 'कन्था' शब्द का भी उल्लेख किया है। मूल में यह शक भाषा का शब्द था जिसमें 'कन्थ' का अर्थ नगर होता है। ऐसा ज्ञात होता है कि उस समय भी मध्यएशिया में 'कत्थात' नामों का एक तांता था जो अभी तक विद्यमान है। यथा—समरकंद पायकन्द आदि। 'कन्थ' शब्द का परिवर्तन सुग्दी में 'कन्द' हो जाता है। इससे भी यही संकेत मिलता है कि पाणिनि से भी पूर्व किसी समय शक जाति का प्रसार और संपर्क गज़नी-कंधार की उपत्थका से उतर कर तोचीगोमल नदियों के मार्ग से रावी और चनाब के कोठे तक पहुँचा था।[१]

भारतीय शकों के नामकरण में स्कीथियन, पार्थव और ईरानी तत्त्वों का सम्मिश्रण है। इससे आसानी से यह परिणाम निकाला जा सकता है भारत में प्रवेश करने से पूर्व शक ईरानी - पार्थव प्रभाव में रह चुके होंगे। वहीं उनका रूप - सम्मिश्रण भी हुआ होगा। उसी प्रकार भारत में आने पर उन पर भारतीय प्रभाव पड़ा। उन्होंने भारतीय नामों को एवं भारतीय धर्म को अपनाया, भारतीय परिवारों से विवाह संबंध स्थापित किये। इस संबंध में रुद्रदामन का जूनागढ़ लेख[२] और वासिष्ठपुत्र श्री शातकर्णि का कन्हेरी लेख[३] उद्धृत किया जा सकता है। कालान्तर में शकों ने भारत में कई राजकुलों की स्थापना की।

## भारतीय शक कौन थे ?

भारतीय शक कौन थे इस प्रश्न का समाधान मथुरा सिंह का शीर्ष लेख करता है। इस शीर्ष की स्थापना करने वाली "महाक्षत्रप राजूल की अग्रमहिषी.....अयसिआ कमुइआ" ने शाक्यमुनि बुद्ध

१. वासुदेवशरण अग्रवाल, पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृ० ८१-२।
२. एपि० इं० ८। ४२।
३. आर्के० सर्वे वे० इं० ५। ११, ७८।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh



का शरीरधातु प्रतिष्ठापित करते हुए यह कामना की थी कि उसका वह दान "महाक्षत्रप कुसुलुक पतिक की पूजा के लिए, सब बुद्धों, धर्म और संघ की पूजा के लिए और समूचे शकस्थान की पूजा के लिए हो।"[१] 'सर्वस सक्रस्तनस पुयए' यह प्रमाणित करता है कि मथुरा क्षेत्र के 'शकस्थान' या सीस्तान से आये थे जो अपनी मूलभूमि को अब तक भुला नहीं सके थे।

उसी प्रकार कान्हेरी लेख में महाक्षत्रप रुद्र की पुत्री अपने को कार्दमक वंशज कहती है। कार्दमक कार्दम से बना है। कार्दम एक नदी है जो फारस ( जरण्टशन ) में बहती है।[२]

किन्तु 'कार्द्दम' की स्थिति गुजरात प्रान्त में भी बतलाई गयी है। गुजरात प्रान्त के वर्तमान सिद्धपुर में जो कि बड़ौदा राज्य में पड़ता है और जो शकों के अधिकार में था 'कार्द्दम' को बतलाया गया है। ऐसा कहा जाता है कि कार्द्दम नामक कोई सन्यासी वहाँ कुटिया बनाकर रहता था। उसी से उस जगह का नाम कार्द्दम पड़ गया।[३] शक सवत् ६२२ ईसवी के नेरूर ताम्रपत्र में कार्द्दम ग्राम का उल्लेख हुआ है।[४]

गुजरात प्रान्त के इस कार्द्दम ग्राम से प्रकट होता है कि फारस के कार्द्दम नदी के किनारे पर बसने वाले ये शक अपनी मूलभूमि को भूल नहीं सके थे और उस पवित्र स्मृति को बनाये रखने के लिये ही उन्होंने गुजरात में एक ग्राम का नाम कार्द्दम रख दिया होगा। सभी विदेशी जातियाँ अपनी मूलभूमि की स्मृति अपने मानस-पट पर बनाए रहती हैं। वे शताब्दियों तक उसको नहीं भूलतीं। भारतीय पारसी अपनी मूलभूमि की स्मृति लगभग आठ शताब्दियों तक

१. एपि० इं० ६। १४१।
२. पो० हि० एं० इं० पृ० ४३७।
३. सत्यश्रव, दि शकास इन इंडिया, पृ० ६८।
४. गौरीशकर हीराचंद ओझा, हिस्ट्री आफ सोलंकीस।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh


बनाये रहे। प्राचीन इजिप्सियन और फोनेशियन अपनी मूलभूमि की अब तक यादगार बनाये हुये हैं यद्यपि वे उस स्थान को जहाँ पर वे वस्तुतः रहते थे, भूल गये हैं।[१]

भारत में बसने वाली सभी शक-कुलों के साथ यह बात लागू होती थी। ये शक तो थे किन्तु विभिन्न प्रदेशों से आकर यहाँ बसे थे। कोई 'काद्र्म घाटी' से आया था तो कोई 'ह्वहर'[२] से और कोई 'शकस्थान' से।

## शक स्थान की भौगोलिक स्थिति :

यदि नक्शे पर दृष्टिपात किया जाय तो शकस्थान की भौगोलिक स्थिति स्पष्ट हो जायेगी। दक्षिण में समुद्र तथा उत्तर में हेरात से शिकारपुर सिंध होते हुए बोलन दर्रे तक की सीमा के बीच की भूमि शकस्थान थी। इसमें वर्तमान कर्मान, सीस्तान, ईरानी बलूचिस्तान, केतान आदि जिले थे। कोई बड़ा नगर नहीं था। इसके मुख्य नगरों में कर्मान, गुआदर बंदर, लाश, बेपुरी, मिरि, इका, तख्य आदि मुख्य थे।[३]



१. दि वैदिक एज, पृ० २१६।
२. आगे देखिये, ह्वहरात कौन थे ?
३. टी० एल० शाह, एंन्सेंट इंडिया ३। ६८।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

# शकों का राजनीतिक उत्थान

## (१) शकों के आक्रमण से पूर्व भारत की राजनीतिक स्थिति :

अशोक महान् के आँख मूँदते ही विशाल मौर्य साम्राज्य विशृंखलित हो गया । काबुल के हिन्दुकुश-पर्वत-प्रदेशों में सुभागसेन स्वतंत्र हो गया, पामीर और कम्बोज बैक्ट्रियन ग्रीकों ने हड़प लिया । इस प्रकार भारत की प्राकृतिक सीमा, जिसको कि चन्द्रगुप्त मौर्य ने हासिल किया था, शक्तिशाली तथा योग्य शासकों के अभाव में हाथ से निकल गया । कृष्णा और गोदावरी की घाटी में आंध्र सातवाहनों का सुविस्तृत साम्राज्य था । पूर्व में आसमुद्र कलिंग के नृपति जैन धर्मानुयायी चेदिवंशी खारवेल का साम्राज्य था, जो कभी सातवाहनों पर पिल पड़ता, कभी दुर्बल मगध पर । ये दोनों साम्राज्य पूर्व और दक्षिण में सबल थे और वहीं तक सीमित भी थे । सारा उत्तर और मध्यभारत उत्तरवर्ती मौर्यों के अधिकार में था जो जैन अथवा बौद्ध थे । मौर्यों के जैन और बौद्ध धर्मावलम्बी होने तथा ब्राह्मणों से संघर्ष ने देश को अक्षम और कायर कर दिया था । मौर्य सम्राट कुल का अंतिम उत्तराधिकारी बृहद्रथ का चौथा पूर्वज शालिशूक मौर्य कट्टर जैन था । अपने साम्राज्य को उसने धर्म के नाम पर लहू-लुहान कर दिया । काठियावाड़ और गुजरात में उसने अन्य मतावलम्बियों को इस तरह बलपूर्वक जैन बनाया कि प्रजा त्राहि-त्राहि कर उठी । शालिशूक का शासन इतना कष्टकर और असह्य हो गया था और जनता इतनी अक्रिय हो गयी थी, कि उसने बजाय उस शासन के विरुद्ध विद्रोह करने के विदेशी को अपना त्राता समझ 'धर्ममीत'[१]

---

१ देखिये, गार्गी संहिता का युग पुराण
'धर्ममीत तमाः वृद्धा जनं भोक्ष्यन्ति निर्भयाः ।'

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh



कह संबोधित किया[१]। भारतीय नैतिक व्यवस्था का यह खोखलापन अंतियोकस तृतीय के आक्रमण ने प्रमाणित कर दिया था।

मौर्य साम्राज्य के पतनोन्मुख होने से पूर्व जो शक्ति राजतंत्रों और संघ राज्यों को दबाये हुए थी, वह निर्बल हाथों में टिक न सकी और स्वयं नष्ट हो गयी। इससे फिर एक बार जनसत्ता गणों की पूर्वी पंजाब, राजपुताना, काठियावाड़ आदि में स्थापना हुई। यौधेय, कुणिन्द तथा मालव फिर खड़े हुए। ऐसे राज्य केन्द्रीय शासन में सदा रोड़े अटकाते हैं।

वे शुंग जिन्होंने यवनों के बाढ़ को आगे बढ़ने से कभी रोका था, कालान्तर में दुर्बल हो गए। शुंगों के बाद काण्व आए। किन्तु वे भी दुर्बल साबित हुए। संभवतः इसी काल में शकों का आक्रमण हुआ जिस प्रकार बौद्धों ने ब्राह्मणों के विरुद्ध कभी यवनों को 'धर्ममीत' कहकर निमंत्रित किया था, उसी प्रकार अब क्षत्रियों (गर्दभिल) के विरुद्ध जैनों शकों को आमंत्रित किया[२]।

किन्तु इसके पूर्व ही जिस प्रकार अंतियोकस तृतीय ने भारतीय व्यवस्था का खोखलापन सिद्ध किया था, शकों के एक दुर्दान्त आक्रान्ता ने भी सिद्ध कर दिया। शकों के जिस आक्रमण ने भारत पर गहरा प्रभाव डाला और मध्यदेश को आक्रान्त कर डाला वह शक अम्लार के नेतृत्व में हुआ था। उसका वर्णन गार्गीसंहिता का युगपुराण इस प्रकार करता है :

'अर्थात् तब लोहिताक्षअम्लाट नाम का महाबली धनुमूल (धनु के बल) से अत्यंत शक्तिमान हो उठेगा और पुष्पनाम धारन करेगा। सियनगर (पाटलिपुत्र) को वे सर्वथा आक्रान्त कर देंगे। वे सभी अर्थ लोलुप और बलवान होंगे। तब वह विदेशी लोहिताक्ष अम्लार

१. भारतीय समाज का ऐतिहासिक विश्लेषण, डा० उपाध्याय, पृ० १३४।

२. कैं. हि. ई. पृ० ४८०।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh


सद् वर्ग के वस्त्र धारण कर निरीह प्रजा को क्लेश देगा। पूर्वस्थिति को अधोगामी कर वह चतुर्वर्गों को नष्ट कर देगा[१]।'

## ( २ ) शकों का भारत आगमन :

शकों के भारत आगमन का वर्णन जैन-ग्रन्थ 'कालकाचार्य कथानक' में बड़े मनोरंजक ढंक से मिलता है। उसके अनुसार आचार्य कालक 'सगकुल' जाकर उन्हें 'हिन्दुगदेश' ( भारत ) ले आए। शक उनके पीछे चलते हुए सिंध के तट पर पहुँचे। फिर सिंधुनद को पार कर बढ़ते हुए सुरट्ठ ( सौराष्ट्र ) देश में प्रविष्ट हुए। 'सगकुल' का एक अधिपति होता था 'साहानुसाहि'। स्वयं 'सगकुल' अनेक साहियों में विभक्त था जब मज्दात द्वितीय शक्तिमान हुआ तब उसने अपने आर्तबानस की मृत्यु का शकों से बदला लेना चाहा। उसने साहियों था 'सगकुल' के पास अपने दूत द्वारा आज्ञा भेजी की शकों के सारे सामंत यदि अपने कुल और बंधु-बांधवों का विनाश न चाहते हों तो अपने शिर कटवा कर उसके पास भिजवा दें नहीं तो उससे उन्हें युद्ध करना पड़ेगा और हारने पर उनका वह सर्वनाश कर देगा। 'सगकुल' इस पर बहुत भयभीत हुआ। इसी समय आचार्य कालक उनमें ठहरे हुए थे। उन्होंने उनको सीस्तान छोड़ 'हिन्दुगदेश' चलने की सलाह दी। इस पर ९५ साहियों ने अपनी सेनाओं के साथ भारत में प्रवेश किया। उनमें से एक 'साही' उनका अधिपति बना और उज्जयिनी को राजधानी बना शासन करने लगा। संस्कृत अनुश्रुति के अनुसार ९५ साही मालवा की भूमि में आ बसे और इनमें से एक शेष साहियों का अधिपति अथवा शासक बना। उसकी राजधानी उज्जयिनी हुई।

'कालकाचर्य कथानक' के अनुसार शक लोग सिंधुनद पार करते ही सुराष्ट्र के स्वामी हो गए[२]। इससे तात्पर्य यह है कि गुजरात की ओर से चलकर सिंध-पार जाते ही 'सगकुल' मिलता था। अर्थात्

१. युगपुराण, ६१—६७।

२. विक्रमादित्य आफ उज्जयिनी, डा० पाण्डेय, पृ. ३०।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh


उनके काठियावाड़ में सीधा पहुँचने से सिद्ध होता है कि जिस स्थान से वे यहाँ आए वह सीस्तान के अतिरिक्त अन्य देश न था।

थोड़ा इस कथा की ऐतिहासिकता पर विचार कर लेना चाहिए। प्रो० रैप्सन[१] के मतानुसार इस कथा को न हम सिद्ध और न असिद्ध ही कर सकते हैं, अपितु इसके पक्ष ही में कहेंगे, क्योंकि इसकी ऐतिहासिकता जिस राजनीतिक पृष्ठभूमि पर आधारित है, वह तत्कालिक उज्जयिनी की परिस्थिति से मेल खाती है। स्तेन कोनो[२] भी इसका समर्थन करते हुए कहते हैं कि वह इसकी ऐतिहासिकता से मुकर नहीं सकते। विंसेंट स्मिथ[३] भी इसका समर्थन करने से पीछे नहीं छूटे। पहले तो विक्रमादित्य की ऐतिहासिकता में विश्वास नहीं किया। किन्तु बाद में लेखकों की इस परंपरा को मान लिया जो इसकी ऐतिहासिकता में विश्वास करते हैं।

प्रायः सभी प्रमाणों से उज्जयिनी की शकों द्वारा विजय लगभग १०० ई० पू० तथा ५७ ई० पू० के मध्य हुई आंकी जाती है[४]। और ये प्रथम युगीय शक ही प्रमाणतः मालवा से मथुरा की ओर बढ़ गये। इस प्रकार शक संभवतः मालवा से बढ़कर मथुरा के शुंगों के उत्तराधिकारी हुए। युगपुराण जो की उज्जयिनी-विजय से कुछ ही बाद प्रायः प्रथम शती ई० पू० के उत्तरार्द्ध में लिखा गया था, इस रूप में शकों की इस विजय घटना का एक समसामयिक प्रमाण सा है।[५] युगपुराण का यह शक आक्रमण १०० ई० पू० के लगभग शुंग-शासन में ही हुआ। इसकी पुष्टि रैप्सन का वह कथन कर देता है जिसमें उन्होंने कहा है कि शक रंजुवुल कुल के माथुरी सिक्के अपनी शकल

१. कैंब्रिज हिस्ट्री आफ इंडिया १। ४७६—८०।
२. का. इं. इं. २। १। २७।
३. आक्सफोर्ड हिस्ट्री आफ इंडिया, १६१६, पृ. १५१।
४. वि० स्मृ० ग्रं०, सं० २००१, पृ० ८।
५. वही।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh


और धातु दोनों में पंचाल (शुंगों) और मथुरा के हिन्दू राजाओं के सिक्कों से मिलते हैं[१]। उज्जयिनी और मथुरा-विजय के कुछ ही वर्ष बाद संभवतः पाटलिपुत्र का शुंग-कुल राज-च्युत कर दिया गया। काण्वायन मंत्री वासुदेव ने अंतिम शुंगराजा विषयी देवभूति को दासी से उत्पन्न अपनी दुहिता द्वारा मरवा डाला[२]। इधर शक अपने उज्जयिनी केन्द्र से भारत के अनेक प्रान्तों में फैल गए, जहाँ उनकी शक्ति का साका कुछ काल तक चलता रहा।

शकों के उत्थान के पक्ष में एक तो राजनैतिक परिस्थिति थी, दूसरे उनके राजकुलों में ऐसे अनेक प्रतापी नृपति हुए, जिन्होंने अपनी नीति तथा बल पर भारत पर काफी दिनों तक शासन किया। ये शक-कुल अपनी भौगोलिक स्थिति के अनुसार अनेक भागों में बंट गए थे।

## ( ३ ) सिंध-पंजाब का शक कुल:

(अ) मोग—शकों के प्रारंभिक भारतीय शासन के संबंध में हमारा ज्ञान सहज ही अपूर्ण और संदेहात्मक है। शक कुल का भारत में पहला राजा जैसा कि शहदौर अभिलेख ६० से ज्ञात होता है 'दमिजद' था। परन्तु दमिजद के बारे में हम ज्यादा नहीं जान सके हैं। उसके बाद ही दूसरा शासक, जिसको हम जानते हैं, तक्षशिला ताम्रपत्र पर मोग है। इस मोग को डा० रायचौधरी[३] ने पंजाब की नमक की पहाड़ियों वाले मैरा-कूपलेख के 'मोअ' से मिलाया है जिसकी तिथि ५८ बतलायी गयी है। किन्तु उसकी तिथि के संबंध में विद्वानों में मतभेद है। यदि ५८ शक काल मान लिया जाय तो शकों का भारत में यह सबसे प्राचीन लेख होगा[४]।

---

१. इंडियन क्वायंस, पृ० ६,१३।
२. 'हर्षचरित,' अनु० कावेल और थामस, पृ० १६३।
३. पो० हि० एं० इं० पृ० ४३७।
४. का० इं० इं०, कोनो, पृ० ११।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh



अब हमें दमिजद और मोग पर विचार कर लेना चाहिए। दमिजद को मोग कहा गया है या मोग को दमिजद। यह प्रश्न उठता है। मोग को माउस भी कहा गया है। यदि मोग के सिक्कों को ध्यान से देखा जाय तो यह भ्रम मिट जायगा। पंजाब म्यूजियम कैटलाग और ब्रिटिश म्यूजियम कैटलाग में संगृहीत इसके सिक्कों पर खरोष्ठी में 'दमि' शब्द पाया जाता है। पुराविदों के मतानुसार 'दमि' दमिजद का ही छोटा रूप है। यह दमिजद मोग का अभिसार क्षेत्र का क्षत्रप था।

महादानपति पतिक के तक्षशिला ताम्रपत्र लेख से भी मोग के नाम का पता चलता है, जो संभवतः मोग के जीवन के अंतिम काल में बना होगा। यदि संदेहास्पद मुचई अभिलेख को भी देखा जाय तो मोग के शासन-काल का अंतिम वर्ष ७५ ई० पू० ही ठहरता है[१]।

शहदौर अभिलेख का दमिजद और मोग के सिक्कों का 'दमि' ९५ ई० पू० में (१५५ ई० पू० यवन संवत् के अनुसार) हजारा क्षेत्र का शासक था[२]। मोग इस तिथि से कुछ पहले अपने जीवन के कार्य-क्षेत्र में प्रवेश कर चुका होगा। उसके सिक्कों के प्रकार से पता चलता है कि उसने लगभग २० वर्ष शासन किया होगा[३]।

रैप्सन के मतानुसार अंतिलिकितस के बाद तक्षशिला में उसका उत्तराधिकारी आर्केबियस था और उसके बाद मोग हुआ[४]। युग-पुराण[५] से भी पता लगता है कि यवन शासन के ठीक बाद शकों

१. दि इण्डोग्रीक, डा० नरायन, पृ० १४४।

२. वही, पृ० १४५।

३. वही।

४. कैं० हि० ई० १। ५५९।

५. मध्यदेशे न स्थास्यन्ति यवना युद्धदुर्मदा। ४२।
रक्तपातं तथा युद्धं भविष्यति तु पश्चिमं।
आग्निवैश्यास्तु ते सर्वे राजानो नः कृतविग्रहाः।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh



का आक्रमण हुआ। १०० ई० पू० के आसपास मोग ने स्वातघाटी व गंधार क्षेत्र के यवनों को हराकर उस क्षेत्र को अपने अधिकार में कर लिया। चीनी स्रोतों से भी पता चलता है कि १०२ ई० पू० के लगभग फरगना क्षेत्र के किसी मु-कु-अ पर चीनी सेना ने आक्रमण किया। इनके नामों की एकरूपता सिद्ध करती है कि वे शक थे[१]। मोग किस वंश का था, इस संबंध में विद्वानों में मतभेद है। विसेंट स्मिथ के अनुसार वह हिन्दू-पार्थव राजा था[२]।

एक बात जो इतिहासकारों को उलझन में डाल देती है, वह शक और पहलवों (पार्थवों) का पारस्परिक संबंध है। भारतीय साहित्य और शिलालेख अथवा अन्य लेखों में प्रायः दोनों का साथ-साथ या एक के लिए दूसरे का उल्लेख हुआ है। कभी-कभी उन्हें एक दूसरे से अलग करना मुश्किल हो जाता है। इनके शासन और सिक्कों में अनेक समानताएँ हैं और कितनी ही बार तो शक और पहलव दोनों नाम एक ही शासक-कुल में उपलब्ध होते हैं।[३]

स्वातघाटी और गंधार (हजारा) को अपने अधिकार में कर लेने के पश्चात् मोग ने तक्षशिला को भी अपने अधिकार में किया! तक्षशिला ताम्रपत्र लेख से लियक कुसुलक और उसके पुत्र महादान-पति पतिक के नामों का पता चलता है जिसमें मोग को **'महरयस महंतस मोगस'** कहा गया है। शहदौर अभिलेख का दमिजद और माउस के सिक्कों का 'दमि' यदि एक ही व्यक्ति हैं तो इस प्रकार एक दूसरे क्षत्रप का भी उल्लेख मिलता है। लियक कुसुलक चुक्ष का

---

क्षयं यास्यन्ति युद्धेन यथैषामाश्रिता जनाः।
शकानां च ततो राजाऽत्यर्थलुब्धो महाबलाः। ५०-५३।

१. दि० इण्डोग्रीक डा० नरायन।
२. अर्ली हि० इ०, विंसेंट स्मिथ, चतुर्थ संस्करण, पृ० २४२।
३. तक्षशिला, मार्शल, १। ४८।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh


क्षत्रप[१] था और दमिजद अभिसार ( हजारा ) का[२]। दमिजद ने मोग के सिक्कों पर अपना नाम खुदवाया और लियक कुसुलक ने अपने सिक्के ढलवाये[२]। यह इस बात को सिद्ध करता है कि इन दोनों क्षत्रपों का प्रशासकीय और राजनीतिक उतना ही महत्त्व था, जितना यूनानी काल में उनके मातहत राजाओं का[३]।

**साम्राज्य की सीमा** मोग शक्तिमान राजा था। तक्षशिला का ताम्रपत्र उसे 'महरयस महंतस मोगस' उपाधि से विभूषित करता है। मोग के कुछ चाँदी के सिक्कों पर भी इस तरह का विरुद मिलता है वहाँ उसे 'रजदिरजस महतस मोअस' कहा गया है[४]। तक्षशिला गंधार देश की राजधानी थी, किन्तु मोग पूरे गंधार-प्रांत का स्वामी नहीं था। तक्षशिला पर अधिकार कर लेने के बाद अपोलोदोतस के उत्तराधिकारियों में राज्य का बँटवारा हो गया। एक झेलम नदी के पूरब बस गया और दूसरा सिंधु-नद के पश्चिम। झेलम दोआब मोग के अधिकार में था। अब प्रश्न उठता है, उसने किस तरह अपने राज्य का विस्तार किया। उसके सिक्कों के प्रसार व प्रचार से मालूम पड़ता है कि वह पश्चिम की ओर बढ़ा था, जहाँ निर्वासित और पददलित राजा स्ट्रेटो की वह उसकी सत्ता दिलाने में सहायता भी करता है। इस प्रकार सहायता कर मोग सिंधु के पश्चिम और आगे बढ़ गया होगा और पश्चिमी गंधार के कुछ भाग को अधिकार में कर लिया होगा। लियक कुसुलक चुक्ष में उसका क्षत्रप था और चुक्ष में पश्चिमी गंधार का कुछ भाग रहा ही होगा—मार्शल का ऐसा विचार है।

---

१. का० इं० इं०; कोनो, पृ० १३।
२. दमिजद, ब्रि० म्यू० कै० पृ० ६८-६९, ७१ प्लेट १६। ३। ६, प्लेट १७। ३; पं० म्यू० कै० पृ० १०२ नं० २८। लियक कुसुलक कैं० हि० इं० प्लेट० ८। ४२।
३. दि० इण्डोग्रीक, डा० नरायन, पृ० १४७।
४. कैटलाग, स्मिथ, पृ० ३६।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh


इस प्रकार सिंधु के निचले कांठे, गंधार का पश्चिमी प्रदेश तथा पश्चिमी पंजाब पर मोग का अधिकार था। यदि मानसेरा अभिलेख ६८ का लियक तक्षशिला लेख का ही लियक कुसुलक है तो मोग के राज्य की सीमा कश्मीर तक चली जाती है[१]।

इस प्रकार हम मोग के राज्य की सीमा तो निर्धारित कर देते हैं किन्तु उसके राज्य की पूर्वी सीमा का निर्धारण करना थोड़ा कठिन है। यह जाना जा चुका है कि मिलिन्द के सिक्कों के 'एथेना आल्किस' प्रकार का मोग ने अनुकरण नहीं किया अतएव मिलिन्द के राज्य, पूर्वी झेलम-प्रदेश, पर कभी शासन नहीं किया[२]। इस सिद्धान्त का मुख्य आधार मिलिन्द की सत्ता का मुख्य केन्द्र पूर्वी पंजाब का प्रदेश था। परन्तु मिलिन्द के सिक्के मुख्यतः काबुल में मिले हैं। पूर्वी पंजाब में बहुत कम प्राप्त हुए हैं। मिलिन्द प्रश्न में स्यालकोट को मिलिन्द की राजधानी बतलाया गया है।[३] किन्तु ह्वाइट हेड ने काबुल को उसकी राजधानी बतलाया है[४]। कोनो ने मथुरा सिंह शीर्षक लेख के 'मुकी' को तक्षशिला ताम्रपत्र लेख के मोग से मिलान कर पूर्व में मोग के राज्य-सीमा को मथुरा तक खींचने का प्रयास किया[५] है। किन्तु लेख का पाठ भ्रमात्मक है। अतएव उसके बारे में कुछ कहा

---

१. दि० शकास इन इंडिया, डा० चट्टोपाध्याय, पृ० १६।
२. ग्री० बै० इं०, पृ० ३२२-३०।
३. तयंथानुसूयते। अत्थि योनकानं नानापुटभेदनं सागलनाम नगरं नदीपभतसोभितं रमणीयभभिप्पदेसभागं....
फ्लीट ने सागल का स्यालकोट से समीकरण किया है। किन्तु विपरीत मत के लिए देखिए—दि इण्डोग्रीक्स (डा० नरायन) पृ० १७२-३।
४. तक्षशिला, मार्शल, २। ८६३।
५. कार्पस इं० इं० २। १। ३६।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh


नहीं जा सकता[१]।

**अय :** मोग का उत्तराधिकारी कौन हुआ यह प्रश्न उठता है। साधारणतः पुराविद् तक्षशिला में मोग का उत्तराधिकारी 'अय' को मानते हैं। किन्तु यहाँ एक मूल प्रश्न उठता है और वह यह कि अय कौन था ? शक अथवा पहलव। विद्वानों में इस पर मतभेद है। विद्वानों के एक मत के अनुसार अय इण्डो-पहलव कुल का पहला राजा वोनोन का वंशज था। अतएव वह भी पहलव था। विद्वानों के दूसरे मत के अनुसार अय पहलव और वोनोन के वर्ग का नहीं बल्कि मोग के वर्ग का और शक था। अय किस वर्ग के राजाओं में आता है यह तो विवादास्पद है किन्तु इतना कहा जा सकता है कि वह शक था क्योंकि उसके नाम के अक्षर उसको शक ही बतलाते हैं। उसके शक होने के संबंध में प्रायः सभी विद्वान एक मत हैं।[२] नाम-करण के इस सिद्धान्त ने विद्वानों में यह सोचने की प्रवृत्ति पैदा कर दी कि वोनोन और मोग दोनों एक ही वंश के थे। रैप्सन, विंसेंट स्मिथ, आदि मुद्रातत्त्वविदों ने वोनोन को मोग के ही वंश का बतलाया है।[३] इस प्रकार वोनोन जो कि अय वर्ग के राजाओं में पहला राजा था पूर्वी ईरान में शासक हुआ और पहलव नाम धारण किया। वह शकस्थान के साइगल प्रदेश का, जहाँ शक मज्दात द्वितीय के भय से आ बसे थे, शासक था। उसने पहलव नाम संभवतः मज्दात द्वितीय के क्रोध को ठण्डा करने के लिए धारण किया होगा। मोग संभवतः वहाँ से भाग आया होगा और तक्षशिला में नए राज्य की स्थापना की होगी। अय, मोग, एवं वोनोन सब एक ही वंश के

---

१. दि शकास इन इंडिया, डा० चट्टोपाध्याय, पृ २०।

२. नामकरण के आधार पर इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है—गलत भी हो सकता है।

३. इंडियन क्वायंस, पृ० ८।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh


थे, इसका समर्थन कनिंघम ने भी किया है। उनके अनुसार-[१] घुड़सवार प्रकार सर्वप्रथम मोग द्वारा प्रयुक्त किया गया, बाद में यह दोनों शाखाओं में प्रयुक्त किया जाने लगा। इससे विदित होता है कि सब एक ही जाति के थे।

रैप्सन, स्मिथ आदि विद्वानों के अनुसार वोनोन के बाद अय हुआ।[२] किन्तु ह्वाइटहेड इसके बिलकुल विपरीत कहते हैं।[३] उनके अनुसार-मुद्रातत्त्वविद साधारणतया अनुमान करते हैं कि मोग के बाद अय हुआ। मोग के उपरांत वोनोन कंधार और सीस्तान का शासक हुआ और अय ने पंजाब पर अधिकार किया।[४] गार्डनर[५] और वान सैले इस मत के प्रवर्त्तक हैं। परंतु यह मत साधारणतः सब लोग स्वीकार नहीं करते।[६] अतः दूसरे प्रमाणों के अभाव में हमें रैप्सन और स्मिथ के ही मत को ग्रहण करना चाहिए।[७] वोनोन की कोई स्वतंत्र मुद्रा अब तक नहीं मिली है, जिन मुद्राओं पर उसका नाम है उनमें से कई मुद्राओं पर एक ओर उसका नाम और दूसरी ओर उसके भाई स्पलहोर का नाम है। एक ओर यूनानी अक्षरों में वोनोन का नाम और दूसरी ओर खरोष्ठी अक्षरों में स्पलहोर का नाम मिलता है। कई मुद्राओं में एक ओर वोनोन का नाम और दूसरी ओर स्पलहोर के पुत्र स्पलगदम का भी नाम मिलता है। कुछ सिक्कों पर स्पलिरिष नामक शासक का भी नाम अंकित मिलता है। उन सिक्कों पर एक ओर यूनानी अक्षरों में स्पलिरिष का नाम और उपाधि और

१. न्यूमिसमेटिक क्रॉनिकल, १८८८-९२, पृ. ११०।
२. इं. म्यू. कै, खं. १. पृ. ४०—४३।
३. पं. म्यू. कै, खं. १. पृ. १०३—४।
४. वही पृ. ९२।
५. ब्रि. म्यू. कै पृ. ४१।
६. प्राचीन मुद्रा पृ. ८०।
७. वही।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh


दूसरी ओर—महरज भ्रत भ्रमियस स्पलिरिशस—लिखा हुआ है। ऐसे सिक्के सब प्रकार से वोनोन और स्पलहोर के नामों वाले चाँदी के सिक्कों के समान हैं। स्पलिरिष के कुछ सिक्कों पर एक ओर स्पलिरिष और दूसरी ओर अय का भी नाम मिलता है। एक प्रकार के सिक्कों में एक ओर मोग और दूसरी ओर अय का भी नाम है। इससे मुद्रातत्त्वविद् ह्वाइटहेड अनुमान करते हैं कि वोनोन का अय के साथ कोई संबंध नही था। किन्तु हम देख चुके हैं कि एक ही सिक्के पर अय के साथ स्पलिरिष का नाम भी मिलता है।[१] स्पिलिरिष का सिक्का देखने से स्पष्ट है कि उसके साथ वोनोन का निकट संबंध था। ऐसी दशा में यह नहीं माना जा सकता कि वोनोन के साथ अय का कोई संबंध नहीं था।[२]

अब प्रश्न उठता है कि पूर्वी ईरान के शकस्थान का अय तक्षशिला कैसे पहुँचा और तक्षशिला और पूर्वी ईरान के अय क्या एक ही व्यक्ति थे?

इस प्रश्न का समाधान डा० दिनेशचंद सरकार[३] ने किया है। उनके अनुसार यह अय (मोग का उत्तराधिकारी, तक्षशिला का) और कोई नहीं पूर्वी ईरान के वोनोनवंशी स्पलिरिष का ही सहयोगी था जिसके शासन का प्रसार दक्षिणी अफगानिस्तान तक हो चुका था। चीनी इतिहास,[४] हाउ-हान-शू भी इस पर प्रकाश डालता है। उसके अनुसार काबुल के ग्रीक राजकुल का अंत कुषाणों ने नहीं बल्कि पहलवों ने किया। अय प्रथम के काबुल-घाटी में सिक्के पाये गए हैं।[५] डा० सुधाकर चट्टोपाध्याय ने भी जस्टिन का हवाला देते

१. पं. म्यू. कै, खं. १, पृ. १४३ नं० ३६४।
२. प्राचीन मुद्रा, पृ० ८३।
३. दि एज आफ इंपीरियल यूनिटी, पृ० १२६।
४. भाग ८८।
५. कै० हि० इं० खं० १, पृ० ५७३-४।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh


हुए लिखा है कि पार्थवों द्वारा ग्रीक विजित किए गए जिसके थोड़े ही दिनों बाद ग्रीक प्रतिक्रिया भी काबुल में हुई।[१] इस प्रकार इस प्रश्न का समाधान हो जाता है कि पूर्वी ईरान का अय तक्षशिला काबुल-विजय करके पहुँचा था और तक्षशिला एवं पूर्वी ईरान के अय एक ही व्यक्ति थे।

**विजय और राज्य-सीमा :** जिन प्रदेशों को मोग जीत नहीं सका था उनको 'अय' ने अपने शासनाधीन कर लिया। पश्चिमी गंधार प्रदेश में उस समय यवन राजा हिपोस्त्रात शासन करता था। वह शक्तिशाली था। संभवतः इसीलिए मोग पूरे पश्चिमी गंधार प्रदेश को अपने शासनाधीन न ला सका होगा। किन्तु अय ने उसको हराया और उसके सिक्कों पर अपना ठप्पा लगा कर चलाया।[२] पश्चिमी-गंधार-प्रदेश का ग्रीकों के हाथ से निकल जाने का प्रभाव ग्रीकों के पूर्वी काबुल के इलाकों पर पड़े बिना न रह सका। उनका यह पराभव उनके पतन का कारण बना। परंतु काबुल-घाटी में अय के उतने अधिक सिक्के नहीं मिल सके हैं जितना कि आर्कोशिया और गंधार में मिले हैं। इससे प्रमाणित होता है कि अय उस प्रदेश में उतना अधिक शासन नहीं कर सका होगा जितना उसने गंधार और आर्कोशिया में किया। उसने मोग के राज्य को अधिकार में रक्खा।

अय का न तो कोई खुदा हुआ लेख मिलता है और न किसी पश्चिमी अथवा पूर्वी ऐतिहासिक ग्रन्थ में उसका कोई उल्लेख ही मिलता है। किन्तु इस राजा के अभिलेखों के संबंध में विद्वानों में मतभेद है। डा० त्रिपाठी ने यह सुझाव दिया है कि संभवतः यह कलवान अभिलेख का 'अय' अथवा 'अज' है। उन्होंने तक्षशिला के

---

१. दि शकास इन इंडिया, पृ० २२ [विद्वान लेखक ने सिर्फ जस्टिन का हवाला दिया है और उसी को प्रमाण मान लिया है। पाद टिप्पणी में जस्टिन से कोई संदर्भ उदधृत नहीं किया]

२. पं० म्यू० कैं० सं० १ पृ० १२२-३।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh


रजत-लेख के 'अय' से भी इसका ऐक्य होने का अनुमान किया है।[१] इनमें से पहला लेख १३४वें साल का और दूसरा १३६वें साल का है। परंतु उनमें संवत् का उल्लेख न होने से इनमें से किसी अय की तिथि निश्चित करनी कठिन है। वैसे तक्षशिला के पास के कलवान-लेख के १३४ को स्तेन कोनो ने विक्रम-संवत् में निर्दिष्ट माना है।[२] यदि इस अनुमान को सत्य माना जाय तो अय को (१३४-५८) = ७६ ई० में राज्य करना चाहिए किन्तु इस गणना को मानने से अय मोग से बहुत दूर जा पड़ता है। कुछ विद्वानों ने उसे ५८ ई० पू० में आरम्भ होने वाले विक्रम संवत् का प्रवर्तक माना है, परंतु इस सिद्धान्त के पक्ष में विशेष प्रमाण नहीं है।

अय के कई प्रकार के सिक्के मिले हैं। विंसेंट स्मिथ के अनुसार अय नाम के दो राजा हुए थे।[३] परंतु ह्वाइटहेड अय नाम के एक से अधिक राजा का अस्तित्व मानने के लिए तैयार नहीं हैं।[४] यदि प्रमाणों की खोज-बीन की जाय तो ह्वाइटहेड के सिद्धान्त का खण्डन हो जाता है। डा० स्मिथ का ही सिद्धांत प्रमाणित होता है। डा० स्मिथ के मतानुसार खुदाई में जो सिक्के प्राप्त हुए हैं उनमें से ऊपरी स्तर में पाये गए सिक्के अय द्वितीय के एवँ नीचे मिले हुए सिक्के अय प्रथम के हैं। मार्शल ने भी इस मत की पुष्टि की है और अय प्रथम तथा अय द्वितीय को दो भिन्न व्यक्ति माना है[५]। डा० रमाशंकर त्रिपाठी[६] ने भी दो अयों की सत्ता में विश्वास करते हुए कहा है—कुछ विद्वान दोनों अयों को एक ही व्यक्ति मानते हैं परंतु

१. हि० एं० इं० पृ० २१३-१४ नोट।
२. एपि० इं० २१ पृ० २५६, २५६।
३. इं० म्यू० कै० खं० १; पृ० ४३, ५२।
४. प० म्यू० कै० खं० १,० पृ० ६३।
५. ज० रा० ए० सो० १६१४; ६७६।
६. प्रा० भा० इ० पृ० १६३।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh



उनको पृथक मानना ही समीचीन जान पड़ता है। इस प्रकार दो अयों की सत्ता सिद्ध हो गयी। अब प्रश्न उठता है कि अय प्रथम के बाद ही अय द्वितीय आया अथवा उनके बीच भी कोई हुआ। सिक्कों के प्रमाण पर यह अनुमान किया जाता है कि अय प्रथम के उपरांत एजिलिसेस राजा हुआ। कुछ मुद्राओं पर एक ओर यूनानी भाषा में एजेस का और प्राकृत भाषा में एजिलिसेस का नाम अंकित है जिससे यह पता चलता है कि दोनों ने संयुक्त शासन किया। एजिलिसेस के पश्चात् अय द्वितीय पंजाब और सिंध का शासक हुआ। अय द्वितीय के बाद शक राजसत्ता इस प्रदेश से विनष्ट हो गयी और उस पर जो गोण्डोफरनीज का अधिकार स्थापित हो गया। यह पार्थव था। उसके समय का पेशावर जिले में प्राप्त तख्तेबाही लेख से ज्ञात होता है कि इन पार्थवों ने गंधार प्रदेश पर अधिकार किया था। यह उस अनुश्रति से भी मालूम होता है जिसमें फ्रात नामक एक पार्थव व्यक्ति द्वारा ४३-४४ ईसवी में तक्षशिला में शासन किया जाना कहा गया है। इस बात की पुष्टि तब और हो जाती है जब हम यह जानते हैं कि उत्तरी-पश्चिमी जिलों का शक-नृपति अय द्वितीय का शासक अस्पवर्मन गोण्डोफरनीज को भेंट दिया करता था। यह भारतीय नृपति अस्पवर्मन के सिक्कों से स्पष्ट हो जाता है। इन सिक्कों के लेखों से ज्ञात होता है कि अस्पवर्मन पहले तो अय द्वितीय का सामंत नृपति था किन्तु गोण्डोफरनीज के आने पर वह उसका करदायी सामंत बना। अस्पवर्मन का उत्तराधिकारी 'सस' गोण्डोफरनीज के बाद उसके उत्तराधिकारी पकोरिज को भेंट दिया करता था। यह सिक्कों से प्रमाणित होता है। उसके एक प्रकार के सिक्कों पर एक ओर घोड़े पर सवार राजा की मूर्ति और दूसरी ओर खड़े हुए ज्यूपिटर की मूर्ति है; किन्तु खरोष्ठी अक्षरों में—जयतस त्रतरस इंद्रवर्मपुत्रस स्त्रतेगस अस्पवर्मस—लिखा हुआ है।[1] उसके अन्य प्रकार के सिक्कों पर

१. ए० म्यू० कै० खं० १ पृ० १५०।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh


दूसरी ओर खरोष्ठी अक्षरों में गुदुफर के नाम और उपाधि के बाद 'सस' नामक एक राजा का नाम मिलता है। यह 'सस' सेनापति अस्पवर्मन का भतीजा था; क्योंकि तक्षशिला के खण्डहरों में मिले हुए चाँदी के एक सिक्के पर—महरजस अस्पभत पुत्रस एतरस ससस—लिखा हुआ है।[१]

(४) चुक्ष और क्षहर का क्षत्रप कुल : चुक्ष तक्षशिला के अंतर्गत आता है। चुक्ष के शासक को 'क्षत्रप' कहा गया है। चुक्ष का शासक कौन था और उसके बारे में लिखने के पूर्व हम 'क्षत्रप' शब्द पर विचार कर लेना चाहेंगे। प्राचीन काल में फारस में प्रांत के शासक को 'क्षत्रपावन' कहा जाता था[२]। इसीसे संस्कृत का 'क्षत्रप' और ग्रीक-रोमकों का 'सैत्रप' बना[३]। ईरानी पार्थवों के राजत्वकाल में प्रान्तीय शासक की 'क्षत्रपावन' लाक्षणिक संज्ञा थी। परन्तु शकों ने किस कारण राजा अथवा सामंत के अर्थ में इसको व्यवहृत करना स्वीकार किया, यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। कुछ विद्वानों के अनुसार शकों ने जब ईरानी पार्थवों से मुँहकी खाई तो भारत की ओर मुड़े और तब उनको इस बात में सहूलियत हुई कि वे अपने को उनका प्रतिनिधि घोषित करें। वैसे तो वे भारतीय प्रान्तों के स्वयं विजेता थे, फिर भी उन्होंने अपने को उनका प्रान्तीय शासक ही कहा। इससे उनकी स्वतंत्रता में कभी बाधा न पड़ी। इससे यह न समझना चाहिए कि वे भारत में सर्वथा स्वतंत्र न थे अथवा ईरानी-पार्थवों के प्रति उनका किसी प्रकार का उत्तरदायित्व अथवा सरोकार था। यथार्थ में 'क्षत्रप' पहले माण्डलिक राजा थे बाद में स्वतंत्र राजा 'महाक्षत्रप' कहलाये। क्षत्रप और महाक्षत्रप विरुदों का एक दूसरे प्रकार से भी व्यवहार हुआ है। क्षत्रपियों में 'महाक्षत्रप'

---

१. ज० रा० ए० सो० १९१४ पृ० ९८०।

२. एज आफ इंपीरियल यूनिटी, पृ० १३२।

३. प्राचीन भारत का इतिहास, डा० उपाध्याय, पृ० २०६।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh



अपने पुत्र की सहायता से राज्य करता था, जिसे केवल 'क्षत्रप' कहते थे। इस अवस्था में क्षत्रप-पद भारतीय 'युवराज' के पद से मिलता-जुलता था। जिस प्रकार युवराज पिता की मृत्यु के बाद 'राजा' की संज्ञा से विभूषित होता था, उसी प्रकार 'क्षत्रप' भी पिता के पश्चात् शासन का पूरा भार ग्रहणकर 'महाक्षत्रप' की उपाधि धारण करता था[1]।

मोग का चुक्ष में क्षत्रप लियक कुसुलक था। यह लियक मानसेरा अभिलेख ६८ का लियक ही है[2]। इसको एक पुत्र था, जिसका नाम तक्षशिला ताम्रपत्र[3] में मिलता है। ये दोनों पिता-पुत्र शकाधिपति मोग के चुक्ष और क्षहर नामक विषयों के माण्डलिक और शासक थे। पतिक बाद में महाक्षत्रप उपाधि धारण कर लेता है। मथुरा सिंह शीर्ष अभिलेख में उसके लिए 'महाक्षत्रपस कुसलअस पतिकस' का उल्लेख हुआ है। किन्तु विद्वानों में मथुरा सिंह शीर्ष अभिलेख के पतिक और तक्षशिला ताम्रपत्र लेख के पतिक को लेकर मतभेद है। फ्लीट ने[4] दो पतिक की प्रमाणिकता को माना है। किन्तु स्तेन कोनो और मार्शल ने मथुरा और तक्षशिला के पतिक को एक ही बतलाया, उनमें भिन्नता का सिर्फ एक का रण बतलाया-उन दोनों लेखों के पृथक-पृथक संवत्। दूसरे शब्दों में जहाँ फ्लीट दो राजाओं की प्रामाणिकता को सिद्ध करते हैं वहाँ ये दोनों विद्वान महजदो संवत् को[5] एक पतिक के होने के सिद्धान्त को प्रतिपादित करते हुए यदि यह कहा जाय कि मथुरा और तक्षशिला के क्षत्रप-कुलों में संबंध स्थापित हो गया था तो कोई अनुचित न होगा—मथुरा सिंह

---

१. वही पृ० २०७।

२. दि शकास इन इंडिया, डा० चट्टोपाध्याय, पृ० १६।

३. एपि० इं० ४। ५५।

४. ज० रा० ए० सो० १६०७ पृ० १०३५।

५. पो० हि० एं० इं० पृ० ४५८।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh


शीर्ष की स्थापना करने वाली 'महाक्षत्रप राजुल की अग्रमहिषी' ने शाक्यमुनि का शरीरधातु प्रतिष्ठापित करते हुए यह कामना की थी कि उसका यह दान "महाक्षत्रप कुसुलुक पतिक....की पूजा के लिए, सब बुद्धों, धर्म और संघ की पूजा के लिए और समूचे शकस्थान की पूजा के लिए" हो[१]।

(५) मथुरा के क्षत्रप—मथुरा के शकों के बारे में लिखने से पूर्व हम यह जान लेना चाहेंगे कि ये कहाँ से और कैसे आए। इनके कहाँ से और कैसे आने का वर्णन जैन ग्रन्थ 'कालकाचार्य कथानक' में हुआ है।[२]

यह 'कथानक' प्रभावकचरित नामक एक जैन ग्रन्थ का अंग है। इसके लेखक प्रभाचंद्रसूरि थे। यह कथानक एक जैन भिक्षु, कालकसूरि, के जीवनचरित को वर्णित करता है जिससे पता चलता है कि शकों ने भारत पर आक्रमण किया था और उज्जयिनी को जीत लिया था। इसके बाद विक्रमादित्य ने अपनी शक्ति को संगठित कर, शकों का उच्छेद कर, उज्जयिनी को उनसे छीन लिया और इस विजय के स्मारक-स्वरूप विक्रम संवत् चलाया। इस कथानक के कुछ भाग को यहाँ उद्धृत किया जाता है—

श्रीधारावर्ष नामक एक नगरी थी। वहाँ वीरसिंह नामक राजा राज्य करता था। वह बड़ा बहादुर था। उसको एक पुत्र और एक पुत्री थी। कालक और सरस्वती उनका नाम था। गुणकर नामक जैन भिक्षु से प्रभावित होकर दोनों भाई-बहन जैन भिक्षु हो गए। भिक्षाटन करते-करते उज्जयिनी पहुँचे। गर्दभिल वहाँ का राजा था। वह बड़ा ही कामुक था। सरस्वती के रूप पर वह मुग्ध था। उसने अपने आदमियों को भेजकर बलपूर्वक उसे अपने रनिवास में कैद

---

१. एपि० इं० ६। १३६।

२. ज० बां० ब्रां० रा० ए० सो० ६। १४७–१५७।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh



कर लिया। यह समाचार दावाग्नि की तरह चारों तरफ फैल गया। लोगों ने तथा कालकसूरि ने भी राजा को भिक्षुणी को छोड़ देने के लिए समझाया। किन्तु उस पर तो सरस्वती की रूप-सुधा चढ़ी थी किसी के समझाने का प्रभाव उस पर न पड़ा। कालक नामक क्षत्रीय जैन भिक्षु ने प्रतिज्ञा की कि जब तक वह इस दुराचारी राजा को अपदस्थ नहीं कर देगा, अपने को मानवता की हत्या का भागी समझेगा।

कालकसूरि पागल सा इधर-उधर भटकने लगा। वह सिंधु पार कर शकों के देश चला गया। वहाँ रहकर अपने ज्योतिष-ज्ञान से उनको प्रभावित किया। वहाँ ९६ शक कुल थे। उनका एक अधिपति था। वह बड़ा प्रतापी था। एक बार वह ९५ साहियों से नाराज हो गया और कहला भेजा कि शकों के सामंत यदि अपने कुल और बंधु-बांधवों का विनाश न चाहते हों तो अपने शिर कटवाकर उसके पास भिजवा दें नहीं तो उससे उन्हें युद्ध करना पड़ेगा और हारने पर वह उनका सर्वनाश कर देगा। 'सगकुल' इस पर बहुत भयभीत हुआ। आचार्य कालक जो कि वहाँ ठहरे हुए थे, उनको सीस्तान छोड़ 'हिन्दुगदेश' चलने की सलाह दी। शक उसके पीछे चलते हुए सिंधु नद को पार कर 'सुरट्ट' ( सौराष्ट्र ) में प्रविष्ट हुए। बरसात का मौसम होने के कारण वे वहीं रुक गए और उसको ९५ साहियों में विभाजित कर दिया। अपनी शक्ति को एकत्रित तथा मजबूत करके उन्होंने पांचाल लाट तथा मालवा पर चढ़ाई कर दी। मालवा की राजधानी अवंति थी। गर्दभिल को अपनी सेना और जादू पर भरोसा था। शकों से भयंकर युद्ध हुआ। गर्दभिल को हार हुई। यह सोचकर कि कि खुले मैदान में उसकी हार निश्चित है वह किले में चला गया, और अपने जादू का सहारा लिया। जब कालकसूरि ने यह सुना तो उसने शक सामंतों को इस बात की चेतावनी दी कि वे अपना कान बंद कर लें जिससे 'गर्दभी' को सुन न सकें। ऐसा करने से गर्दभिल का जादू उन पर नहीं चल पायेगा। उसने कुछ शक तीरंदाजों को

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh


भी गर्दभिल के मुंह खोलने से पूर्व ही मुंह बंदकर देने की हिदायत दी। एक निश्चित समय पर गर्दभिल के मुंह खोलने तथा शब्द निकालने से पूर्व ही शक तीरंदाजों ने उसके मुंह में तीर भर दिया। वह बोल न सका। शक विजयी हुए। कालक की बहन सरस्वती स्वन्तत्र हुई।

इस घटना के कुछ ही कालोपरांत श्री विक्रमादित्य ने इन शकों को वहां से खदेड़ दिया और अपने नाम का संवत् चलाया। यहाँ से निकाले जाने पर कुछ शक मथुरा चले गए, कुछ अपनी प्राचीन भूमि शकद्वीप में बढ़ गए[१]।

मथुरा के शक-कुल के बारे में पर्याप्त प्रकाश मथुरा सिंह शीर्ष लेख डालता है। हम लेख से, जिसे कि पूर्णरूपेण ईरानी प्रभाव में बना हुआ कहते हैं, इस कुल के क्रम का पता चलता है[२]।

( ६ ) **मथुरा सिंह शीर्ष लेख :** मथुरा प्रदेश पर शकों ने कब अधिकार किया इस पर मतैक्य नहीं है। मथुरा सिंह शीर्ष लेख का अर्थ लगाते हुए कोनो ने कहा है कि युवराज खरोष्ठ राजुल का श्वसुर था और मोग के बाद वही 'शासक' हुआ[३]। यदि अभिलेख का यह अर्थ स्वीकार कर लिया जाय तो मथुरा प्रदेश का शकों के अधिकार में होना मोग के शासन काल में ही निर्धारित हो जाता है, परन्तु थामस[४] ने इसका कुछ भिन्न अर्थ लगाया है। उनके अनुसार महाक्षत्रप राजुल की अग्रमहिषी, अयसि कोमुसा की पुत्री, युवराज खरोष्ठ की मां थी जिसका नाम नंदति अक्सा था। इस अर्थ से, जिसको कि डा० दिनेशचन्द्र सरकार ने भी स्वीकार किया है,[५] युव-

---

१. ज० इं० हि०, कोनो, १२। २३।
२. दि शकास इन इंडिया, डा० चट्टोपाध्याय, पृ० २७।
३. का० इं० इं० २। २६।
   इं० ६। १४१।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh



राज खरोष्ठ की स्थिति महाक्षत्रप राजुल से निम्न जान पड़ती है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि खरोष्ठ राजुल का पुत्र था और संभवतः पिता के जीवन-काल में ही उसकी मृत्यु हो गयी। उसके बाद उसका भाई शोडास उत्तराधिकारी हुआ। पिता की मृत्यु के बाद संभवतः शोडास ने महाक्षत्रप उपाधि धारण किया।

**( अ ) राजूल :** मथुरा क्षत्रपी का प्रथम शाशक राजूल था। यह महाक्षत्रप शोडास का पिता था। मथुरा के निकट मोरा नामक स्थान पर एक ब्राह्मी लेख से राजूल का महाक्षत्रप होने का पता चलता है। पश्चिम में बढ़ कर उसने यवन सत्ता का ह्रास किया। इसका पता उसके स्ट्रेटो प्रथम व द्वितीय के सिक्कों के अनुकरण से प्रमाणित होता है। अतः राजूल के शासन का मुख्य गढ़ पूर्वी पंजाब था और मथुरा को उसने बाद में जीता।[१] मथुरा में कुछ हगान और हगामष के सिक्के मिले हैं जिन्होंने संभवतः कुछ काल तक सम्मिलित शासन किया।[२] इन सिक्कों के प्रकार मथुरा के पंचाल ( शुंग ) शासकों के सिक्के से मिलते-जुलते हैं। इससे पता चलता है कि हगान और हगामष, गोमित्र और रामदत्त, मथुरा के आस-पास के शासकों, को हराकर स्वयं वहाँ के शासक बन बैठे। यदि राजूल ने भी मथुरा पर शासन किया है तो उसने हगान और हगामष के पश्चात् ही शासन-सूत्र को संभाला होगा।[३]

**( आ ) शोडास**—राजूल के बाद उसका पुत्र शोडास उत्तराधिकारी हुआ। पिता की मृत्यु के बाद ही वह महाक्षत्रप उपाधि धारण किये होगा क्योंकि मथुरा सिंह शीर्ष लेख में वह सिर्फ क्षत्रप कहा गया है। उसके बाद के ही अमोहिनी लेख[४] में, जिसकी तिथि विवाद-

---

१. दि शकास इन इंडिया, चट्टोपाध्याय, पृ० २८।
२. वही।
३. ब्रि० म्यू० कै० क्वां० एं० इं०. एलेन, पृ० ११५।
४. एपि० इं० २। १९९, एपि० इं० ९। २४३-४।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh



ग्रस्त है, शोडास को महाक्षत्रप कहा गया है। शोडास के सिक्के और अभिलेख दोनों मथुरा में पाये गये हैं। एक सिक्के में वह 'महक्षत्रपस पुत्रस खत्रपस संडसस' कहा गया है। पहले क्षत्रप था[१] पर बाद में जैसा कि अमोहिनी लेख से ज्ञात होता है, महाक्षत्रप हुआ। उसके सिक्के मथुरा के आसपास ही मिले हैं, पूर्वी पंजाब में उसके सिक्के नहीं मिलते। अतएव उसके राज्य की सीमा को मथुरा के आसपास तक ही निर्धारित करना होगा।

(३) **राज्य-विस्तार**—सिक्कों के प्रसार के आधार पर हम राजूल और शोडास के राज्य की सीमा को निश्चित करने का प्रयत्न करेंगे। किन्तु इससे यह न समझ लेना चाहिए कि जहाँ-जहाँ उसके सिक्के पाये गये हैं वह क्षेत्र उसके राज्यांतर्गत ही हों। सिक्के तो वणिकों के साथ भी हटते-बढ़ते रहते हैं। राजुवुल के बड़ी-तादाद में मथुरा में सिक्के मिले हैं। इस प्रकार उसके राज्य की सीमा पूर्वी पंजाब और पश्चिमी उत्तर प्रदेश से लेकर पूरब में मथुरा तक थी।[२] चूँकि पूर्वी पंजाब में शोडास के सिक्के पर्याप्त मात्रा में नहीं मिलते हैं अतः हम उसके राज्य की सीमा-रेखा मथुरा के आसपास ही खींचेंगे[३]।

(ई) **खरपल्लान**—सारनाथ में प्राप्त एक अभिलेख से, जिस पर कनिष्क के काल का ३ अंकित है, पता चलता है कि महाक्षत्रप खरपल्लान और क्षत्रप वनस्पर कनिष्क को भेंट दिया करते थे। ये उसके अधीनस्थ शासक थे।[४] वे संभवतः शोडास के वंशज थे।[५] खरपल्लान ने कनिष्क की सत्ता को स्वीकार कर लिया था और उसका

---

१. क्वायंस आफ दी इण्डोसीथियन्स, कनिंघम, प्लेट नं १२, सिक्का नं १२ पृ० १७१।
२. क्वायंस आफ शकास, कनिंघम, पृ० २६।
३. दि शकास इन इंडिया, डा० चट्टोपाध्याय, पृ० २६।
४. एपि० इं०, फोगेल, ८।१७३।
५. दि शकास इन इंडिया, डा० चट्टोपाध्याय, पृ० २६।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh



पुत्र वनष्पर संभवतः वाराणसी में रहकर अपने पिता के पूर्वी प्रदेशों पर शासन करता था।[१]

कुषाणों द्वारा मथुरा विजय और भारत के पूर्वी क्षेत्र से सम्मिलित होने का वर्णन तिब्बती और चीनी वृत्तान्त करते हैं। तिब्बती स्रोतों से ज्ञात होता है कि 'कनिक' नामक किसी नृपति ने भारत पर चढ़ाई की और सोकेड (साकेत अथवा अयोध्या) को नष्ट किया। कुमारलाट कृत कल्पनामण्डटीका के चीनी अनुवाद, जो कि कनिष्क के काल में हुआ था,[२] से पता चलता है कि कुषाणवंश में देवपुत्र कनिष्क नामक कोई बहादुर नृपति हुआ था, उसने पूर्वी भारत को जीता। विजेता पूर्वी प्रदेशों को जीतता हुआ जब राजधानी को लौट रहा था तो रास्ते में उसे स्तूपों का देश मिला जिसको भ्रमवश उसने बौद्धों का समझ लिया था। बाद में उसे पता लगा कि वह बौद्धों का नहीं निर्ग्रन्थों का स्तूप था। उन स्तूपों में कोई अवशेष नहीं था।[३] यह वृत्तान्त इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है कि इसमें यूहचियों द्वारा पूर्वी भारत के विजय का वर्णन है। इस विजयोपरांत यूहची मथुरा होकर ही वापस लौटे होंगे। इतकी पुष्टि कंकालीटीला से प्राप्त अभिलेखों से होती है।[४] मथुरा से प्राप्त १३२ अभिलेखों की सूची में केवल ८४ जैन, ३३ बौद्ध और १५ ऐसे लेख हैं जिनका पता नहीं चल सका है कि वे किस धर्म के हैं।

## क्षहरात कौन थे ?

'क्षहरात कुल भारतीय शकों की एक शाखा थी जो मध्यएशिया के निवासी थे। किन्तु 'क्षहरात' नामक किसी कुल का उल्लेख स्कीथियन जाति की शक शाखा में हम नहीं पाते हैं। फिर ये कौन थे ?

---

१. एपि० इं०, फोगेल, ८।१७४।
२ दि शकास इंडिया, डा० चट्टोपाध्याय, पृ० ३०।
३. इं० एं० ३२।३८५।
४. दि० शकास इन इंडिया, डा० चट्टोपाध्याय, पृ० ३०।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh


इस प्रश्न का उत्तर देते हुए प्रायः सभी विद्वान एक ही निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि क्षहरात शकों की एक जाति विशेष के नाम का द्योतक है। किन्तु इसका समाधान वे नहीं कर सके हैं कि वह क्षहरात क्यों कहलाए? उनकी मूल भूमि कहाँ थी? प्रोफेसर रायचधौरी ने इस ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट करने की चेष्टा की थी। उनके मतानुसार 'क्षहरात उत्तर की प्रसिद्ध शक जाति 'करताई' से मिलते जुलते हैं।[१] प्रस्तुत लेखक इस प्रश्न पर नवीन दृष्टिकोण से विचार करना चाहता है।

यदि शक अभिलेखों पर दृष्टिपात किया जाय, विशेषकर तक्षशिला के पतिक के ताम्रपत्र लेख पर, तो ज्ञात होगा कि 'क्षहर' नाम की वहां पर कोई नगरी थी जिसका लिअक कुसुलक शासक था।[२] क्षहर पह्लवी का शब्द है। इससे हम अनुमान लगा सकते हैं कि वे उसी नाम के किसी शहर से आये होंगे और अपनी मूलभूमि की स्मृति में उसी नाम की एक नगरी भी बसायी। शकों का इतिहास इस बात का साक्षी है। भारत में शक राजवंशों के इतिहास का अध्ययन करने से विदित होता है कि वे अपनी मूलभूमि से किसी न किसी रूप में संबंध स्थापित किये हुए थे। उदाहरण के लिये मथुरा के शक क्षत्रप अपनी मूलभूमि को श्रद्धांजलि अर्पित करते थे।[३] यह बात सुराष्ट्र और उज्जयिनी के महाक्षत्रपों के साथ भी थी जो अपने को 'कार्दमक' कहते थे।[४] कार्दम फारस में एक नदी है। इस प्रकार वे यह बतलाते थे कि वह कर्दम-घाटी के रहने वाले थे। सभी विदेशी जातियां अपनी मूलभूमि की स्मृति अपने मानस-पटल पर बनाए रहती हैं। वे शताब्दियों उसको नहीं भूलतीं। भारतीय पारसी अपनी मूल भूमि की स्मृति लगभग आठ शताब्दियों तक बनाये रही। प्राचीन इजिप्सियन और

---

० हि० एं० इं०, पृ० ४८४।

२. क्षहर [स]चुख्सस क्षत्रपस लिअको कुसुलको।

३. एपि० इं० ६। १४१।

४. देखिये वासिष्ठीपुत्र श्री शातकर्णि का कन्हेरी अभिलेख।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh


फोनेशियन भी अपनी मूल-भूमि की यादगार अब तक बनाए हुए हैं, यद्यपि वे उस स्थान को जहां वे वस्तुतः रहते थे भूल गये हैं।[१]

इसके अतिरिक्त हमारे पास एक अन्य प्रमाण भी भी है जिसके आधार पर हम यह कह सकते हैं कि 'ख़हर' तक्षशिला की मूल-भूमि थी जिसकी स्मृति को बनाये रखने के लिये ही उन्होंने तक्षशिला में इस नगरी को बसाया। भारतीय पूर्वी द्वीप समूहों की ओर जब बढ़ रहे थे जावा और बाली-द्वीप-समूह में मथुरा नामक नगरी का उल्लेख मिलता है। मथुरा दक्षिण भारत में एक नगर है, अतएव जहाँ वे (भारतीय) बसे वह उनके मूल भूमि के ही नाम से पुकारा जाने लगा। इसीलिए बाली-द्वीप-समूह में हम 'मदुरा' नामक नगरी का उल्लेख पाते हैं।

प्रारंभ में ये शक जहां बसे ( सिंध-पंजाब का क्षेत्र ) वह विदेशी आक्रमकों के मार्ग में पड़ता था जो शताब्दियों तक विदेशियों द्वारा रौंदा जाता रहा। इसलिए आश्चर्य नहीं कि इन शकों को भी और सुरक्षित स्थान की तलाश में उस स्थान को छोड़ना पड़ा हो। संभवतः इसी भाग-दौड़ में वे महाराष्ट्र पहुँचे और अपने को 'ख़हरात' अर्थात् 'ख़हर' के निवासी बतलाया। जिस प्रकार मथुरा के रहने वाले माथुर और श्रावस्ती के रहने वाले श्रीवास्तव कहलाये।

इस प्रकार यह निष्कर्ष आसानी से निकाला जा सकता है कि महाराष्ट्र के 'ख़हरात' मूलतः मध्यएशिया के निवासी थे जिन्हें बर्बर जातियों के सतत आक्रमणों के भय से अपनी मूल-भूमि को छोड़ना पड़ा होगा। उनकी पहली शाखा भारत में खैबर दर्रे से आयी[२] और सिंध-पंजाब के क्षेत्र में आकर बस गयी। इस क्षेत्र में यवनों की संख्या अधिक थी। इसके अतिरिक्त वह विदेशी आक्रमणकारियों के मार्ग में भी पड़ता था। अतएव पार्थवों का जब आक्रमण हुआ उनको वह भूमि छोड़नी पड़ी होगी और संभवतः सौराष्ट्र में, जहां शक बसे थे, उनको

१. दि वैदिक एज, पृ० २१६।

२. लूजाँ, स्कीथियन पीरियड आव इंडियन हिस्ट्री, पृ० ३५७।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh


शरण मिली होगी और तभी उन्होंने 'क्षहरात' नाम धारण किया होगा। यवनों से अपने को भिन्न बतलाने के लिये ही संभवतः उन्होंने ऐसा किया। यदि वह ऐसा न करते तो हो सकता था कि सौराष्ट्र के शक उनको महाराष्ट्र में प्रवेश करने के लिये मार्ग न देते; मार्ग बनाने के लिये हो सकता था उनको उनसे लड़ना पड़ता। लेकिन स्वजाति के लोग आपस में कम ही लड़ते हैं। बल्कि ऐसी दशाओं में तो ये खुशियां मनाते हैं। इतिहास इस बात का साक्षी है। सिकन्दर जब भारत पर चढ़ाई करने को बढ़ा रास्ते में उसकी मुठभेंड़ नीसा के लोगों से हुई। किन्तु नीसा के लोगों ने सिकन्दर के प्रति तत्काल आत्मसमर्पण कर दिया और उसकी सहायता के लिये ३०० घुड़सवारों की एक सेना भी भेंट की। वे अपने को डियोनीसस् का वंशज कहते थे। इसके प्रमाण में उन्होंने अपनी भूमि पर 'आइवी' लता दिखाई और नगर-वर्ती पर्वत का नाम ग्रीक 'मेरोस' की भाँति 'मेरो' बतलाया। इससे सिकन्दर के गर्व को तुष्टि मिली और उसने अपनी सेना वहां विश्राम और कुछ दिनों तक उन दूर से भाइयों के साथ पानोत्सव आदि मनाने की अनुमति दी।[१] यह स्वाभाविक ही था कि सौराष्ट्र के तक्षशिला के शकों से नहीं लड़े।

इस प्रकार यह कहना अनुपयुक्त न होगा कि ये क्षहरात मूलतः मध्यएशिया के ही निवासी थे जो यूह्-चियों के भय से अपनी मूल-भूमि से भाग कर तक्षशिला में आ बसे थे और बाद में पार्थवों के आक्रमण के भय से भाग कर महाराष्ट्र चले गये थे। मुद्रातत्वविद् रैप्सन ने भी कहा है—"भूमक के सिक्कों पर खरोष्ठी लिपि की स्थिति ब्राह्मी लिपि की तरह ही है। नहपान के कांसे के सिक्कों पर इसको हम नहीं पाते, यद्यपि उसके चाँदी के सिक्कों पर इसको लिखा गया है किन्तु उसको वह मान्यता नहीं मिली थी जो भूमक के सिक्कों पर खरोष्ठी लिपि को प्राप्त थी। खरोष्ठी लिपि का इस तरह विलुप्त

१. डा० रमाशंकर त्रिपाठी, भारतवर्ष का इतिहास; पृ० ९२।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh


होना यह बतलाता है कि वह वस्तुतः उत्तर भारत की लिपि थी जिसका पश्चिमी भारत में प्रयोग नहीं होता था। इसलिए इस लिपि को पश्चिमी भारत में वह स्थान नहीं मिल सका जो उसको उत्तर भारत में प्राप्त था।"[१]

'इस प्रकार सभी ज्ञात प्रमाणों—सिक्कों के किस्म, धातु, लेख, आदि-से यह प्रमाणित होता है कि क्षहरात कुल के क्षत्रप उत्तर भारत के किसी पहलव अथवा शक-पहलव कुल के अधीन शाशक थे।"[२]

## क्षहर की अवस्थिति :

अब प्रश्न 'क्षहर' की अवस्थिति के बारे में उठता है। इस प्रश्न का उत्तर मध्य-एशिया में यूह्-चियों का संक्रमण एवं प्रसरण देता है। चीनी इतिहास से ज्ञात होता है कि हूण राजा चि-यू ने यूह्-चियों को बुरी तरह परास्त किया जो कि काशगरिया के पूर्वी उत्तर-पूर्वी भाग में रहते थे। इस भाग के अधिकतर निवासी बर्बरता का त्यागकर सभ्य जीवन व्यतीत करने लगे थे और शहरी हो गये थे तथा ग्रीकों की ही भाँति छोटे-छोटे नगर राज्यों में रहते थे। चीनी वृत्तान्तों में इस प्रकार के २६ नगर राज्यों का वर्णन मिलता है।[३]

राजा के मारे जाने से यूह-ची अपनी भूमि पर टिक न सके। वे पश्चिम की ओर भागे और दो दलों में विभक्त हो गये। एक दल कीयांग में जाकर बस गया। किन्तु दूसरा दल बढ़ता ही गया और सीरदरिया के कांठे में 'सेक' लोगों से जा टकराया। सेक अथवा 'शक' उनके सामने टिक न सके। वे भागे। उनकी एक शाखा की-पिन और सिंन्ध-पंजाब क्षेत्र में आकर बसी।

इन 'सेक' अथवा शक लोगों के संबंध में लिखते हुए प्लिनी कहता है कि उसके पूर्व के लेखक उनको 'अरमाइ' कहते थे और

१. ज० रा० ए० सा० १६०४ पृ० ३७३।
२. वही।
३. मैकगवर्न, अर्ली इंपार्यस आफ सेंट्रल एशिया, पृ० १११।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh


उनका जीवन व्यापार पहलवों से बड़ा मिलता जुलता था। जस्टिन भी इसका समर्थन करता है। उसके अनुसार पार्थव भी इसी स्किथियन कुल की शाखा थे।[1]

हखमनी सम्राट दारा के लेख से भी विदित होता है कि ये शक उसके साम्राज्यान्तर्ग ईरानी अथवा पह्लवी-शब्द और पह्लवी का ईरानी भाषा से काफी निकट-संबंध था। ईरानी साम्राज्य के अंदर 'ह्हर' नामक नगरों की श्रृंखला भी मिलती है। संभवतः आमूदरिया और सीरदरिया के कांठे में भी 'ह्हर' नाम का कोई स्थान रहा हो जिसके निवासी ये शक थे।

(आ) भूमक : महाराष्ट्र के शक-कुल में केवल दो व्यक्तियों का नाम अभिलेखों में मिलता है—नहपान और उसका जामाता उषव-दात किन्तु १९०४ई० में प्रोफेसर रैप्सन ने इस कुल के इससे भी पूर्व के एक राजा का पता लगाया जिसका नाम भूमक था[2]। इसका ज्ञान केवल, सिक्कों से हो पाया है। विंसेंट स्मिथ ने इसको गुदुफर का सेनापति बतलाया है[3]।

डा० स्तेन कोनो[4] ने यह सुझाया है कि भूमक और ग्सामोतिक (चष्टन का पिता) दोनों एक ही व्यक्ति थे। कोनो ने 'ग्समो' का अर्थ भूमि से और 'भूमक' को इसका संस्कृत रूप बतलाया है। यदि यह सत्य है तो कहना पड़ेगा कि ग्सामोतिक अपने नाम के संस्कृत रूप को सिक्कों पर ढलवाता था। किन्तु प्रो० रैप्सन ने इसका खण्डन करते हुए कहा है कि 'भूमक के सिक्कों के प्रकारों को देखने से पता चलता है कि उसने नहपान से पहले शासन किया, उनमें कोई संबंध

---

१. कनिंघम, क्वायंस आफ दि इण्डो-स्किथियनः शक-कुषाण, पृ० २२३
२. रैप्सन, कैटलाग, पृ० १०८।
३. अर्ली हिस्ट्री आफ इंडिया, पृ० २२०।
४. का० ई० ई० २। ७०।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh


था इसका हमारे पास कोई प्रमाण नहीं है"[१]। यदि इस तथ्य की गहराई में उतरें तो भूमक और ग्रामोतिक दो व्यक्तियों का अंतर स्पष्ट मालूम हो जायेगा। भूमक के सिक्कों से यह स्पष्ट है कि वह क्षहरात था परंतु चष्टन क्षहरात नहीं था। दोनों भिन्न-भिन्न वंश के थे। इस प्रकार क्षहरात वंश में नहपान से भी पूर्व एक व्यक्ति हुआ था भूमक जिसका ज्ञान केवल सिक्कों से हो सका है।

(इ) **नहपान** : भूमक के बाद नहपान का नाम क्षहरात कुल की वंशक्रमणिका में मिलता है। नहपान को कई नामों से अभिहित किया गया है, यथा नखपान, नहवन, नरवाह,, नरवाहन तथा नखवान आदि। नहपान उसका ईरानी नाम है। नह = जन और पान = दर्पण अथवा पाल। अर्थात जन-पाल या जन-दर्पण। 'दर्पण' के रूप में डा० सुधाकर चट्टोपाध्याय ने[२] तथा 'पाल' के अर्थ में डा० पी० आर० देवरस[३] ने इसको ग्रहण किया है। इस प्रकार नहपान के संबंध में हमारे पास जानने के तीन साधन उपलब्ध हैं—साहित्य, अभिलेख तथा सिक्के।

जैन अनुश्रुति तथा पुराणों से ज्ञात होता है कि नहपान ने चष्टन के पूर्व तथा गर्दभिल के बाद करीब ४० वर्ष तक शासन किया। पार्जीटर नखवान को उत्तर-कालीन शुंग काल में रखता है।[४]

यह बड़ा प्रतापी शासक था; यद्यपि इन आंध्र-सातवाहनों के हाथों पराजित होना पड़ा तथापि यह इस कुल का सर्वशक्तिमान राजा था। कुछ विद्वानों ने उसके 'शक' होने में संदेह किया है। उसकी पुत्री दत्तमित्रा उषवदात (ऋषभदत) नामक एक शक सामंत को व्याही थी। उषवदात शक था यह स्पष्ट है।[५]

---

१. रैप्सन, कैटलाग, पृ० १०८।
२. डा० चट्टोपाध्याय, दि शकास इन इंडिया, पृ० ३३।
३. प्रो० इं० हि० कां० १९४०, पृ० १४९।
४. डाइनेस्टीज आफ़ कलि एज, पृ० ४९।
५. एपि० इं० ८। १४ (अ)। ८५।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh


पुत्री और जामाता दोनों के नाम हिन्दू हैं जिससे प्रमाणित होता है कि शक लोग भारतीय संस्कृति को अपनाने लगे थे। उनके हिन्दुओं में विवाह संबंध भी स्थापित होने लगे थे[1]।

नासिक के पाण्डु लेख तथा पूना जिले के जुन्नार तथा कार्ले के उषवदात के अभिलेखों से जान पड़ता है कि नहपान महाराष्ट्र के बड़े भूभाग का स्वामी था। महाराष्ट्र के वे भाग आंध्र-सातवाहनों के अधीन थे। शातकर्णि राजाओं के लेख इन भागों में उत्कीर्ण मिले हैं। इससे प्रमाणित होता है कि नहपान ने भूभाग आंध्र-सातवाहनों ही से जीते थे। इस काल में मालवों के आक्रमण हो रहे थे और उनको रोकने के अनेक प्रयत्न उत्तमभद्र कर रहे थे। नहपान ने उत्तमभद्रों के प्रयत्न में सहायता करने के लिए अपने जामाता उषव-दात को भेजा। इस युद्ध में उषवदात की विजय हुई और उसने अपने श्वसुर और महाक्षत्रप नहपान का आधिपत्य आधुनिक अजमेर के निकट तक फैला दिया[2]। अजमेर के पास पुष्कर (पोखर) तीर्थ में उसने अनेक दान किये।[3]

नहपान के शासन काल की तिथियाँ उसके लेखों में ४१ वें साल से ४६ वें साल तक उत्कीर्ण मिलती हैं, परन्तु उसके संवत् का उल्लेख न होने के कारण उनका निश्चय करना थोड़ा कठिन है। फ्रांसीसी विद्वान दुब्रोआ[4] ने इन तिथियों को विक्रम संवत् के अनुसार अंकित माना है। उस दशा में ये ९९ ईसवी से १०४ ईसवी तक पड़ी। कनिंघम एवं राखाल बाबू प्रभृत विद्वान इस मत का समर्थन करते हैं। किन्तु रैप्सन ने यह प्रमाणित कर दिया है कि उपर्युक्त तिथि विक्रम संवत् का नहीं अपितु शक संवत् का है। विद्वान लेखक के विचार

१. द्रष्टव्य, अध्याय, सामाजिक जीवन।
२. एपि० इं० ८। १५। ७८।
३. वही।
४. एं० हि० दकन, पृ० २२।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh


से प्रायः सभी विद्वान सहमत हैं[१]।

नासिक और कार्ले के अभिलेख उसके साम्राज्यांतरगत निम्न-लिखित प्रदेशों का वर्णन करते हैं—दक्षिणी गुजरात, उत्तरी कोंकण—भरुकच्छ से सोपारा तक और नासिक एवं पूना के क्षेत्र।[२] इन प्रदेशों का शासन भार जमाता ऋषभदत और आमात्य अयम पर था।

नासिका का लेख जिस पर किसी संवत् का ४५ अंकित है नह-पान को सिर्फ 'क्षत्रप' कहा गया है। जबकि जुन्नार के लेख में, जिस पर किसी संवत् का ४६ अंकित है उसको 'महाक्षत्रपस्वामि' अभिहित किया गया है। अयम का यह जुन्नार लेख नहपान के अब तक प्राप्त लेखों में अंतिम समझा जाता है। इससे विदित होता है कि उसने अपने शासन के अंतिम वर्ष में महाक्षत्रप की उपाधि धारण की थी। अब प्रश्न उठता है कि महाक्षत्रप से पहले जब वह क्षत्रप था तो किसका क्षत्रप था। इसका समाधान नहीं हो सका है। डा० सुधाकर चट्टोपाध्याय ने यह सिद्ध किया है कि नहपान ने क्षत्रप-उपाधियों ही धारण कर लिया था।[३]

नासिक के लेख[४] और उसके निकट के जोगलथेम्बी स्थान से प्राप्त सिक्कों के अनुशीलन से विदित होता है कि नहपान की शक्ति को सातवाहनकुलीय प्रतापी सम्राट गौतमीपुत्र श्रीशातकर्णि ने कुचल दिया था।

(ई) **उषवदात** : उषवदात नहपान जमाता था। उसके पिता का नाम दीनीक थी और पत्नी का दक्षमित्रा। इससे श्री सत्यश्रव ने यह

---

१. तिथि के संबंध में विस्तृत जानकारी के लिए देखिए डा० चट्टोपाध्याय कृत, 'दि शकास इन इण्डिया', पृ० ४१-४८।
२. रैप्सन, कैप्लाग, पृ० ५७।
३. डा० चट्टोपाध्याय, दि शकास इन इंडिया, पृ० ३६।
४. एपि० इं० ८।६०।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh



अनुमान लगाया है कि दत्तमित्रा नहपान की भारतीय पत्नी से उत्पन्न पुत्री रही होगी।[१] इनको एक पुत्र भी था, मित्रदेवरणक। वह भी माता-पिता की भाँति दानी था। इसने भी स्तंभ बनवाया था।[२] उषवदात का परिवार बड़ा दानी था। अभिलेखों से यह स्पष्ट हो जाता है।

(उ) अयम : अयम की स्थिति का ज्ञान हमें जुन्नार लेख से होता है। वह नहपान का आमात्य था। वह वत्स गोत्र का था। उसने भी दानादि कार्य किये थे।

## (२) उज्जयिनी और सुराष्ट्र के महाक्षत्रप :

(अ) चष्टन : शकों की पाँचवी शाखा उज्जयिनी और सुराष्ट्र में आ बसी। चष्टन इस वंश का संस्थापक था। लेखों में इसको 'भ्सामोतिक पुत्र, कहा गया हे। 'ष्समो' का संस्कृत रूप भूमि होता है। इस अर्थ के आधार पर लेवी और कोनो प्रभृत विद्वानों ने ष्सामोतिक को भूमक से मिलाया था और चष्टन को इस तरह नहपान का संबंधी बतलाने का प्रयत्न किया था। किन्तु नामों की एकता व्यक्ति की एकता को सिद्ध नहीं करती। रैप्सन ने इसकी निःसारिता को सिद्ध कर दिया।

चष्टन के काल का निर्णय करना भी सरल नहीं है। दुब्रोआ के अनुसार ७८ ईसवी में शक संवत् का चलाने वाला चष्टन ही था। यह मत अनेक कारणों से विद्वानों को मान्य न हो सका, परन्तु इतना उनको भी ग्राह्य है कि कच्छ के अन्दउ स्थान से प्राप्त अभिलेख में जो तिथि ५२ दी गई है वह शक संवत का ही है। इस मत के अनुसार, जिसको कि प्रायः सभी विद्वान मानते हैं, यह तिथि ( ७८ + ५२ = ) १३० ईसवी हुई। चष्टन ने शक परंपरा के अनुसार पहले तो 'क्षत्रप' के विरुद से फिर 'महाक्षत्रप' की हैसियत से शासन किया। कुछ लोग उसके क्षत्रप विरुद के कारण कम से कम आरंभ में उसको

१. सत्यश्रव, दि० शकास इन इंडिया, पृ० ६५।
२. एपि० इं० ७।५६।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh



स्वतंत्र सत्ता स्वीकार नहीं करते। उनके अनुसार चष्टन महाक्षत्रप होने से पूर्व संभवतः या तो गौतमीपुत्र श्री शातकर्णि का सामंतनृपति था[१] अथवा कुशानों का सामन्त रहा होगा।[२] किन्तु केवल क्षत्रप होना इस बात को सिद्ध नहीं करता कि शासक अपने अधिपति का माण्डलिक मात्र है।[३] पिता महाक्षत्रप के काल में भी पुत्र क्षत्रप कहलाता था। केवल इस विरुद से चष्टन का माण्डलिक होना ध्वनित नहीं होता। भूगोलविद् टालेमी ने अपने भूगोल में 'ओजेन के तिथास्तेनिज' नामक नरेश का उल्लेख किया है। यह नरेश संभवतः चष्टन ही था।[४] अन्दउ लेख विद्वानों में विवाद का विषय बना हुआ है। विद्वानों ने "राज्ञो चष्टनस ग्सामोतिक पुत्रस राज्ञो रुद्रदामस जयदाम पुत्रस वर्षे ५२" का भिन्न-भिन्न अर्थ लगाया है। डा० दामोदर रामकृष्ण भंडारकर ने यह निष्कर्ष निकाला था कि चष्टन और रुद्रदामन ने कुछ काल तक सम्मिलित शासन किया।[५] डा० रमेशचन्द्र मजूमदार भी इसका समर्थन करते हैं।[६] दुब्रोआ भी प्रायः ऐसा ही कहता है और इस लेख को रुद्रदामन के शासन काल का माना है।[७] इस प्रकार प्रायः सभी विद्वान भण्डारकर के ही निष्कर्ष पर पहुँचते हैं।

**(आ) जयदामन :** चष्टन के बाद उसका पुत्र जयदामन क्षत्रप हुआ। वह राजा अथवा महाक्षत्रप नहीं हुआ होगा। संभव

---

१. एं० हि० दकन, पृ० ३७।
२. डा० त्रिपाठी, प्राचीन भारत का इतिहास, पृ० १६६।
३. डा० चट्टोपाध्याय, दि शकास इन इंडिया, पृ० ३६ फु० नो० नं० २७।
४. डा० उपाध्याय, प्राचीन भारत का इतिहास, पृ० २१०
५. इं० एं० ४७।१५४।
६. वही।
७. एं० हि० दकन पृ० २७।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh


है सातवाहनों की शादी के सामने उसको झुकना पड़ा।[१] विद्वानों के इस अनुमान का समर्थन रुद्रदामन का जूनागढ़ लेख भी करता है जिसमें वह कहता है कि 'इस' पद को उसने अर्जित किया है, उत्तराधिकार के रूप में प्राप्त नहीं किया है।[२] किंतु अन्दउ लेख पर यदि दृष्टिपात किया जाय तो ज्ञात होगा कि चष्टन अपने पौत्र के साथ सम्मिलित शासन करता है, ऐसे समय में उनके राज्य पर किसी संकट का प्रश्न ही नहीं उठता। अतएव गिरनार लेख के 'स्वयमधिगत-महाक्षत्रप-नाम्ना' को गम्भीरतापूर्वक नहीं ग्रहण करना चाहिए। उसमें, जैसा कि भारतीय लेखों की विशेषता होती है, राजा का गुणगान किया गया है।[३] डा० रायचौधरी ने उसके क्षत्रप नामधारी ही रहने का कारण बतलाते हुए कहा है संभवतः वह अपने पिता के राजत्व काल में ही परलोकवासी हो गया।[४]

(इ) **रुद्रदामन :** जयदामन के बाद उसका पुत्र और चष्टन का पौत्र रुद्रदामन महाक्षत्रप हुआ। रुद्रदामन न केवल उज्जयिनी के क्षत्रप कुल में वरन समस्त शक-राजकुलों में सबशक्तिमान राजा था। उसने शक-वंश की दबी शक्ति का उद्धार किया और महाक्षत्रप उपाधि धारण किया। उसके विस्तृत इतिहास का वर्णन उसका गिरनार शिलालेख ( ७२ शक संवत = १५० ईसवी ) करता है। यह प्रशस्ति रुद्रदामन की सैनिक सफलताओं और उसके व्यक्तित्व के गुणों पर प्रचुर प्रकाश डालता है।

रुद्रदामन एक महान योद्धा और पराक्रमी विजेता था। उसने महाक्षत्रप की उपाधि उत्तराधिकार के रूप में न प्राप्त कर स्वयं अधि-

---

१. ज० रा० ए० सो० १८९०, पृ० ६४६, अर्ली हिस्ट्री आफ दकन, पृ० २९।

२. एपि० इं० ८।४२।

३. डा० चट्टोपाध्याय, दि शकास इन इंडिया, पृ० ५५।

४. पो० हि० एं० इं० पृ० ५०६।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh


गत किया था। दक्षिणापथ के स्वामी को उसने दो-दो बार युद्ध में पराजित किया था, किन्तु निकट-संबंधी होने के कारण उसने उसे मुक्त करके यश प्राप्त किया[१]। इसके अतिरिक्त यौधेयों को भी युद्ध में उसने करारी हार दी। दक्षिणी पंजाब और निकटवर्ती प्रदेशों में यौधेयों का एक प्रबल गणतंत्र था जो अपनी स्वतंत्रतानुरागिता के द्वारा सदा दूसरे शासकों को तंग किया करते थे। रुद्रदामन ने उनको विजित कर अपनी स्थिति सुदृढ़ कर ली और अपने साम्राज्य-विस्तार के मार्ग से अपने एक कण्टक को निर्मूल किया। गणतंत्र महात्त्वाकांक्षी राजाओं के मार्ग में सदा रोड़े बनते हैं। इस प्रकार रास्ते के कण्टकों को निर्मूल कर उसने एक विशाल राज्य की स्थापना की। उसके गिरनार लेख पर दृष्टिपात करने से उसके राज्यांतर्गत निम्नलिखित प्रदेशों का पता चलता है—

१. **पूर्व-अपर आकर-अवन्ति**—( अथवा पूर्वी और पश्चिमी मालवा ) पूर्वी मालवा की राजधानी विदिशा तथा पश्चिमी की राजधानी उज्जयिनी थी। रुद्रदामन ने अपनी राजधानी को उज्जयिनी में ही स्थापित की थी।

२. **अनूप**—दक्षिणी मालवा में नर्मदा नदी के किनारे निमार मध्य प्रदेश जिलान्तर्गत 'महेश्वर'।

३. **नीवृत**—अभी तक इसका पता नहीं चल सका है।

४. **आनर्त**—उत्तरी काठियावाड़ के भूभाग को ही आनर्त कहा गया है। इसकी प्राचीन राजधानी आनन्दपुर थी। महाभारत और पुराणों में आनर्त शब्द का उल्लेख मिलता है।

५. **सुराष्ट्र**—दक्षिणी काठियावाड़। जूनागढ़ आदि प्रदेश इसी के अंतर्गत आते हैं।

६. **श्वभ्र**—वर्तमान साबरमती।

---

१ दक्षिणापथपतेः सातकर्णोद्विरपि निर्व्याजमवजित्यावजित्य संबंधाविदूरतयानुत्सादनात्प्राप्तयशसा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh


७. मरु-कच्छ—यदि मरु-कच्छ को सही माना जाय तब तो इस प्रदेश में राजस्थान के रेगिस्तानी प्रदेश और वर्तमान कच्च आ पाते हैं। किन्तु यदि 'मरु' को 'भरु' का गलती से मरु बन जाना समझा जाय तब वह 'भरुकच्छ' एक शब्द हो जाता है, जो वर्तमान भडोंच की ओर संकेत करता है। परन्तु चूँकि लेख में यह शब्द स्पष्ट नहीं हो सका है, इस संबंध में ज्यादा नहीं कहा जा सकता।

८. सिंधु—अपर सिंधु-क्षेत्र के प्रदेश जहां से शक भारत के अन्य प्रदेशों में प्रवेश करते हैं।

९. सौवीर—इस प्रदेश की प्राचीन राजधानी मुल्तान थी।

१०. कुकुट—राजस्थान का एक भूभाग।

११. अपरान्त—उत्तरी कोंकण।

१२. निषाद—पश्चिमी विन्ध्य और अरावली के प्रदेश। इस प्रकार उसके राज्य में वे सभी प्रदेश सम्मिलित थे, जिन पर क्षहरातों का अधिकार था। नासिक और पूना जिले के प्रदेशों पर रुद्रदामन का अधिकार नहीं था।[1] इनमें से कुछ प्रदेशों पर गौतमीपुत्र शातकर्णि का अधिकार था। किन्तु रुद्रदामन ने उन पर अपना जो स्वामित्व स्थापित किया उससे यह स्पष्ट है कि उसने गौतमीपुत्र के उत्तराधिकारी को पराजित कर उससे कुछ प्रदेश छीन लिए थे।[2]

रुद्रदामन केवल एक महान् विजेता ही नहीं, अपितु एक सफल एवं योग्य शासक भी था। अपने सुशासन द्वारा उसने अपने राज्य से रोगों, लुटेरों, वन्य पशुओं और अन्य कण्टकों का उन्मूलन कर दिया था। वह स्वेच्छाचारी शासक नहीं था, वरन् धर्मशास्त्रों के अनुसार कार्य करने वाला एक प्रजावत्सल राजा था। अभिलेख के कथनानुसार 'सर्व-वर्णैरभिगम्यरक्षणार्थं पतित्वे वृतेन', सब जातियों ने मिल

१. दि एज आफ इंपीरियल यूनिटी, पृ० १८५।

२. पो० हि० एं० इं० पृ० ५०७।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh


कर उसे अपना रक्षक या स्वामी मनोनीत किया था। प्रजा के हित कि वह बहुत ध्यान रखता था। प्रजा के कल्याण की बात वह हमेशा सोचा करता था और इस हेतु कोई भी कार्य-करने के लिए वह हमेशा तत्पर रहता था। जूनागढ़ की प्रशस्ति से उसके लोकानुरंजन का भावना का एक श्रेष्ठ उदाहरण मिलता है। उसने सुराष्ट्र प्रांत में स्थित सुदर्शन झील का बांध किर से बनवाया। इस झील से यहाँ के निवासियों को बहुत लाभ होता था; बांध टूट जाने के कारण उनको कठिनाई का अनुभव हुआ जिसके निराकरणार्थ रुद्रदामन ने सुदर्शन झील का पुनर्निर्माण कराया। उसके आमात्यों से इसके निर्माण की बात को लेकर, आर्थिक कारणों के आधार पर, विरोध हो गया था। अतएव उसे स्वयं अपने कोश से धन खर्च कर, गिरनार और उसके आसपास की भूमि को जल देने वाली सुदर्शन झील की मरम्मत करवानी पड़ी, जो मूलतः चन्द्रगुप्त मौर्य के काल में बनवाई गयी थी और वर्षा के कारण उसके समय में टूट गयी थी। वह अपने आमात्यों के सत्यपरामर्शों का सदैव स्वागत करता था और उनके निश्चयानुसार कार्य करता था। लोककल्याण के कार्य का संपादन करते समय भी रुद्रदामन अपने मंत्रियों से परामर्श करता था और अपने कोश से धन व्यय कर उस कार्य को संपादित करता था।

एक कुशल विजेता और शाशक के अतिरिक्त वह साहित्य-प्रेमी भी था। वह कई विद्याओं का ज्ञाता था। व्याकरण ( शब्द ) राजनीति ( अर्थ ) संगीत ( गंधर्व ) तर्क ( न्याय ) और इसी तरह की अन्य विद्याओं में वह पारंगत था।[1] यह उसके व्याकरण जानने का ही कारण है कि उसका लेख विशुद्ध संस्कृत में हो सका जब कि अन्य शक राजाओं के लेख विशुद्ध संस्कृत में नहीं मिलते। शुंगों के बाद उसी का राजकीय लेख शुद्ध संस्कृत में मिलता है। इन कार्दमक वंशी

---

१. शब्दार्थ-गान्धर्व्व-न्यायाद्यानां विद्यानां....

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh



राजाओं के काल में उज्जयिनी विद्या का केन्द्र हो गया था।[१]

रुद्रदामन वैदिक धर्मानुयायी था तथा धर्मशास्त्रानुसार कार्य करता था। वह संग्राम के अतिरिक्त और कहीं मानव-वध नहीं करता था।[२] उसके शासन में सहायता के लिए दो प्रकार के मंत्रियों की व्यवस्था थी—मतिसचिव और कर्मसचिव।

रुद्रदामन के बाद उज्जयिनी के शकों की शक्ति दिनों दिन क्षीण होती गयी। यद्यपि रुद्रदामन के बाद दो सौ वर्षों तक इस वंश का शासन बना रहा तथापि इतने लम्बे काल में भी इस वंश के शासकों ने कोई महत्वपूर्ण कार्य नहीं किया। वे नाम मात्र के शासक थे। उनकी शक्ति काफी क्षीण हो गयी थी। संभवतः इसीलिए उनके शासन काल की घटनाओं का वर्णन करना किसी ने आवश्यक नहीं समझा।[३]

(ई)**दामघसद :** रुद्रदामन के बाद उसके उत्तराधिकारियों का ज्ञान प्रायः सिक्कों पर आधारित है। रुद्रदामन के पश्चात् उसका पुत्र दामघसद उत्तराधिकारी हुआ यह दामघसद के सिक्के प्रमाणित करते हैं जिस पर निम्नलिखित लेख खुदा है—

रुद्रदाम्नः पुत्रस्य क्षत्रपस्य दाम ( घस )[४] उसके 'क्षत्रप' प्रकार के सिक्के इस बात को प्रमाणित करते हैं कि वह अपने पिता के राजत्वकाल में उनका सहायक था। उसका 'महाक्षत्रप' प्रकार उसकी स्वतंत्रता की घोषणा करते हैं। उस पर उसका चित्र भी अंकित है जिससे विदित होता है कि वह काफी वृद्ध था और थोड़े ही काल तक उसने शासन किया होगा।[५]

---

१. दि एज आफ इंपीरियल यूनिटी, पृ० १८५।
२. यथावत्प्राप्तैर्बलिशुल्कभागैः।
३. डा० चट्टोपाध्याय, दि शकास इन इंडिया, पृ० ६४।
४. रैप्सन, कैटलाग, पृ० १२४।
५. डा० चट्टोपाध्याय, दि शकास इन इंडिया, पृ० ६४।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh


दामघसद के मरते ही क्षत्रप-कुल पर आपत्ति आयी। भाई रुद्रसिंह प्रथम के गुण्डा लेख में और भतीजे रुद्रसेन प्रथम के गड़हा लेख में उसके तथा उसके पुत्रों जीवदामन तथा सत्यदामन के नामों का उल्लेख नहीं मिलता। उनके वंशानुक्रमणिका में इनको कोई स्थान नहीं दिया गया। इसके कारणों पर प्रकाश डालते हुए रैप्सन ने कहा कि वह संभवतः इसीलिए क्योंकि राज्य के उत्तराधिकार के रूप में दो व्यक्ति आये दामघसद का पुत्र जीवदामन और भाई रुद्रसिंह प्रथम। दोनों में राज्य के लिए झगड़ा हुआ और विजय दूसरों को प्राप्त हुई। विजेता द्वारा अपने वंशक्रमणिका में उनके नाम न रखने का यही कारण होगा।[१]

## जीवदामन और रुद्रसिंह प्रथम :

सिक्कों को देखने से पता चलता है कि दामघसद के बाद उसका पुत्र जीवदामन उत्तराधिकारी हुआ। उसके माहक्षत्रप नाम के सिक्के मिले हैं, जिन पर तिथि भी अंकित है। उसने कुछ ही समय तक राज्य किया होगा कि उसका चाचा रुद्रसिंह प्रथम विद्रोह कर उठा और शासन को अपने हाथ में ले लगभग सात वर्षों तक महाक्षत्रप बना रहा। बाद में १९७ ईसवी से १९९ ईसवी तक जीवदामन ही महाक्षत्रप रहा। यदि इन नरेशों के सिक्कों का अवलोकन किया जाय तो उनके निम्नलिखित तिथिपरक सिक्के मिलेंगे—

( क )जीवदामन—महाक्षत्रप सिक्के १७८-९ ईसवी और १९७-९ ई०

( ख ) रुद्रसिंह प्रथम—

( अ ) क्षत्रप सिक्के ईसवी १८०-१,१८८-९१ ई०

( ब ) महाक्षत्रप ईसवी १८१-८८, १९१-६ ई०

जीवदामन और रुद्रसिंह प्रथम के महाक्षत्रप उपाधि काल में दो-

१. रैप्सन, कैटलाग, पृ० १२३।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh


दो बार परिवर्तन सिद्ध करता है कि उनके शासन पर कोई न कोई संकट आया होगा। १८१ ईसवी के गुण्डा लेख से पता चलता है कि आभीर सेनापति रुद्रभूति का रुद्रसिंह क्षत्रप था।[१] इससे ज्ञात होता है कि रुद्रभूति एक शक्तिशाली सेनापति था उसी तरह जिस तरह पुष्यमित्र शुंग था; जिसने राजा की उपाधि धारण न कर सिर्फ सेनापति की ही उपाधि धारण किया और महाक्षत्रपों के लिए संकट का कारण बन गया। संभवतः इसीलिए जीवदामन को राज्य छोड़कर भागना पड़ा होगा। उसके शासन के बीच में जो व्यवधान पड़ता है उसका यही कारण रहा होगा। किन्तु रुद्रसिंह प्रथम उसकी अधीनता स्वीकार कर उसके मातहत क्षत्रप बना रहा।[२] कालान्तर में जब रुद्रसिंह काफी शक्तिशाली हो गया होगा अपनी स्वतंत्रता घोषित कर दी होगी और 'महाक्षत्रय' उपाधि धारण कर ली होगी। परन्तु इस समय तक आभीर और सातवाहन प्रबल हो गए थे। उन्हें जब भी अवसर मिलता था क्षत्रप राज्य को हस्तगत कर लेते थे।[३]

## रुद्रसेन प्रथम :

जीवदामन के पश्चात् ( १९९ ई० ) रुद्रसेन प्रथम उत्तराधिकारी हुआ। वह रुद्रसिंह प्रथम का पुत्र था। रुद्रसेन प्रथम के शासन पर मूलवासार का ईसवी संवत २०० ( ? ) का लेख[४] और २०५ ईसवी का जस्डन स्तंभ लेख[५] प्रकाश डालता है। उसकी एक बहन भी थी जिसका पता वैशाली में प्राप्त एक मुहर से चलता है।[६]

---

१. एपि० इं० १६।२३३।

२. डा० चट्टोपाध्याय, दि शकास इन इंडिया, पृ० ६५।

३. ,, ,, ,,

४. ,, ,, पृ० ६६।

५. एपि० इं० १६।२३८

६. राजो महाक्षत्रपस्य स्वामी रुद्रसिंहस्य दुहितु राज्ञो महाक्षत्रपस्य स्वामी रुद्रसेनस्य भगिन्या महादेव्या (:)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh


सिक्कों को देखने से पता चलता है कि उसके पश्चात् उनके भाई क्रमशः संघदामन ( ई० २२२-३३ ) और दामसेन ( ई० २२३-३६ ) उसके उत्तराधिकारी हुए । डा० अल्तेकर के कथनानुसार संघदामन मालवों के साथ युद्ध में मारा गया जो संभवतः अपनी स्वतंत्रता चाहते थे ।[१]

दामसेन २३६ ईसवी तक महाक्षत्रप के रूप में शासन करता रहा । उसके बाद उसका द्वितीय पुत्र यशोदामन २३८ ईसवी में महाक्षत्रप हुआ । इस प्रकार दो वर्ष का व्यवधान पड़ता है इस बीच के काल में रैप्सन आभीर ईश्वरदत्त के शासन को स्थापित करते हैं ।[२] ईश्वरदत्त अधिक दिनों तक शासन नहीं कर पाया था । २३८ ईसवी में दामसेन का द्वितीय पुत्र यशोदामन महाक्षत्रप हुआ । उसके बाद उसके भाई विजयसेन ( ई० २३९-५० ) और दमजदश्री तृतीय ( ई० २५१—५ ) उत्तराधिकारी हुए । दमजदश्री के बाद उसके दो पुत्र विश्वसिंह ( ई० २७८-८२ ) और भतृदामन ( ई० २८२-९५ ) उत्तराधिकारी हुए ।

## उत्तरकालीन शक-नृपति :

ईसवी २९५ से ३४० ईसवी तक हम किसी भी महाक्षत्रप को पश्चिमी भारत के शक राजकुल में नहीं पाते ।[३] उत्तरकालीन शकों में रुद्रसिंह द्वितीय का नाम पहले आता है ।[४] कोई इसको चष्टन वंशी कहता है[५] तो कोई शाही परिवार की दूसरी छोटी शाखा की दूसरी छोटी शाखा की ओर संकेत करता है ।[६]

१ ए न्यू हिस्ट्री आफ इंडियन पीपुल, ४।५२ ।
२. डा० चट्टोपाध्याय, दि शकास इन इंडिया, पृ० ६६ ।
३. सत्यश्रव , ,, ,, पृ० ८६ ।
४. रैप्पसन, कैटलाग; पृ० १४१ ।
५. बूलर, ज० रा० ए० सो० १८९०, पृ० ६६ ।
६. एपि० इं० १६।२६२ ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh


रुद्रसिंह द्वितीय ईसवी ३०५ में क्षत्रप हुआ और ३१७ तक वह अपने पद पर बना रहा। उसके बाद यशोदामन द्वितीय क्षत्रप हुआ। इसके शासन का आरंभ ईसवी ३१७ से ३३२ ई० तक आंका गया है। श्रीधरवर्मन के कानखेरा प्रस्तर लेख को हम इसी काल में रखेंगे। यह स्वतंत्र राजा था और नन्द का पुत्र था।[१] मजूमदार ने इस लेख की तिथि को २४१-३१६ ईसवी पढ़ा है। किन्तु कुछ विद्धानों ने २०१-२७६ भी पढ़ा है। मजूमदार की पढ़ाई को ही विद्धानों ने मान्यता दी है। २६५ ईसवी से ३४० ईसवी में जब शक-राज्य संकट काल से गुजर रहा था संभवतः इसी काल में श्रीधरवमन जो शकों का मालवा क्षेत्र में कोई अधिकारी था, स्वतंत्र हो गया हो गया।[२] ईसवी सन ३३२ के बाद सिक्कों के द्वारा यदि फिर किसी शक नृपति को हम जान पाये हैं तो वह है ३४८ ईसवी का रुद्रसेन तृतीय। इस प्रकार १६ वर्ष का बीच में अंतर पड़ता है। इस बीच के अंतर को न सिक्के और न अभिलेख ही भर सके हैं।[३] संभवतः इसी काल में समुद्रगुप्त दिग्विजय को निकला।

रुद्रसेन तृतीय के काल से महाक्षत्रपों को हम पुनः पाते हैं। रुद्रसेन तृतीय अपने को 'महाक्षत्रप' नाम से अभिहित करता है। उसी के सिक्कों से उसके पिता महाक्षत्रप स्वामि रुद्रदामन द्वितीय का पता चलता है। रुद्रसेन तृतीय के पश्चात् महाक्षत्रप स्वामि सिंहसेन उसका उत्तराधिकारी हुआ। यह रुद्रसेन तृतीय की बहन का पुत्र था। इससे पता चलता है कि ( संभवतः ) रुद्रसेन तृतीय अपनी युवावस्था में ही मर गया बिना किसी उत्तराधिकारी को जन्म दिए। इसीलिए उसकी बहन का पुत्र महाक्षत्रप बनाया गया। उसके सिक्कों से उसकी तिथि

---

१. डा० चट्टोपाध्याय, दि शकास इन इंडिया, पृ० ७१।
२. सत्यश्रव, दि शकास इन इंडिया, पृ० ६०।
३. सत्यश्रव, दि शकास इन इंडिया, पृ० ६१।

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh


३८२-८४ निर्धारित होती है।

सिंहसेन के बाद उसका पुत्र रुद्रसेन चतुर्थ महाक्षत्रप हुआ। उसके सिक्कों पर निम्नलिखित लेख अंकित है—

राज्ञ महाक्षत्रपस स्वामी-सिंहसेनपुत्रस
राज्ञ महाक्षत्रपस स्वामी रुद्रसेनस ॥

इसके बाद सत्यसिंह हुआ। यह सिंहसेन का भाई हो भी सकता है।[१] महाक्षत्रप स्वामी रुद्रसिंह तृतीय के काल के बाद शक क्षत्रप अथवा महाक्षत्रपों का काल समाप्त हो जाता है। इसके सिक्कों पर ३१० = ३८८ ईसवी तिथि अंकित है। यह काल गुप्त राजाओं के दिग्विजय की थी। संभव है चंद्रगुप्त विक्रमादित्य के साथ युद्ध में वह मारा गया हो। इसके सिक्कों पर निम्नलिखित लेख मिलता है—

राज्ञ महाक्षत्रपस स्वामी-सत्यसिंह पुत्रस
राज्ञ महाक्षत्रपस स्वामी-रुद्रसेनस ॥

## शक महाक्षत्रपों का पतन :

किसी राजकुल के पतन में मुख्य कारण अयोग्य और निर्बल शासक होते हैं। विदेशी आक्रमण भी उसमें सहायक होते हैं। इसके अतिरिक्त महत्त्वाकांक्षी नृपतियों के भी राजकुल शिकार होते हैं।

शक जिस रास्ते से आए थे, तक्षशिला के प्रदेश में, वह विदेशियों के आक्रमण के मार्ग में पड़ता था। शकों के बाद पहलव आये। गोंडोफर्नीज उनका शक्तिशाली नेता था। सिंध और तक्षशिला के शक-कुल का उसने ध्वंस किया। इसका पता गुदुफर के एक प्रकार के सिक्के से चलता है जिसमें एक ओर गुदुफर का नाम और दूसरी ओर इंद्रवर्मा का नाम है।[२] अस्पवर्मा पहले अय द्वितीय का करदायी सांमत था। इस प्रकार गुदुफर के आक्रमण से सिंध और तक्षशिला का शक राजकुल ध्वस्त हुआ।

---

१. रैप्सन, कैटलाग, पृ० १४६।
२. पं० म्यू० कै० १।१५०।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh


मथुरा के शक भी अधिक दिनों तक अपनी स्वतंत्रता कायम न रख सके। उनको कनिष्क महान की अधीनता स्वीकार करनी पड़ी।[१] महाराष्ट्र के क्षहरात भी अपनी स्वतंत्रता कायम न रख सके। यद्यपि नहपान ने सातवाहनों को पराजित किया और उनके भूभाग पर शासन किया तथापि वह अधिक दिनों तक ऐसा न कर सका। गौतमीपुत्र श्रीशातकर्णि ने अपने वंश के लुप्त गौरव को पुनर्स्थापित किया और विदेशी आक्रमणकारी शकों को अपनी भूमि से निर्वासित कर दिया। शक-यवन-पहलव-क्षहरातों का नाश करके गौतमीपुत्र से अपने वंश की मान मर्यादा को बढ़ाया, इसका विवरण नासिक के गुहाभिलेख में मिलता है।[२] इस प्रकार सातवाहन शक्ति के कारण क्षहरातों का अंत हुआ।

इसी प्रकार उज्जयिनी और काठियावाड़ के महाक्षत्रपों का अत हुआ। महाक्षत्रप रुद्रदामन प्रथम के पश्चात महाक्षत्रप कुल में फिर ऐसा कोई शासक पनप न सका जो अपनी सार्वभौम सत्ता को स्थापित रख सकता। निर्बल हाथों ने शक्ति को खो दिया। परिणामस्वरूप गणराज्य एवं छोटे-छोटे राज्य जो अपनी स्वतंत्रता को पाना चाहते थे विद्रोह कर उठे और कालान्तर में शक्तिशाली भी हो गए। मालव-गण शायद यवनों के दबाव के कारण पंजाब से राजस्थान चला गया था और वहाँ एकबार शकों से हार कर फिर उन्हें उखाड़ने में उसने सातवाहनों से सहयोग किया।[३] वृष्णि, शिवि, औदुम्बर आदि गणों के सिक्के इसी युग के पाये जाते हैं। सबसे उज्वल इतिहास यौधेयों का है। उनके पुराने सिक्के एक किस्म के हैं। बाद के सिक्कों पर 'द्वि' और 'त्रि' के चिन्ह हैं जिनसे जान पड़ता है कि दो बार

---

१. एपि० इं० ८।१७३।

२. खतियदपमानमदनस सकयवनपहलवनिसूदनस....खखरातवस निखसेसकरस सातवाहन कुलभसपति थापन करस....।

३. भा० इ० म० पृ० ५८।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh


उखड़कर दोबार वह गण फिर स्थापित हुआ।[१] दूसरी शताब्दी ईसवी के मध्य में सुराष्ट्र का शक महाक्षत्रप रुद्रदामन अभिमान से लिखता है कि किसी के आगे न झुकने वाले यौधेयों को उसने उखाड़ डाला परन्तु रुद्रदामन के बाद यौधेयों को हम फिर स्थापित हुआ पाते है। कहने का तात्पर्य यह है कि इस काल में गण शक्तिशाली हो गए थे और उनको जब भी अवसर मिलता लड़ाई छेड़ देते थे।

संघदामन जो कि रुद्रसेन प्रथम (ईसवी २००-२२) का भाई था डा० अल्तेकर के अनुसार इसी तरह की एक लड़ाई में मालवों द्वारा मारा गया होगा[२] इस काल तक देश में बहुत सी शक्तियाँ उठ खड़ी हुई थीं—त्रैकूटक, वाकाटक, भारशिव-नाग आदि। इन सबके सामूहिक आक्रमणों-प्रत्याक्रमणों से विदेशी शकों की शक्ति में ह्रास होता गया। उनको मध्यदेश, महाराष्ट्र छोड़ना पड़ा। डा० अल्तेकर के शब्दों में वाकाटकों ने जो कि २५५ ईसवी के लगभग हुए शक-क्षत्रपों से मालवा को छीन लिया होगा। अपने समर्थन में वे पश्चिमी क्षत्रपों के तांबे के सिक्कों का सहारा लेते हैं, जो कि मालवा में २४० ईसवी तक चलता रहा, और कहते हैं कि वाकाटकों के शक्ति में आते ही मालवा से उनके सिक्कों का प्रचलन खतम हो गया[३] किन्तु डा० चट्टोपाध्याय ने उस काल में भी शकों का अधिपत्य मालवा पर माना है।[४] ऐसी परिस्थिति में यह कहना कि वाकाटकों के कारण शकों को मालवा से हटना पड़ा होगा समीचीन नहीं जान पड़ता।

जिस समय भारत में ये शक्तियाँ शकों की शक्ति को नष्ट करने में लगी हुई थीं ईरान में उसी समय (२२६ ई०) पार्थव के स्थान

१. ज० बि० उ० रि० सो० १५।६१-६२।
२. न्यू हि० इं० पी० ६।५२।
३. न्यू हि० इं० पी० ६।५४।
४. दि शकास इन इंडिया, पृ० ६६।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh


पर 'सासानी' राज्य की स्थापना हुई। इस राज्य का संस्थापक अर्दशीर था। इसने विद्रोह करके ईरानी साम्राज्य के कई प्रान्त ले लिए। सम्राट आर्तबान पंचम ने उसे दबाना चाहा किन्तु सफलता न मिली। वह युद्ध में मारा गया। अर्दशीर ने सारे ईरान को जीतकर शाहन-शाहे-ईरान उपाधि को धारण किया। तबारी ने लिखा भी है कि अरसकी साम्राज्य के दक्खिनी और पश्चिमी प्रान्तों को जीतने के बाद अर्दशीर ने पूरब को ओर बढ़कर सिजिस्तान को जीता, फिर गुरगान, अपरशह, मर्व और बलख जीतते हुए ख्वारिज्य पर चढ़ाई की और खुरासन की अंतिम सीमा तक को अधीन' किया। उसने यह भी लिखा है कि उसके इन प्रदेशों को जीत लेने पर कुशानशाह तथा और तूरान मकरान के राजाओं ने दूत भेजकर उसका अधिपत्य स्वीकार किया।

अर्दशीर समूचे सिजिस्तान को जीत न सका था। उसके अधूरे कार्य को बरहान द्वितीय ने पूरा किया और सारा सकस्तान जीतकर अपने बेटे को सकानशाह नियत किया।[१] यही भारत की वह अनुल्लिखित सासानी चढ़ाई है जिसकी विंसेंट स्मिथ ने अपने ग्रन्थ में कल्पना की थी।[२] इस आधार पर हर्जफील्ड यह परिणाम निकालते हैं कि "२८४ ईसवी में वरहान द्वितीय के विजयों के बाद सासानी साम्राज्य में पूरब के ये देश थे—सारा खोरासन—जिसमें शायद ख्वारिज्म और सुग्द भी थे, सकस्तान विस्तृततम अर्थ में, मकरान और तूरान सहित सिंधु नद का मध्य कांठा और मुहाना, कच्छ, काठियावाड़, मालवा और इन देशों के पीछे का पहाड़ी प्रदेश (=राजस्थान)।[३]

२९३ ईसवी में वरहान द्वितीय की मृत्यु के बाद उसका बेटा

१. मे० आर्के० सर्वे इं० नं० ३८।
२. हर्जफील्ड, पाइकुली, १९२४, पृ० ४२।
३. वही पृ० ४३।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh



वरहान तृतीय जिसे ६ वर्ष पूर्व 'सकानशाह' नियत किया गया था, 'शाहनशाह' बना। वह कुछ माह ही राज्य कर पाया था कि उसके दादा का छोटा भाई नरसेः उसके मुकाबले को खड़ा हुआ। इस गृहयुद्ध में वरहान तृतीय मारा गया। इसी नरसेः ने पाइकुली का मंदिर बनवाया और उसमें अपनी प्रशस्ति चट्टान पर खुदवायी जिसमें इस युद्ध का वृत्तांत है।

विद्वानों में सासानियों द्वारा पश्चिमी भारत की विजय विवाद का विषय बना हुआ है। डा० रमेशचन्द मजूमदार ने पाइकुली अभिलेख में अवंति के राजा की चर्चा का उल्लेख करते हुए कहा है—"पश्चिमी भारत पर सासानी आधियत्य विवादास्पद है।"[१] डा० अल्तेकर भी प्रो० हर्जफील्ड की इस स्थापना का खण्डन करते हैं, इस आधार पर कि उन प्रान्तों में सासानी सिक्के नहीं मिलते।[२]

किसी राज्य के पतन के कारण में बाहरी आक्रमण भी एक कारण होता है। शकों के पतन के संबंध में बाहरी आक्रमण की संभावना सर्वप्रथम प्रो० रैप्सन ने व्यक्त की थी। १६०८ ईसवी में ब्रिटिश म्यूजियम के आंध्र और क्षत्रप सिक्कों की सूची प्रकाशित करते हुए रैप्सन ने लिखा था—पहले महाक्षत्रप का और फिर महाक्षत्रप और क्षत्रप दोनों का न रहना विपत्ति-काल को सूचित करता है। संभावना यह है कि पश्चिमी क्षत्रपों के इलाकों पर कोई बाहरी आक्रमण हुआ था, किन्तु इस बाहरी चढ़ाई का ठीक स्वरूप फिलहाल बिलकुल संदिग्ध है, और जब तक हम इस युग के पड़ोसी राष्ट्रों का इतिहास न जान जाँय तब तक वह संदिग्ध होगा।[३] संभवतः इसीलिए डा०

---

१. दि हिस्ट्री एंड कल्चर आफ दि इंडियन पीपुल, दि क्लासिकल एज, पृ० ५२।

२. वाकाटक-गुप्त-एज, पृ० ५८-५६।

३. रैप्सन, कैटलाग, भूमिका, पृ० १४२।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh


डा० रायचौधरी ने महाक्षत्रपी और क्षत्रपी का अंत सासानी हस्तक्षेप के कारण हुआ होगा बतलाया था। सासानी को इसलिए क्योंकि वह एक शक्तिशाली राज्य था।

इस प्रकार आंतरिक एंव बाह्य शक्तियों के दबाव के कारण ३३२ ईसवी में पश्चिमी क्षत्रप राज्य का अंत हो गया था, पर लगभग ३४४ ईसवी में फिर एक महाक्षत्रप उठ खड़ा हुआ था, जिसके बेटे स्वामी रुद्रसेन तृतीय ने ३४८ ईसवी से सिक्के चलाने शुरू किये।

क्षत्रप सिक्कों की जो ढेरियाँ मिली हैं उनसे सिद्ध होता है कि रुद्रसेन के चार वर्ष शासन करने के बाद ३५१ ईसवी में इसके राज्य में एकाएक क्रांति हुई जिससे दस-बारह वर्ष तक इसका सिक्का चलना बन्द रहा, पर उसके बाद फिर चलने लगा।[१] जूनागढ़ के पास ऊपरकोट में क्षत्रप सिक्कों की एक ढेरी गत शताब्दी के अंत में मिली थी। उस ढेरी में रुद्रसेन तृतीय के ९० सिक्के थे पर वे सब २७० से २७३ शकाब्द ( ३४८—३५१ ) के ही थे। उसके बाद का कोई नहीं। उस ढेरी की पहले-पहल परीक्षा करने वाले पादरी स्कौट ने १८९९ ईसवी में इस बारे में लिखा था कि "इन सिक्कों में से बहुत से, विशेषकर पिछले वर्षों वाले, बिल्कुल ताजे टकसाल से निकले हुए और अनघिसे हैं। इन कारणों से यह परिणाम निकालना उचित होगा कि यह ढेरी रुद्रसेन के राज्य के पहले अंश के अंत में गाड़ी गयी थी और संभवतः इस धन को गाड़ने का कारण यह था कि उस समय राज्य क्रांति हुई थी जिससे जान-माल सुरक्षित न थे।"

स्कॉट के यह खिलने के १२ वर्ष बाद सन १९११ में बांसवाड़ा के सर्वाणिया गाँव से २३९३ क्षत्रप सिक्कों की ढेरी मिली। वह भी ठीक २७३ शकाब्द में गाड़ी गयी होगी क्योंकि उसके बाद का कोई सिक्का उसमें नहीं था। और उसमें भी रुद्रसेन के ४४ सिक्के वैसी ही हालत में पाये गये। इससे यह परिणाम निकला कि ३५१ ईसवी में

१. भा० इ० मी० पृ० ३३७।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh



रुद्रसेन के समूचे राज्य में एक साथ और एकाएक वज्रपात हुआ मानो कोई बाहरी आक्रांता बिजली की तरह गिरा हो जिससे सभी लोग अपना धन छिपाने का यत्न कर रहे थे ।[१]

इससे हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि प्रवरसेन द्वारा दबा दिया गया महाक्षत्रपवंश उसकी मृत्यु होते ही उठ खड़ा हुआ और सात वर्ष तक जारी रहा जब तक कि समुद्रगुप्त वाकाटक साम्राज्य से निपटने में लगा रहा। वाकाटकों से छुट्टी पाते ही, आर्यावर्त के राज्यों को समथर करने और आटविक राज्यों को सेवक बनाने के बाद समुद्रगुप्त ने एकाएक गुजरात-काठियावाड़ पर टूटकर इस नए राज्य को मिटा दिया होगा। उसके पूर्ववर्ती साम्राज्य द्वारा जो राज्य दबा दिये गये और उस साम्राज्य के शिथिल होते ही फिर उठ खड़ा हुआ था, वह एक प्रकार का विद्रोही था जिसे दबाना नए सम्राट का कर्तव्य था ।[२]

३८२ ईसवी के बाद फिर एक नया क्षत्रप वंश उठा। प्रकटतः समुद्रगुप्त की मृत्यु के बाद रामगुप्त के समय की हार और गड़बड़ में उसे उठने का अवसर मिला। रामगुप्त के काल में किसी शक नृपति ने उस पर आक्रमण किया और ध्रुवदेवी को उससे माँगा था—ऐसा वर्णन विशाखदत्त के देवी-चंद्रगुप्तम् नाटक में मिलता है ।[३] उसके बाद उस घटना का उल्लेख बाणभट्ट ने अपने हर्षचरित में महाराष्ट्र-कर्णाटक के राजा अमोघवर्ष ने अपने संजान अभिलेख में, कवि राजशेखर ने अपनी 'काव्यमीमांसा, में तथा राजा भोज ने 'देवीचंद्रगुप्तम' के आधार पर अपने ग्रन्थ 'शृंगारप्रकाश' में किया है। यों हमारे साहित्य में पाँचवीं से अठारहवीं शताब्दी तक बराबर इस घटना का उल्लेख पाया जाता है ।[४] तो भी विद्वानों में इसकी ऐतिहासिकता

---

१. भा० इ० मी० पृ० ३३८ ।
२. ज० ब० हि० यू० ५।२४९-२६१ ।
३. ज० बि० उ० रि० सो० १८।१७ ।
४. भा० इ० मी० पृ० ७६ ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh



पर संदेह किया जाता है क्योंकि समसामयिक अभिलेखों में इसका उल्लेख नहीं है।

आधुनिक विद्वानों में इस खोज का श्रीगणेश श्री चंद्रधर शर्मा गुलेरी ने किया[१] पर रामगुप्त और इस घटना की ऐतिहासिकता की पहले पहल घोषणा श्री राखालदास बनर्जी ने की।[२] राखालदास के बाद डा० अल्तेकर ने इसके कुल प्रमाणों को उपस्थित किया।[३]

अब प्रश्न उठता है देवीचंद्रगुप्तम के इस कथानक का प्रारंभ किस स्थान पर हुआ। अर्थात् चद्रगुप्त द्वितीय शक नृपति की छद्मवेश में किस जगह हत्या करता है। कवि राजशेखर उस घटना को तस्मिन्नेव हिमालये—उसी हिमालय में—हुई बतलाता है। उस पद्य की ओर पहले पहल गुलेरीजी ने ध्यान दिलाया था और फिर डा० अल्तेकर ने। अबुल हसन भी स्पष्ट कहता है कि यह घटना किसी पहाड़ी गढ़ में हुई।[४] श्री जयचंद्र विद्यालंकार ने इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए इस घटना के सूत्रधार की खोज की है। उन्होंने लिखा है— "राखालदास के सामने वह पद्य न था, तो भी उन्होंने अपनी सहज सूझ से यह पहचान लिया था कि समुद्रगुप्त के बेटे को इस प्रकार लांछित करने वाला राजा सुराष्ट्र का तुच्छ क्षत्रप नहीं हो सकता काबुल का कनिष्कवंशज शाहानुशाहि होना चाहिए। डा० अल्तेकर के सामने यह पद्य था, तो भी वे शकाधिपति की तलाश में मालवा के पठार और काठियावाड़ के जंगलों में भटकते रहे 'तस्मि- नेव हिमालये' की ओर....उनका ध्यान नहीं गया।[५]

गुप्तों के प्रयत्न से शकों को इस प्रकार देश छोड़ना पड़ा और

१. ना० प्र० प० १९७७, पृ० २३४-३५।
२. एज आफ इंपीरियल गुप्ताज।
३. ज० बि० उ० रि० सो० १४।२२३।
४. भा० इ० मी० पृ० ७६।
५. ना० प्र० प० १९९४, पृ० १९।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh



प्रयाग स्तंभ के समुद्रगुप्त के प्रशस्ति लेख ने उन्हें काबुली सीमा-प्रांत पर निर्दिष्ट किया। यह मालूम हो जाने पर कि रामगुप्त वाली घटना पश्चिमी हिमालय में हुई और चंद्रगुप्त ने वहाँ काबुल-बलख के शक राजा को हराया था, मेहरौली वाले राजा चंद्र की चंद्रगुप्त से अनन्यता प्रकट हो जाती है क्योंकि राजा चन्द्र के काबुल होते हुए बलख तक जीतने की बात पक्की है।[१] मेहरौली वाली लाट पहले पंजाब की एक पहाड़ी पर खड़ी थी, इससे उसे और पुष्टि मिलती है।[२] श्री जयचंद्र विद्यालंकार इसी आधार पर रामगुप्त को ऐतिहासिकता का अभिलेखीय प्रमाण भी दे देते हैं। उनके अनुसार चंद्र और चंद्रगुप्त की अनन्यता प्रकट हो जाने पर यह आक्षेप भी नहीं टिकता कि इस घटना का समसामयिक अभिलेखों में उल्लेख मिलता है।[३]

इस प्रकार शक नृपतियों की अयोग्यता, निर्बलता, अनेक छोटे-छोटे राज्यों की स्थापना, बाहरी आक्रमणों आदि के कारण तथा केन्द्रीयकरण की पुनः प्रवृत्ति के कारण शक अपनी सत्ता को कायम करने में असफल रहे तथा भारतीय समाज में घुल-मिलकर नष्ट हो गए।

१. एपि० इं० १४।३६७; ज० इं० हि० १६।१३।
२. भा० इ० मी० पृ० ७७।
३. वही।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

# राजनीतिक विचार और शासन-पद्धति

शक जहाँ गए वहाँ की संस्कृति से प्रभावित हुए। वे खानाबदोश थे। खानाबदोशों का न कोई धर्म होता है और न दर्शन। पूर्वी ईरान में रहे—ईरानी संस्कृति से प्रभावित हुए। उसी तरह, भारत में भारतीय संस्कृति की छाप स्पष्ट परिलक्षित होती है। भारतीय शकों पर भारतीय अर्थचिन्तकों (राजनीति विचारकों) का स्पष्ट प्रभाव दीखता है। उस काल का सबसे योग्य और प्रभावशाली शासक रुद्रदामन अर्थविद्या[१] में पारंगत था—मंत्री वही हो सकता था जिसमें मंत्रियोचित गुणों की प्रधानता होती थी, मंत्रियों और उच्चाधिकारियों में श्रेणी-विभाजन था, प्रजा की स्थिति को देखते हुए 'कर' का निर्धारण था, पौर और जानपद के निवासियों के कल्याण की भावना विद्यमान थी—तभी तो वह सत्यप्रतिज्ञेन, धर्मानुरागेन, यथावत्प्राप्तैर्बलिशुल्क-भागैः अपीडयित्वा प्रणयक्रियाभिः आदि शब्दावलियों का प्रयोग करता है।[२]

## (१) राज्य का स्वरूप :

राज्य का स्वरूप राजतंत्रात्मक था। राज्य का मुखिया राजा होता था। राज्य की दैवी-उत्पत्ति-सिद्धान्त न थी। वह इकरारनामे पर आधारित था। राजा का निर्वाचन होता था। ईसवी दूसरी शताब्दी में रुद्रदामन ने अपने शिलालेख में लिखवाया था—"मैं राजपद के लिए सब वर्णों द्वारा निर्वाचित हुआ हूँ।"[३] इस प्रकार प्रारंभिक

---

१. एपि० इं० ८।४२।

२. वही।

३. सर्व वर्णैरभिगम्य रक्षणार्थं पतित्वे वृतेन।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh


निर्वाचित राजसंस्था सिद्धान्ततः इस काल में भी मान्य थी, किन्तु यहाँ इसका उपयोग राजनय की दृष्टि से किया गया है। शासक विदेशी था, अतः इस प्रकार की घोषणा की राजनीतिक आवश्यकता थी। जनता को शान्त एवं संतुष्ट रखने के लिए इन हथकण्डों की अपेक्षा होती थी।

राजा के निर्वाचन का यह सिद्धान्त बहुत प्राचीन काल से चला आ रहा था। वैदिक काल[१] में भी इसका उल्लेख मिलता है। वैदिक काल के उपरान्त भी समय-समय पर राजाओं का निर्वाचन हुआ करता था। मेगास्थनीज[२] ने लिखा है कि "स्वयंभू बुद्ध और क्रतु के उपरान्त राज्यारोहण प्रायः वंशानुक्रमिक हो गया था, परन्तु "जब किसी राजवंश में कोई उत्तराधिकारी नहीं रह जाता था, तब भारत-वासी राजा का निर्वाचन व्यक्ति की योग्यता देख कर किया करते थे।" इससे विदित होता है कि राजा के निर्वाचन का सिद्धान्त एक राष्ट्रीय सिद्धान्त था, जो बहुत अधिक प्रचलित था।

## (२) प्रतिज्ञा का महत्त्व :

निर्वाचन-सिद्धान्त में निर्वाचित को निर्वाचकों के समक्ष प्रतिज्ञा करनी पड़ती थी। एकबार यह प्रतिज्ञा कर लेने पर फिर उसे विस्मृत करना, असंभव नहीं तो, कठिन होता था। यदि हिन्दू राजा अपनी राज्याभिषेक वाली प्रतिज्ञा पूरी नहीं कर सकता था, तो वह असत्य प्रतिज्ञ कहा जाता था वैसी दशा में उसे राजसिंहासन पर बने रहने का कोई नैतिक अधिकार नहीं रह जाता था। राज्याभिषेक के समय की प्रतिज्ञा कोरी रस्म अदायगी ही नहीं होती थी। इसका प्रमाण इसीसे मिल जाता है कि राजा लोग समय पड़ने पर बड़े गर्व से कहा करते थे कि वह अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहे और असत्य प्रतिज्ञ नहीं हुए। शक नृपति

---

१. अथर्ववेद ६।८७--८८ ऋग्वेद १०।१७३।

२. मैक्रिंडल, मेगास्थनीज एण्ड एरियन, पृ० २००।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh


महाक्षत्रप रुद्रदामन ने अपने शिलालेख में बड़े गर्व से लिखवाया था—मैं सदा सत्यप्रतिज्ञ रहा और मैंने कभी कोई ऐसा कर नहीं लगाया जो धर्म-विरुद्ध हो[१]। प्रतिज्ञा-दुर्बलों को राजपद पर अभिषिक्त करने वाले प्रजा के प्रतिनिधि राजच्युत भी कर सकते थे। महाभारत में अत्याचारी राजा वेण की राजच्युति और प्राणदण्ड का यही कारण बतलाया गया है कि वह विधर्मी हो गया था। मौर्य राजा बृहद्रथ सेनापति पुष्यमित्र शुंग द्वारा इसीलिए मार डाला गया था क्योंकि वह प्रतिज्ञा-दुर्बल हो गया था।

यद्यपि निर्वाचन-सिद्धान्त आगे चलकर वंशानुक्रमिक हो गया था, फिर भी यह मूलतत्त्व विस्मृत नहीं किया गया था कि हिन्दू नृपतंत्र निर्वाचनमूलक है। सिद्धान्ततः राजा सदा एक निर्वाचित अधिकारी हुआ करता था, और वह उन्हीं शर्तों के अनुसार अपने उस अधिकार का भोग करता था जिन्हें वह राज्याभिषेक के समय शपथ करते हुए स्वीकृत करता था। राजनीतिज्ञों का यह प्रण संबंधी सिद्धान्त सदा मान्य रहता था और राजा तथा प्रजा दोनों उसके अनुसार कार्य करते थे।

राजा के हाथ में राजपद दान जिस उद्देश्य से किया जाता था उसकी इस प्रकार व्याख्या की गयी है—तुझे यह राज्य कृषि के लिए, क्षेम के लिए, संपन्नता के लिए, पोषण या वर्धन के लिए दिया जाता है—राजा कहता है कि वह इसका पालन करेगा। इसका पालन राजा का सर्वप्रधान कर्तव्य होता था, जो राजा अपनी राज्याभिषेक वाली ऐसी प्रतिज्ञा को पूर्ण करने में दुर्बलता दिखाता था, उसकी क्या गत होती थी यह हम ऊपर देख ही चुके हैं। प्रतिज्ञा का ही इतना महत्त्व था कि रुद्रदामन ने अपने जूनागढ़ शिलालेख में लिखवाया था—सत्यप्रतिज्ञेन अन्यत्र....अपडयित्वा कर-विष्टि-प्रणय-

---

१. सत्यप्रतिज्ञेन अन्यत्र, अपीडयित्वा कर-विष्टि-प्रणय-क्रियाभिः

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh


क्रियाभिः पौरजानपदंजनं....।

इस प्रतिज्ञा की मीमांसा एवं विवेचना करने पर हम निम्नलिखित निष्कर्ष पर पहुँचते हैं[१]—

( १ ) राजा के हाथ में राज्य सौंपा जाता है और वह कहता है कि वह इसका पालन या उन्नति करेगा और इसका पालन राजा का सर्वप्रधान कर्तव्य होता था।

( २ ) जो देश उसे पालन करने के लिए दिया जाता है उसे वह स्वयं परमेश्वर से कुछ भी कम नहीं समझता जिसका अभिप्राय यह है कि वह बहुत ही शुद्ध हृदय से, आदरपूर्वक और डरता-डरता शासन करेगा। यह संबंध उन संबंधों से बहुत भिन्न है जिनमें राजा लोग प्रजा का पालन उन्हें अपना पुत्र समझकर, प्रजापति के रूप में करते हैं; अथवा यह समझकर करते हैं कि इस बात का उन्हें ईश्वर-प्रदत्त अधिकार है; अथवा केवल अपनी शक्ति और वैभव के बल पर करते हैं।

( ३ ) यह एक निश्चित सिद्धान्त है कि राजा स्वेच्छाचारी नहीं हो सकता। वह धर्म से बद्ध होता है और धर्म के शासन के अधीन लाया जाता है। आगे चलकर राजनीति या दण्डनीति के बन्धनों से भी वह बद्ध किया जाता है। राज्य के आंतरिक शासन तथा परराष्ट्रों से संबंध रखने में उसे धर्म और दण्डनीति के अनुसार ही चलना पड़ता था; और उसे इस बात की प्रतिज्ञा करनी पड़ती थी कि वह कभी इनकी उपेक्षा नहीं करेगा।

## (३) मंत्रिमण्डल :

हिन्दू राजा अपनी ही इच्छा से शासन नहीं करता था। उसके शासन पर मंत्रिपरिषद का अंकुश रहता था। हिन्दू मंत्रिपरिषद् प्राचीन वैदिक काल की 'सभा' का ही विकसित रूप थी।

---

१. हिन्दू राजतंत्र §२३६।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh


हिन्दू राष्ट्र-संगठन की यह एक परंपरा सी हो गयी थी कि बिना मंत्रियों की परिषद की स्वीकृति और सहयोग के राजा कोई काम नहीं कर सकता था। परिषद के मंत्रियों की संख्या ८ से ३२ तक के बीच आंकी गयी थी। इस संबंध में धर्मसूत्र, धर्मशास्त्र तथा राजनीति संबंधी सभी ग्रन्थ एक मत हैं। कौटिल्य भी, जो एकराज शासन-प्रणाली का सबसे बड़ा समर्थक है, कहता है कि राजा को मंत्रिपरिषद् में बैठकर ही राज्य-संबंधी समस्त विषयों का सम्पादन करना चाहिए और बहुमत से जो कुछ निश्चित हो, उसी के अनुसार कार्य करना चाहिए[१]।

मनु और याज्ञवल्क्य[२] इस विषय पर प्रायः एक मत हैं। मनु के अनुसार[३] राजा को अपने साथी या मंत्री अवश्य रखने चाहिए, और राज्य के साधारण तथा असाधारण कार्यों पर उन्हीं के बीच बैठकर और उन्हीं के साथ मिलकर विचार करना चाहिए। कात्यायन तो यहाँ तक निर्देश करते हैं कि राजा को अकेले बैठकर किसी मुकदमे या अभियोग आदि का भी निर्णय नहीं करना चाहिए, आमात्यों तथा सभ्यों आदि के साथ बैठकर निर्णय करना चाहिए[४]। इसका अभिप्राय यह है कि शासन-संबंधी जो कार्य बिलकुल नियमानुमोदित और धर्मसंगत हो वह भी अनुभवी मंत्रियों की सम्मति और स्वीकृति से होनी चाहिए, जिससे उसमें किसी प्रकार की त्रुटि न रह जाय।

इस अवसर पर हमें विधान-संबंधी एक और महत्त्वपूर्ण धर्म को भी ध्यान में रखना चाहिए। धर्मशास्त्रकारों[५] ने यह निर्देश कर रखा था कि यदि मंत्री लोग विरोध करें, तो राजा को यह अधिकार नहीं

---

१. अर्थशास्त्र. १। १५। ११।
२. याज्ञवल्क्य. १। ३११।
३. मनु. ७। ५४-५७।
४. वीरमित्रोदय पृ० १४।
५. आपस्तम्ब २।१०।२६।१।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh


है कि वह किसी को वित्तदान भी कर सके। यहाँ तक कि वह ब्राह्मणों को भी दान नहीं दे सकता था। मंत्रिपरिषद के विधान-संबंधी इन नियमों को देखते हुए हम समझ सकते हैं कि सम्राट-अशोक के आज्ञा देने पर भी मंत्रिपरिषद और प्रधानमंत्री राधागुप्त ने बौद्ध भिक्षुओं को और अधिक वित्तदान देना क्यों और किस प्रकार अस्वीकृत कर दिया था।[१] इससे सूचित होता है कि मंत्री लोग समय-समय पर सम्राट की आज्ञा का भी उल्लंघन करते थे। इस प्रकार जब रुद्रदामन ने सुदर्शन ताल की मरम्मत की आज्ञा दी थी, तब उसके मंत्रियों ने भी उसका विरोध किया था। सुदर्शन ताल की मरम्मत के संबंध में

१. दिव्यावदान, पृ० ४३० से आगे।

कुक्कुटाराम को अशोक जो दान देना चाहता था, उसे पूरा करने के लिए उत्सुक होकर उसने कहा था—"राधागुप्त, नाहंद्रव्य विनाशं न राज्य विनाशं न चाश्रयवियोगं शोचामि।" उस समय कुणाल का पुत्र सम्पदि युवराज के पद पर अवस्थित था। आमात्यों ने उससे कहा था—'कुमार राजा अशोक का अवस्थान तो थोड़े ही समय तक रहेगा, पर वे अपना धन कुक्कुटाराम में भेज रहे हैं। राजा का बल कोष ही है। उन्हें इससे निवारण करना चाहिए।' इस पर कुमार ने भाण्डागरिक को प्रतिषेध कर दिया। तब उद्विग्न राजा ने आमात्यों और पौरों को बुलाया और उनसे पूछा—"इस समय देश का स्वामी कौन है?" प्रधान आमात्य ने उठकर और अशोक के पास पहुँचकर हाथ जोड़कर प्रणाम करते हुए कहा—"देव ही इस समय पृथ्वी के स्वामी हैं।" इस पर राजा ने अश्रुपूर्ण नेत्रों से मंत्रियों से कहा—'केवल शिष्टाचार के विचार से मिथ्या बात क्यों कह रहे हो? हम तो राज्य-धिकार से भ्रष्ट हो चुके हैं।"

त्यागशूर और मौर्यकुंजर अशोक, जो जम्बूद्वीप का अधीश्वर था, अब आधे आमलक का अधीश्वर रह गया। मंत्रियों के द्वारा अधिकार अपहृत हो जाने हर अब वह राजा आधा आमलक ही दान देता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh


मंत्री लोग राजा के प्रस्ताव के विरोधी थे। उन लोगों ने उसके लिए धन देना अस्वीकृत कर दिया था, जिससे राजा को सारा व्यय अपने कोष से देना पड़ा था।[१]

## ( ४ ) पौर-जानपद :

तत्कालीन राजनीति में पौर-जानपदों का स्पष्ट महत्त्व दृष्टिगोचर होता है। रुद्रदामन ने सुदर्शन नामक जिस ताल का जीर्णोद्धार किया था, उसे वह पौर जानपद के प्रति अपना अनुग्रह प्रदान बतलाता है।[२]

पौर-जानपद का अर्थ हम 'शक-शासन-पद्धति' में बतायेंगे। पौर-जानपद का राष्ट्र-संगठन संबंधी सभी बातों में उल्लेख मिलता है। अधिक महत्त्व के विषयों का विचार और निर्णय जानपद और पौर दोनों संस्थाओं के सम्मिलित अधिवेशन में हुआ करता था। उस समय ये दोनों संस्थाएँ मिलजुल कर इस प्रकार बिलकुल एक हो जाती थीं कि दोनों एक ही समझी जाती थीं।[३]

अभिषेकों के समय इनकी उपस्थिति अपेक्षित थी। पौर जानपद के वृद्ध लोग जनता के प्रतिनिधिस्वरूप अभिषेक के समय उपस्थित होते थे। यदि आवश्यक हुआ तो पौर-जानपद उत्तराधिकार में बाधक भी हो सकते थे। सिंहल के महावंश के अनुसार भारत में पौर को इस बात का अधिकार प्राप्त था कि यदि राजा कोई धर्मविरुद्ध कार्य करे, तो वह उसे राजच्युत करके निर्वासित कर दे, और सब लोगों का ध्यान रखने वाले पौर अपनी सभा में निश्चय करके राज-वंश से भिन्न किसी वंश के व्यक्ति को चुन कर राजा बनावें।[४]

---

१. रुद्रदामन प्रथम का जूनागढ़ लेख, नं० १६—१७।
२. एपि० इं० ८।४२ शिलालेख पंक्ति नं० १६।
३. हिन्दू राजतंत्र § २६३।
४. महावंश ४।५-६।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh


अभिषेक के अतिरिक्त पौर-जानपद मंत्रिवों की नियुक्त में भी सहायक होते थे। महाभारत के अनुसार राजा उसी मंत्री को मंत्र या राज्य की नीति और शासन या दण्ड का अधिकार प्रदान करे, अर्थात् उसी व्यक्ति को प्रधानमंत्री बनावे, जिसने धर्म के अनुसार पौर-जानपद का विश्वास संपादित किया हो।[१] इस प्रकार मंत्रियों की स्थिति एक बहुत बड़ी सीमा तक पौर-जानपद की प्रसन्नता और विश्वास पर ही निर्भर करती थी। संभवतः इसीलिए रुद्रदामन के कर्मसचिव और मतिसचिव उसके विरुद्ध हो गए थे, इसीलिए राजा को पौर जानपद के प्रति अनुग्रह करना पड़ा था।[२]

'कर' या राजस्व के संबंध में पौर-जानपद का प्रायः उल्लेख मिलता है। 'कर' साधारण नियम या कानून के अनुसार निश्चित होते थे, परन्तु प्रायः ऐसी आवश्यकताएँ पड़ती थीं और अवसर आते थे, जिनमें राजा को प्रजा से विशिष्ट 'कर' देने के लिए कहना पड़ता था। ये 'कर' या तो प्रणय और प्रेमोपहार के रूप में होते थे या जबरदस्ती वसूल किये जाते थे अथवा इसी प्रकार के अन्य रूपों में हुआ करते थे।[३] इससे यह प्रकट होता है कि इस प्रकार के 'करों' का प्रस्ताव सर्वप्रथम पौर-जानपदों के समक्ष उपस्थित किया जाता था। अर्थशास्त्र के अनुसार[४] राजा को पौर-जानपद से ऐसे करों की भिक्षा माँगनी पड़ती थी, जो राजा ऐसा न कर सीधे जनता पर 'कर' लगा देता था, उसका सत्यानाश ही हुआ करता था। पौर और जानपद धन और सेना एकत्र कर उस राजा के प्रति विद्रोह कर सकते थे।

---

१. महाभारत ८३।४५-४६।

२. महाक्षत्रप रुद्रदामन प्रथम का जूनागढ़ लेख, पंक्ति १७-१८।

३. इं० ऐ० १९१८ पृ० ६८।

४. अर्थशास्त्र ५।२।९०।
एतेन प्रदेशेन राजा पौर-जानपदान् भिक्षेत्।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh


पौर-जानपद प्रायः अनुग्रह की याचना करते थे और अनुग्रह प्राप्त करते थे। कौटिल्य के अनुसार शत्रु के देश के पौर जानपदों (नेताओं) को अपने गुप्त दूतों के द्वारा यह परामर्श दिलाना चाहिए कि आप लोग अपने राजा राजा से 'अनुग्रह' (रिआयत) की याचना करें, परन्तु ऐसा प्रायः उन्हीं देशों में होता था, जिनमें अकाल, चोरियाँ और अटवियों के आक्रमण हुआ करते थे। कौटिल्य के आदेश से यह भी सूचित होता है कि जिन अनुग्रहों की याचना की जाती थी थी, वे आर्थिक हुआ करते थे; क्योंकि कौटिल्य ने कहा है कि केवल वह अनुग्रह और परिहार प्रदान किये जाने चाहिए जिनसे राजकीय कोष की वृद्धि हो और जिनसे कोष क्षीण होता हो, उनके प्रदान से बचना चाहिए, क्योंकि पौर-जानपद को वही राजा ग्रसता है जिसके पास धन कम होता है। अर्थशास्त्र के अनुसार अकाल के समय परिहार प्रदान करना चाहिए और जब सिंचाई के लिए ताल आदि बनवाने की आवश्यकता हो, तब अनुग्रह प्रदान करना चाहिए। रुद्रदामन ने सुदर्शन ताल का जो जीर्णोद्धार कराया था, उसको वह पौर जानपद के प्रति अपना अनुग्रह प्रदान बतलाता है।[१]

## (५) पौर जानपद का महत्त्व :

पौर-जानपद के महत्त्व को इतने ही से समझा जा सकता है कि यदि वे चाहें तो राज्य को बना सकते हैं और चाहें तो नष्ट भी कर सकते हैं इसलिए राजा को अपने आचरण से उन्हें प्रसन्न या अनुरूप रखना चाहिए और उन्हें किसी प्रकार पीड़ित नहीं करना चाहिए। संभवतः इसीलिए रुद्रदामन कहता है कि उसने सुदर्शन ताल के निर्माण में आर्थिक सहायता प्राप्त करने के लिए पौर-जानपद जन या संस्था को कष्ट नहीं दिया।[२]

---

१. पौरजानपदजनानुग्रहार्थं....

२. अपीडयित्वा-कर-विष्टि-प्रणयक्रियाभि....

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh


## (६) सैन्य-विभाग :

सैन्य विभाग का सबसे महत्त्व का अंग सैन्य संगठन तथा युद्ध-संचालन था। सेना की कल्पना अब भी चतुरंगिणी थी, अर्थात् इसमें (१) पदाति, (२) अश्व, (३) गज और (४) रथ होने चाहिए। रुद्रदामन के जूनागढ़ लेख में कुछ ऐसा ही वर्णन मिलता है।[१] सेना के अंगों में 'गज' का बहुत महत्त्व था। तत्कालिक सैन्य संगठन में उसका यही स्थान था, जो आधुनिक काल की सेना में 'टैंकों' को प्राप्त है। हाथियों के महत्त्व को हम इतने ही से समझ सकते हैं कि विदेशी आक्रमणकारी सेल्यूकस और चंद्रगुप्त मौर्य की संधि में चंद्रगुप्त ने ५०० हाथियों की सेना भेंट की थी।

सैन्य संचालन के लिए अलग-अलग अधिकारी होते थे। सबसे प्रधान अधिकारी को 'महासेनापति' और अंग विशेष के अधिकारी को 'सेनापति' कहते थे। महासेनापति का तो नहीं सेनापति का उल्लेख शक अभिलेखों में हुआ है।[२] श्रीधरवर्मन के कानखेरा प्रस्तर लेख में भी सेनापति का उल्लेख मिलता है।[३]

सेना के पदाधिकारियों की नियुक्ति उनकी योग्यतानुसार होती थी। यहाँ सेना की भरती में वंशानुगत क्षत्रिय आदि जातियों को प्रमुखता तो दी जाती थी, किन्तु उनमें भी योग्य व्यक्तियों का चुनाव होता था। इस प्रकार का उदाहरण रुद्रसिंह प्रथम के काल के 'गुण्डा प्रस्तर लेख' में मिलता है जहाँ सेनापति एक आभीर बतलाया गया है। इस प्रकार सेना में भरती होने की 'मौल' व्यवस्था प्रचलित थी। इसको 'मौल' हम इसलिए कहेंगे क्योंकि सेनापति बापकस्य के बाद उसका पुत्र रुद्रभूतिन सेनापति नियुक्त हुआ—पिता के बाद पुत्र।

---

१. विपुल कीर्त्तिना तुरग-गज-रथचर्यासि-चर्म-नियुद्धाद्या....

२. एपि० इं० १६।२३५।
आभीरेण सेनापति बापकस्य पुत्रेण सेनापति रुद्रभूतिन...

३. वही पृ० २३२।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh


## ( ७ ) युद्ध में नैतिक परंपराओं का पालन :

यद्यपि इस युग में राजा प्रायः युद्धरत रहते थे, तथापि सिद्धान्ततः यह माना जाता था कि जब राजनीतिक प्रश्नों के सुलझाने का अन्य कोई उपाय सुलभ न हो तभी युद्ध करना चाहिए। शरद, हेमंत और शिशिर युद्ध के लिए उपयुक्त ऋतुएं समझी जाती थी; वसन्त मध्यम और ग्रीष्म अधम। वर्षा ऋतु, युद्ध के लिए गर्हित समझी जाती थी. क्योंकि उस समय साम (शान्ति) ही उपयुक्त था। किन्तु गो, ब्राह्मण, स्त्री का विनाश उपस्थित होने तथा अन्य अनिवार्य परिस्थितियों में कभी भी युद्ध हो सकता था।

वास्तविक युद्ध में नैतिक परंपराओं के पालन का विधान था, यद्यपि यह कहना कि कहाँ तक उनका निर्वाह होता था, कठिन है। धर्म से मृत्यु श्रेय है, पाप-कर्म से जय नहीं।[१] शरणागत को किसी अवस्था में भी नहीं मारा जाता था, यद्यपि शत्रुओं की ओर से इस नैतिक नियम का दुरुपयोग होता था। वृद्ध, बाल और स्त्री अवध्य माने जाते थे। भग्नशास्त्र विपन्न, कृत्तज्य हतवाहन पर कभी आक्रमण नहीं किया जाता था। शक काल में ये नैतिक नियम भुलाये नहीं गए थे।[२]

---

१. महाभारत ६५।१७।

धर्मेण निधनं श्रेयो न जयः पापकर्मणा।

२. महाक्षत्रप रुद्रदामन प्रथम का जूनागढ़ शिलालेख :

सत्य प्रतिज्ञेन अन्यत्र संग्रामेष्वभिमुखागत-सदृश-शत्रु-प्रहरण-वितरत्वा-विगुणरिपु....त-कारुण्येन स्वयमभिगतजन-पदप्रणियति।

३. अर्थशास्त्र १।१३।६।

गूढ़ पुरुष राजा और प्रजा के मध्य के पुराने इकरार और उसके संबंध के हिन्दू सिद्धान्त का स्मरण दिलाते थे जिससे राजस्व प्रथा का आरंभ हुआ था और जो राजस्व का मूल आधार था। वे कहते

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh


## ( ८ ) राजस्व व्यवस्था :

राष्ट्र संगठन की दृष्टि से राजकर के संबंध में हिन्दू सिद्धान्त बहुत अधिक महत्त्व का है। राजकर धर्मशास्त्रों के अनुसार निश्चित था और पवित्र सार्वजनिक धर्म के अनुसार यह भी निश्चत था कि कौन-कौन सा 'कर' किस हिसाब से लिया जाना चाहिए। इसका परिणाम यह होता था कि शासन-व्यवस्था चाहे जिस प्रकार की होती थी, परन्तु राजकर के संबंध में राजा और प्रजा में कोई झगड़ा ही खड़ा नहीं हो सकता था। झगड़े और अत्याचार की जो खास जड़ थी उसका बचाव इस प्रकार कर दिया गया था।[३]( पृष्ठ ७७ देखें)

ऐतिहासिक प्रमाणों से यह सिद्ध हो जाता है कि राजकर संबंधी जो नियम थे, उनका सब अवस्थाओं में पूर्णरूप से पालन होता था। उदाहरण के लिए सातवाहन राजवंश की महारानी बलश्री का शिलालेख द्रष्टव्य है जिसमें घोषित किया गया है कि उसका पुत्र पवित्र धर्म-व्यवस्था के अनुसार 'राजकर' लिया करता था।[१] महाभारत का यह कथन ध्यान देने योग्य है 'जो लोभी राजा ऐसे 'कर' एकत्र करने के लिए, जो शास्त्रों से अनुमोदित नहीं है, मूर्खतापूर्वक अपनी प्रजा पर अत्याचार करता है 'वह स्वयं अपने ही साथ अन्याय करता हैं।[२] संभवतः इसीलिए महाक्षत्रप रुद्रदामन प्रथम अपने शिला-

---

थे—'जिस समय अराजकता फैली और उससे प्रजा पीड़ित हुई, उस समय प्रजा विवस्वत के पुत्र मनु के पास गयी थी। वहाँ उन लोगों ने करके रूप में राज का अंश निश्चित कर दिया था कि फसल का छठा अंश ले और व्यापार व्यवसाय की चीजों के मूल्य का नगद दसवाँ हिस्सा ले। प्रजा के योगक्षेम के लिए राजाओं का इतना ही अंश निश्चित है।'

१. आर्के० सर्वे० रि० वे० इं० ४।१०८।

२. शांतिपर्व ७१।१५।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh


लेख में 'सत्यप्रतिज्ञेन' एवं 'यथावत्प्राप्तैर्बलिशुल्कभागैः आदि शब्दावलियों का प्रयोग करता है।"

साहित्य में ऐसे कई विलक्षण उदाहरण मिलते हैं जिनसे सिद्ध होता है कि 'राजकर' के संबंध में धर्म द्वारा निश्चित जो सिद्धान्त थे, उनका उल्लंघन नहीं होता था। सम्राट चन्द्रगुप्त को सेल्यूकस के साथ युद्ध करने के लिए धन की आवश्यकता थी। उसने और उसके महामात्य ने धन-संग्रह करने के लिए अपना सारा बुद्धि-बल लगा दिया। धर्म के अनुसार जो राजकर प्राप्त होता था, वह इस कार्य के लिए पर्याप्त नहीं था। जैसा कि अर्थशास्त्र से विदित होता है, उन लोगों को कुछ और विलक्षण उपायों का आश्रय लेना पड़ा था। इससे एक ओर तो धर्म का महत्त्व सूचित होता है और दूसरी ओर यह सिद्ध होता है कि धर्म द्वारा निश्चित राजकर के संबंध में कितनी कठिनाइयां थी। चंद्रगुप्त ने अपनी प्रजा से प्रणय की भिक्षा की थी, अर्थात कहा था कि आप लोग मुझे अपना प्रेम सूचित करने के लिए धन दें। महाक्षत्रप रुद्रदामन प्रथम ने भी इसी प्रकार के प्रणय की याचना की थी—'अपीडयित्वा कर-विष्टि-प्राणयक्रियाभिः पौरजानपदंजनं।'

## (६) करों पर मंत्रि परिषद का अधिकार :

राजकर से जो आय होती थी, उस पर मंत्रिपरिषद् का पूरा-पूरा अधिकार होता था, और उसी को राजकर एकत्र करने का भी अधिकार प्राप्त था। समस्त व्यय भी उसी के हाथ में था।[1] ईसवी द्वितीय शताब्दी (१५०) में रुद्रदामन को सुदर्शन नामक झील की मरम्मत कराने में अपने कोष से धन देना पड़ा था। उसके मंत्रियों में इस विषय पर मतभेद हो गया था।[2]

---

१. अर्थशास्त्र ८।१।१२७।

२. स्वस्मातकोशा महता धनौघेन....। आस्मिन्नर्थे महाक्षत्रपस्य मति-सचिव-कर्मसचिवैरमात्य-गुण-समुधुक्तैरप्याति महत्वाद्भेदस्यानुत्साह-विमुख-मतिभिः....

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh


## (१०) 'कर' राजा का वेतन होता था :

राजा को जो 'कर' दिया जाता था वह उसकी शासन-संबंधी सेवाओं का वेतन माना जाता था। महाभारत, शांतिपर्व ७१।१० में कहा गया है—

बलिष्ठेन शुल्केन दण्डेनाथापराधिनाम् ।
शास्त्रनीतेन लिप्सेथा वेतनेन धनागमम् ॥

नारद ने भी व्यवस्था दी है—'राजाओं को निश्चित प्रथाओं के अनुसार जो कुछ धन प्राप्त हो और भूमि की उपज का जो षष्ठांश प्राप्त हो वह सब राजकर होगा और प्रजा की रक्षा करने के पुरस्कार स्वरूप राजा को मिलेगा।[१]' इस प्रकार राजा तथा प्रजा में पारस्परिक संबंध एक दूसरे के प्रति शर्तों के रूप में होता था। इसीलिए तो रुद्रदामन ने अपने शिलालेख में यथावत्प्राप्यैर्बलिशुल्कभागैः, अपीडयित्वा-कर-विष्टि-प्रणय-क्रियाभिः आदि शब्दावलियों को लिखवाया था। यह 'कर' को वेतन के रूप में प्रथा की सुरक्षा के लिए मिलताथा।

यदि राजा प्रजा को सुरक्षा नहीं कर पाता था तो प्रजा उससे आर्थिक क्षति की याचना करती थी, उसकी पूर्ति राजा को अपने कोश से करना पड़ता था। याज्ञवल्क्य के अनुसार क्षति पूर्ति के चिट्ठे जानपद के द्वारा उपस्थित किये जाते थे, क्योंकि वह कहता है कि राजा का कर्त्तव्य है कि वह जानपद को क्षति-पूर्ति की रकम दे।[२] राजा इसकी पूर्ति अपने कोश से करता था। रुद्रदामन को सुदर्शन झील की मरम्मत कराने में अपने कोश से व्यय करना पड़ा था। इस प्रकार मानो स्वयं राजा पर एक प्रकार का व्यक्तिगत अर्थदण्ड हुआ करता था।[३]

---

१. नारद १८।४८ ( जोली द्वारा संपादित )
२. याज्ञवल्क्य २।३६।
३. हिन्दू राजतंत्र, पृ० १६०।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh


## (११) राजकर संबंधी सिद्धान्त :

रुद्रदामन प्रथम जूनागढ़ अभिलेख के 'अपीडयित्वा प्रणय-क्रियाभि' 'यथावत्प्राप्तैर्बलिल्कभागैः' आदि शब्दावलिया तत्कालिक 'राजकर' संबंधी सिद्धान्त पर प्रकाश डालते हैं। उन सिद्धान्तों का का वर्णन करने से पूर्व हम यह बतला देना चाहेंगे कि शक भारतीय हो चले थे और ब्राह्मण आचार-विचार को अपना लिए थे। हिन्दू राजकर के सिद्धान्त साधारणतः इस प्रकार हैं—

(१) राजकर एकत्र करने में राजा को लोभ या तृष्णा के वंश होकर स्वयं अपने तथा दूसरों के मूल का उच्छेद नहीं करना चाहिए।[१]

(२) प्रजा पर इस प्रकार कर लगाना चाहिए, जिसमें आगे चल-कर उसमें और भार वहन करने और आवश्यकता पड़ने पर और अधिक भार वहन करने की शक्ति बनी रहे।[२]

(३) जिस राज्य की प्रजा पर बहुत अधिक करों का भार होता है, वह बड़े-बड़े काम नहीं कर सकता। बड़े-बड़े काम वही राज्य कर सकता है, जिस पर कर का साधारण भार होता है और जिसका राजा अपने राज्य की रक्षा का ध्यान रखता हुआ किफायत से शासन की सब व्यवस्था करता है।[३]

(४) राजकर ऐसा होना चाहिए जो प्रजा को भारी न जान पड़े। राजा को अपना आचरण उस मधुमक्खी के समान रखना चाहिए जो बिना कष्ट पहुँचाये वृक्षों से मधु एकत्र करती है।[४]

(५) कर उपयुक्त स्थान, उपयुक्त काल और उपयुक्त रूप में

---

१. महाभारत १२।८७।१८।
२. वही १२।८७।२०-२१।
३. वही १२।४१।२२।
४. वही १२।८८।४।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh


लगाये जाने चाहिए। उनसे संग्रह का ढंग कष्टदायक नहीं होना चाहिए।[१]

(६)शिल्प की वस्तुओं पर 'कर' लगाते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि कितना लाभ होंने पर कारीगर कोई चीज तैयार करने में लगा रहेगा जिससे राजा को भी लाभ होता रहे।[२]

(७) वाणिज्य की वस्तुओं पर 'कर' लगाते समय इस बात का पूरा ध्यान रखना चाहिए कि किसी चीज की बिक्री का दाम क्या है, खरीद का दाम क्या है, कितनी दूर से आयी है, उसमे आने में कितना व्यय पड़ा है, कुल लागत कितनी आयी है और उसके लिए व्यापारी को कितनी जोखिम उठानी पड़ी है।[३]

तात्पर्य यह कि आर्थिक परिस्थितियों का सब स्थानों में ध्यान रखा जाता था। उत्पादक बल दबाया या घटाया नहीं जाता था। मूल धन पर नहीं, बल्कि लाभ पर कर लागता था। जिन वस्तुओं से नए-नए शिल्पों का विकास होने की संभावना होती थी, उन्हें प्रोत्साहन दिया जाता था।

## (१२) राजस्व के स्रोत :

शक अभिलेखों का अध्ययन करने पर हम निम्नलिखित राजस्व स्रोतों को देखते हैं —

(क) **बलि** : राजा को स्वेच्छा से दिये जाने वाले करों या अन्य

---

१. वही १२।३८।१२।

न चास्थाने न चाकाले करांस्तेभ्यो निपातयेत्।
आनुपूर्व्येण सान्त्वेन यथाकाल यथाविधि ॥

२. मनु० ७।१२९।

३. वही ७।१२७।

विक्रयं क्रयमध्वानं भक्त च सपरिव्ययम्।
योगक्षेम च संप्रेक्ष्य वाणिजां कारयेत करान्॥

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh


उपहारों के लिए इसका प्रयोग हुआ है। यह एक प्रकार का नियमित कर था।[१]

(ख) शुल्क : आजकल जिसे हम आयात-निर्यात संबंधी 'कर' कहते हैं, प्राचीन काल में उसी को 'शुल्क' कहते थे। इनकी दर निश्चित करने में राजा को संभवतः थोड़ी बहुत सुविधा थी, यद्यपि परवर्ती धर्मशास्त्रों में कुछ नियम निश्चित करके इसका भी नियंत्रण करने का प्रयत्न किया गया था, फिर भी लोभी अथवा अर्थसंकट में पड़ा राजा अपने विकास के लिए कोई न कोई मार्ग निकाल ही लेता था।

(ग) भाग : इसका तात्पर्य यहाँ खेती संबंधी कर से है। 'भाग' उस भूमि को कहते हैं, जिस पर जोतने वाले का स्वामित्व रहता है और राज्य उससे उसकी सुरक्षा का छठा भाग लेता था। इसीलिए धर्मशास्त्रों में राजा को 'षड्भागभृत' कहा गया है; परन्तु कभी-कभी विभिन्न दशाओं में यह 'कर' बढ़ भी जाता था। 'देवमात्रिका' पर कर की मात्रा कम होती थी। देवमात्रिका उस भूमि को कहते हैं जिसकी सिंचाई प्रकृति स्वयं करती है। 'अदेवमात्रिका' पर कर की मात्रा राज्य निश्चित करता था। वह इस प्रकार की भूमि पर 'कर' की मात्रा घटा-बढ़ा सकता था, इसलिए, क्योंकि इस प्रकार की भूमि की सिंचाई का प्रबंध राज्य स्वयं करता था।

(घ) प्रणय : विशेष 'कर' के लिए राजा प्रजा से याचना करता था। इस 'याचना' को ही 'प्रणय' कहा गया है।

(ङ) विष्टि : इसको बेगार कहा जाता था। प्राचीनकाल में यह उचित समझा जाता था कि जो गरीब आदमी नकद या धन्यादि में रूप में सरकार को 'कर' देने में समर्थ न थे वे शारीरिक श्रम के रूप में राज्य को कुछ 'कर' दे दे। सरकार के लिए 'विष्टि' लागू करने पर वे सरकार से भोजन पाने के अधिकारी थे।[२]

---

१. डा० अल्तेकर, प्रा० भा० शा० प०; पृ० २३०।

२. भक्तं च तेभ्यो दद्यात्। गौ० ध० सू० २।१।३५।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh


( च ) **नावापुण्यतर** : इसको यातायात शुल्क कहा जा सकता है। नाव से नदी पार करने पर 'कर' देना पड़ता था, इसका उल्लेख नहपान के नासिक गुहाभिलेख में मिलता है।[१] इसके अनुसार राजा ने 'नाव-कर' को हटा दिया था।

( ८ ) **न्याय-व्यवस्था** : अत्यंत प्राचीन काल से न्याय की व्यवस्था और अपराधियों को दण्ड राजा का परम कर्तव्य माना जाता था। वादी और प्रतिवादी के विवादों को देखने और निर्णय करने के समस्त कार्यक्रम को 'व्यवहार' कहते थे। साधारणतया 'व्यवहार' का अर्थ लोग आचार-विचार से लगाते हैं, किन्तु यहाँ 'व्यवहार' का तात्पर्य विवाद से है : वि ( नाना अर्थों में ) + अव ( संदेह ) + हार ( हरण ) के कारण इसको व्यवहार कहा जाता है।[२] व्यवहार शब्द का उल्लेख महाक्षत्रप रुद्रदामन प्रथम के जूनागढ़ शिलालेख में हुआ है।

## ( १३ ) अंतरराष्ट्रीय संबंध एवं व्यवहार :

राज्यों के परस्पर संबंधों के विषय में धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र, नीतिशास्त्र एवं परंपरा से नीति एवं सिद्धान्तों का विकास हो चुका था। प्रत्येक समृद्ध और महत्त्वाकांक्षी राज्य इनके प्रति जागरूक रहते थे। भारतीय राज्य की कल्पना ही अंतरराष्ट्रीय थी। इसके अनुसार राज्य की सात प्रकृतियों में मित्र भी एक था। जिस प्रकार राज्य के योगक्षेम में 'कोष' और 'बल' सहायक होते हैं उसी प्रकार मित्र के बिना कोई राज्य उन्नति नहीं कर सकता। अतः प्रत्येक राज्य का यह उद्देश्य होता था कि वह अपने पड़ोसी राज्यों में से यथासंभव अधिकतम राज्यों को अपना मित्र बनावे। संभवतः इसीलिए महाक्षत्रप रुद्रदामन अपने

---

१. एपि० इं० ८।१०।७८।
'नावापुण्यतरकरेण'

२. वि नानार्थेऽव संदेहे करणं हार उच्यते
नानासंदेह-हरणात् व्यवहार इति स्मृतः॥व्यवहारभातृका, पृ०२८२।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh


पड़ोसी राज्यों में विवाह संबंध स्थापित करता है।[१] महाभारत[२] और कामसूत्र[३] में चार प्रकार के 'मित्रों' का उल्लेख मिलता है। क्षहरातों के साथ उत्तमभाद्रकों की मित्रता रही होगी तभी वे मालयों के आक्रमण से बच सके। नहपान का जामाता उषवदात ने मालयों के आक्रमण से उत्तमभाद्रकों की रक्षा की थी।[४] महाक्षत्रप रुद्रदामन प्रथम ने दक्षिणापथ के स्वामी को इसीलिए छोड़ दिया था कि उसका उनसे दूर का संबंध था। विवाह संबंध और मैत्री संबंध के अतिरिक्त भी, अंतरराष्ट्रीय संबंध को बनाए रखने के लिए, एक उदाहरण मिलता है। और वह है विजित राजाओं को उनका राज उन्हीं को लौटा देना।[५]

## ( १४ ) द्वैराज्य शासन-प्रणाली :

शक-शासन की प्रमुख विशेषता 'द्वैराज्य-शासन-व्यवस्था' थी। इस शासन-प्रणाली में राजा का भाई, पुत्र, पौत्र, भतीजा आदि शासन-क्षेत्र में सह-शासक की हैसियत रखते हैं। द्वैराज्य शासन-प्रणाली में शासक को समान अधिकार प्राप्त होता है। इस शासन-व्यवस्था में चष्टन और रुद्रदामन के संयुक्त शासन का उदाहरण दिया जा सकता है।[६] चष्टन और रुद्रदामन के संयुक्त शासन का प्रमाण 'अन्दउ-प्रस्तर लेख ५.२' है।

---

१. नरेन्द्र कन्या स्वयंवरानेक माल्य-प्राप्त-दाम्ना,
जूनागढ़ लेख पंक्ति १५।

२. शांति पर्व ८०।३।

३. कामसूत्र ४।७४ : औरसं कृतसंबंध तथा वंशक्रमागतम्।
रक्षितं व्यसनेभ्यश्य मित्रं ज्ञेयं चतुर्विधम्।

४. एपि० इं० ८।१०।७८।

५. वही ८।४२ 'विजयेन भ्रष्टराजप्रतिष्ठायकेन'

६. पो० हि० एं० इं०पृ० ५१९।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh



द्वैराज्य शासन-प्रणाली की व्याख्या करते हुए डा० काशीप्रसाद जायसवाल ने कहा है कि "यह न तो एकराज अथवा ऐसा शासन था, जिसमें कोई एक ही वंशानुक्रमिक राजा शासन करता था, और न ऐसा शासन था, जिसमें थोड़े से विशिष्ट या बड़े-बड़े लोगों के हाथ में शासनाधिकार होता था। यह ऐसी शासन-प्रणाली थी, जो केवल भारत के ही इतिहास में पाई जाती है। हमारे यहाँ के साहित्य एवं शिलालेखों में इस प्रकार की शासन-प्रणाली के कई ऐतिहासिक उदाहरण उपलब्ध हैं। अभिलेखों में इस शासन-प्रणाली के जो उल्लेख मिलते हैं, उनके कारण भारतीय अभिलेख पढ़नेवाले विद्वान् बहुत उलझन में पड़ गए हैं और वे इस समस्या का कोई ठीक-ठीक निराकरण नहीं कर सके हैं। ईसवी छठी और सातवीं शताब्दी में नेपाल इसी प्रकार की शासन-प्रणाली के अधीन था। लिच्छवि राजवंश तथा ठाकुरी राजवंश के राजाओं के ठीक एक ही समय के शिलालेख काटमाण्डू में पाये गए हैं। ये एक ही राजधानी में दो स्थानों से निकली हुई घोषणाएँ हैं जिनकी तिथियों से प्रमाणित होता है कि ये दोनों राजवंश साथ-साथ और एक समय में शासन करते थे।"

किन्तु स्वर्गीय डा० काशीप्रसाद जायसवाल का यह कहना कि इस (द्वैराज्य-शासन-व्यवस्था) व्यवस्था का ज्ञान सिर्फ भारतीयों को था उनकी भूल थी। यदि हिन्दू-शक-पार्थवों के सिक्कों का अध्ययन किया जाय तो डा० काशीप्रसाद जायसवाल की भूल पकड़ी जा सकती है। स्पलिरिसिस व अजेस, हगान व हगामष आदि मिलकर द्वैराज्य-पद्धति से राज्य करते थे।

अब हम शक-कालीन शासन-पद्धति पर विचार करेंगे। शक आक्रमण तत्कालिक गुणों की सत्ता का नाश न कर सके थे, जो मौर्य-काल में तो केन्द्र द्वारा शासित होते थे किन्तु उनके पतन के थोड़े ही दिन बाद वे स्वतंत्र हो गए। सिक्कों व अभिलेखों से उस काल के अनेक

१. हिन्दू राजतंत्र पृ० १३१-३२।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh


गणों का पता चलता है, मालव, यौधेय, कुणिन्द, आर्जुनायन आदि। दुर्भाग्य ही कहिए कि उस काल के वृत्तान्तों से इनके आंतरिक संगठन के बारे में हमें अधिक ज्ञान नहीं हो सका है।

## ( १५ ) शासन पद्धति

( क ) केन्द्रीय शासन : यद्यपि शक गणों की सत्ता को आत्मसात नहीं कर सके तथापि उन्होंने उत्तरी-पश्चिमी भारत के अनेक राजतंत्रों को नष्ट किया और एक नए राजतंत्र की स्थापना की। शासन की सुविधा की दृष्टि से शक-शासन कई विभागों में बँटा हुआ था—केन्द्रीय, प्रान्तीय और स्थानीय। केन्द्रीय शासन का प्रधान अधिकारी राजा होता था जिसको 'महाक्षत्रप' कहते थे। ये अपने नाम के साथ बड़े-बड़े विरुद धारण करते थे—मोग अपने नाम के साथ 'रजति रजस महतस' प्रयुक्त करता था। राजूल, 'महछत्रपस अप्रतिचक्रस रजुवुलस'।[१] शकों से पूर्व भारतीय साहित्य में इतने बड़े-बड़े विरुद नहीं मिलते।

इन शासकों के ये बड़े-बड़े विरुद उन तक ही सीमित न थे अपितु उनके रनिवासों में भी प्रयुक्त होते थे। अशोक की रानियाँ सिर्फ 'देवी' के नाम से जानी जाती थीं। उदाहरण के लिए तीवर की माँ 'दुतीया देवी' के नाम से पुकारी जाती थीं और सबसे बड़ी रानी 'प्रथमा देवी' के नाम से जानी जाती थी किन्तु शक काल में हम 'प्रथमादेवी' के स्थान पर 'अग्रमहिषी' विरुद पाते हैं।[२]

इस संबंध में ध्यान देने योग्य एक और बात है और वह यह कि ये शाही विरुद जो किसी काल में कभी सम्राटों के लिए प्रयुक्त होते थे, दूसरे काल में वे ही सामन्तों के लिए प्रयुक्त होने लग जाते हैं।

---

१. न्यूसिममेटिक क्रानिकल १८८८-९२ पृ० १७२।

२. एपि० इं० ९।१४१।
'महक्षत्रवस रजुलस अग्रमहेषि'

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh


जैसे 'राजा'। इस उपाधि का प्रयोग मौर्य काल में सम्राटों के साथ हुआ था। किन्तु वही चक्रवर्ती की उपाधि शकों और गुप्तों के काल में उनके सामन्तों के लिए प्रयुक्त किया जाने लगा। और फिर 'महाराज' जो कि शक काल में सम्राट का विरुद होता था, गुप्तों के काल में वही अधीनस्थ राजाओं के लिए प्रयुक्त होने लगे थे।

**(ख) मंत्रिपरिषद्** : इन राजाओं को शासन संबंधी सुझाव देने के लिए उनका एक मंत्रिपरिषद् होता था। मंत्रिपरिषद् सिर्फ सुझाव ही नहीं देता था उसको कार्यान्वित भी करवाता था। यदि वह किसी-किसी बात पर अटल हो जाता था तो राजा कुछ नहीं कर सकता था। शक काल में ये मंत्री, आमात्य और सचिव, दो नामों से जाने जाते थे[१]।

**(ग) कोषाध्यक्ष** : कोषाध्यक्ष को 'गंजवरेण' कहते थे[२]। कोष में वे ही धन आते थे जो बलि, शुल्क और भाग द्वारा प्राप्त होते थे। रुद्रदामन का कोष इन करों से ही धन-धान्य से पूर्ण था। उसका कोष कनक (सोना), रजत (चाँदी) वज्र, वैडूर्यादि रत्नों से भरा-पूरा था। कोष का धन जन-कल्याणकारी कार्यों में ही खर्च होता था। इसका प्रचुर उल्लेख शक अभिलेखों में मिलता है।[३]

**(घ) युवराज** : केन्द्रीय शासन में राजा का सहायक युवराज भी होता था। 'युवराज' खरोष्ठ का उल्लेख मथुरा सिंह शीर्ष लेख में

---

१. एपि. इं. ८। ४२।

२. एपि. इं. ६। २४७।
स्वामिस्य महाक्षत्रपस्य शोडासस्य गंजवरेण ब्राह्मणेन शेग्रव-सगोत्रेण।

३. एपि. इं. ८। १०। ७८।
भरुकछे दशपुरे गोवर्धने शोर्पारगे च चतुशालावसध-प्रतिश्रय-प्रदेन आराम-तडाक-उदपान-करेण।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh


हुआ है। उज्जयिनी के शक-कुल में युवराज को 'क्षत्रप' कहा गया है।

**(च) प्रान्तीय शासन :** शासन की सुविधा की दृष्टि से साम्राज्य कई क्षत्रपियों (प्रान्तों) में विभक्त था। प्रान्त क्षत्रपों, महादण्डनायकों एवं आमात्यों द्वारा शासित होते थे। राजाधिराज महाराज मोग के शासन-काल में तक्षशिला का प्रान्तीय शासक लियक कुसुलक और शहदौर अभिलेख का दमिजद हजारा क्षेत्र के शासक थे। महाक्षत्रप रुद्रदामन प्रथम के काल में सुराष्ट्र प्रान्त का शासक आमात्य सुविशाख पहलव था।

## (१६) स्थानीय शासन :

**(१) जनपद**—ये क्षत्रपियाँ भी शासन की सुविधा की दृष्टि से जिलों (आहार-हार) और पौर ग्रामों में विभक्त थीं। 'हार' और 'जनपद'[१] दोनों शब्द जिले के लिए प्रयुक्त किये गए हैं, क्योंकि यदि तत्कालीन अभिलेखों पर दृष्टिपात किया जाय तो 'हार' और 'जनपद' एक ही शब्द के अर्थ के लिए प्रयुक्त किये हुए मिलते हैं।

---

१. जनपद शब्द का कोई ठीक-ठीक अर्थ नहीं किया गया। वह एक विवाद का विषय है। सूत्रकाल में जपनद भारतीय भूगोल का सबसे महत्त्वपूर्ण शब्द था। वस्तुतः भारतीय इतिहास में युग-विभाग की दृष्टि से सूत्रकाल का ठीक नामकरण महाजनपद युग है। इस समय सारा देश जनपदों में बँटा हुआ था। उनको विस्तृत सूचियाँ भुवनकोश के नाम से लिपिबद्ध कर ली गयी थी, जो महाभारत आदि प्राचीन ग्रन्थों में सुरक्षित हैं। पाणिनीय भूगोल का प्रधान अंग जनपद-विभाग है। काशिकाकार ने गाँवों के समुदाय को जनपद कहा है—'ग्रामसमुदायो जनपदः'। यहाँ ग्राम शब्द में नगर का अंतर्भाव समझना चाहिए। वस्तुतः जनपद में नगर और ग्राम दोनों शामिल थे।
डा० अग्रवाल, पाणिनीकालीन भारतवर्ष, पृ० ५७।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh


(२) पौर—'पौर' शब्द का उल्लेख रुद्रदामन के जूनागढ़ लेख में मिलता है। भारतीय और यूरोपीय लेखकों ने पौर शब्द का अनुवाद करते हुए लिखा है—वह संस्था जो राजा के समस्त नगरों से संबंध रखती हो। किन्तु वास्तव में बात ऐसी नहीं है।[१] आरंभिक हिन्दू लेखक पारिभाषिक शब्द 'पुर' और 'नगर' से राजधानी या राजनगर का अभिप्राय लेते थे। पौर वास्तव में नगरवासियों की एक सभा या संस्था थी जिसे राजनगर की आंतरिक व्यवस्था आदि का उसी प्रकार अधिकार प्राप्त होता था, जिस प्रकार आजकल की म्यूनिसिपेलिटियों को प्राप्त है। नगर की इस प्रकार की म्यूनिसिपल व्यवस्था करने के अतिरिक्त उसे राष्ट्र संगठन या व्यवस्था आदि के भी बड़े-बड़े अधिकार होते थे।[२]

पौर में एक लेखक या रजिस्ट्रार भी हुआ करता था। वह जो लेख प्रमाणस्वरूप उपस्थित करता था, वह सर्वोत्कृष्ट समझा जाता था। राजकीय लेखों के विपरीत लौकिक लेखों में पौर-लेखक का लेख्य प्रधान या मुख्य हुआ करता था। इससे सिद्ध होता है कि पौर-संस्था की नियुक्ति राजा के द्वारा नहीं होती थी।

पुर या राजनगर में नगर के व्यापारियों की भी एक सभा हुआ करती थी जिसे 'नैगम सभा' कहते थे। राजनगर के व्यापारियों के संघ और राजनगर की व्यवस्थापिका संस्था में इतना अधिक संबंध था कि दोनों को लोग एक ही समझने लगे थे। रामायण में नैगम का उल्लेख सदा पौर के साथ मिलता है। किन्तु उनका उल्लेख इस प्रकार हुआ है कि दोनों अलग होने पर भी परस्पर संबद्ध जान पड़ते हैं[३]।

---

१. हिन्दू राजतंत्र, पृ० १२६
२. वही § २५३।
३. हिन्दू राजतंत्र, पृ. १४६।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh


नैगम का अपना निजी अधिवेशन भवन और कार्यालय होता था जिसे 'सभा' कहते थे। एक स्थान पर यह उल्लेख मिलता है कि एक धनवान और उदार व्यापारी ने नैगम सभा के अधिवेशन में यह लिखवाया था कि गोवर्धन नगर के कुछ श्रेणियों के पास मेरा जो धन है, वह अमुक-अमुक दान-कार्यों में लगाया जाय।[१]

पाणिनि के अनुसार निगम शब्द का जिससे नैगम शब्द निकला है, शब्दार्थ होता है—वह स्थान या गृह जिसमें लोग जाते हैं। वह राजधानी का ऐसा स्थान रहा होगा जहाँ व्यापारी और व्यवसायी लोग जाकर आपस में एक दूसरे से मिलते-जुलते होंगे। उसी निगम से संबद्ध लोगों की संस्था 'नैगम' कहलाती थी।[२]

शासन की सबसे छोटी इकाई ग्राम थी। ग्राम शब्द का शक अभिलेखों में कई जगह उल्लेख है परन्तु उसके शासन के बारे में वे प्रायः मौन हैं। संभव है वे पौर-जानपद सस्था से संचालित होती हों। इन अभिलेखों में जब-जब भी ग्रामों का उल्लेख आया है, तब-तब दान वगैरह कल्याणकारी कार्य उनसे जुड़े मिलते हैं।

शकों के शासन की मुख्य बात यह रही है कि उन लोगों ने राज-कर्मचारियों की नियुक्तियों में 'योग्यता' को प्रमुखता दी। इसमें उन्होंने किसी जाति-विशेष को ही उस क्षेत्र में पनपने नहीं दिया। इस तथ्य का ज्वलंत उदाहरण उनके अभिलेखों में मिलता है जहाँ वे कोषाध्यक्ष-पद पर ब्राह्मण शेग्रेव की, आमात्य-पद पर पहलव सुविशाख की एवं सेनापति-पद पर एक आभीर को नियुक्ति करते हैं।

इस पूरे परिच्छेद को ध्यान में रखते हुए हम यही उपसहनीय संक्षेप करेंगे कि शकों का राज्य राजतंत्रात्मक था, जो दैवी-उत्पत्ति सिद्धान्त से परे था। दैवी-उत्पत्ति-सिद्धांत में राजा का निर्वाचन ज्यों नहीं देवता करता है। ऐसी दशा में राजा मनमानी भी हो गयीं। दंत-विचत हो

१. एपि. इं. ८। ८२।

२. हिन्दू राजतंत्र § २६१।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh


जाता है और प्रजा को उसके विरुद्ध बोलने का अधिकार नहीं रहता, क्योंकि राजा बुरा है का मतलब होता है प्रजा ने कोई दुष्कर्म किया है। इस दुष्कर्म के प्रायश्चित-स्वरूप देवताओं ने ऐसे राजा को भेजा। ऐसी कोई व्यवस्था हम शक राजनीति और शासन-पद्धति में नहीं पाते। राजा और राज्य हमेशा प्रजा के हित को ध्यान में रखते हुए कार्य करते थे। उनके कार्यों के मूल में जनकल्याण की भावना विद्यमान रहती थी। सुराष्ट्र-प्रदेश की विद्रोही पौर-जानपद-निवासियों को खुश करने की दृष्टि से ही रुद्रदामन ने सुविशाख को उस प्रदेश का आमात्य (प्रान्तीय शासक) घोषित किया था।[१] जन-भावना को दृष्टि में रखकर ही शक राजाओं ने कुएं, तालाब, आरामगृह आदि का निर्माण कराया था।

---

—जासु इहाधिष्ठाने पौरजानपदजनानुग्रहार्थं पार्थिवेन कृत्स्नाना-

१. हिन्दू सुराष्ट्रानां पालनार्थनियुक्तेन पह्लवेन कुलैप पुत्रेणा-

२. वही § २ सुविशाखेन यथाददर्थ-धर्म-व्यवहार-दर्शनानुराग-

३. हिन्दू राजतंत्र, ६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

# सामाजिक जीवन

शकों का भारत आगमन ऐसे काल में हुआ जो वैदिक पुनर्जागरण के नाम से जाना जाता है। भारत में आने से पूर्व ये दस्यु और बर्बर थे। ये लोग खानाबदोशों की तरह चारागाहों की खोज में इधर-उधर भटका करते थे। ऐसे लोगों का न कोई धर्म होता है और न दर्शन। वे जिस संस्कृति से प्रभावित होते हैं उसके अनुरूप अपने को ढाल लेते हैं।

भारतीय समाज की रचना कर्म-सिद्धान्त पर हुई थी। इस समाज रचना में वर्णों को मुख्य स्थान प्राप्त था। वर्ण-व्यवस्था का यह सिद्धान्त कालान्तर में रूढ़िवादी विचारों के जोर पकड़ने के कारण जन्म ने ले लिया। इससे लोगों के आत्मस्वातंत्र्य की भावना दबने लगी। परिणाम-स्वरूप ईसवी पूर्व छठी शती में अवैदिक (अब्राह्मण) धर्मान्दोलन हुए। इन्होंने मानवता का प्रचार किया (किन्तु ये भी जन्म सिद्धान्त को नष्ट करने में पूर्व रूप से सफल न हो सके; अस्पृश्यता की भावना पनपती रही) -फलस्वरूप लोग बौद्ध एवं जैन धर्मावलम्बी बनते गए। समाज की ऐसी ही व्यवस्था में, ईसवी पूर्व द्वितीय के अंत तथा ईसवी पूर्व प्रथम के संधिकाल में, शकों ने भारत में प्रवेश किया।

शकों के प्रारंभिक हमले अत्यंत विध्वंसक हुए। अग्लाट का आक्रमण जिसका वर्णन गार्गीसंहिता का युगपुराण करता है अत्यंत दारुण था।[1] इस आक्रमण से भारतीय राज्य नष्ट हो गए, साम्राज्यों के प्रान्त बिखर गए, वर्णों की पारस्परिक सीमाएँ विलुप्त हो गयीं। पाटलिपुत्र से पुरुषों का सर्वथा लोप हो गया। आचार क्षत-विक्षत हो

१. ज० बि० उ० रि० सो० १६।१।१८-६६।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh


गया। ब्राह्मण चाण्डाल का आचरण करने लगे और शूद्र ब्राह्मण से बराबरी का दावा।

उनके सतत आक्रमणों से सूत्रों और धर्मशास्त्रों की वर्ण-व्यवस्था बिखर गयी। सूत्रों ने जो अनेक प्रकार की शृंखलाओं से विभिन्न वर्ण-स्तर प्रस्तुत किये थे इन चोटों से विशृंखलित हो गए। इसीलिए भारतीय समाजशास्त्रियों ने उनको बर्बर और म्लेच्छ कहा।[१] उनमें वर्ण-व्यवस्था न थी और वे इस भारतीय विचित्रता को समझ भी न सके। उनका आहार-विहार एक साथ होता था। विवाह आपस में निर्बाध होता था।[२] महाभारत में भी ऐसा वर्णन मिलता है कि पंजाब में रहने वालों का इतना नैतिक पतन हो गया था कि उनको अपनी माँ तक नहीं सुझाई पड़ती थी।[३] पंजाब में इस प्रकार के अनैतिक व्यापार इन्हीं विदेशियों के कारण हुआ होगा। वह प्रदेश विदेशियों के अधिकार में अधिक दिनों तक रहा।

ब्राह्मण समाजशास्त्रियों ने चूँकि शकों को म्लेच्छ कहा था उनको चातुर्वर्ण्य स्थान मिलना दुष्कर था। अतः उन्होंने ऐसे समाज और धर्म का खोज करना शुरू किया जिसमें जाति-पाँति एवं वर्ण-भेद का कोई विचार न होता हो। ऐसे समाज एवं धर्म का दर्शन उन्हें अवैदिक समाज और धर्म में मिला। संभवतः इसीलिए प्रारंभिक शकों को हम अवैदिक धर्मों के विकास एवं समृद्धि में संलग्न पाते हैं।[४]

---

१. वृषलत्वं गता लोके ब्राह्मणादर्शनेन च ॥
पौण्ड्रकाश्चौड्रद्रविडा : काम्बोजा यवना शकाः।
पारदाः पहलवाश्चीनाः किराता दरदाः खशाः ॥ मनु, १०।४३,-४४।

२. मैकगवर्न, अर्ली इंपायर्स आफ सेंट्रल एशिया, पृ० ५५।

३. महाभारत ८।४४।

४. द्रष्टव्य, अध्याय "धार्मिक जीवन"

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh


परन्तु यह वैदिक पुनर्जागरण का काल था। वैदिक धर्मावलम्बी यह नहीं चाहते थे कि अवैदिकों के सामने उनका अपौरुषेय धर्म नीचा दिखे। अतः उन्होंने भी अपने समाज में विदेशियों को सम्मिलित करने का विधान किया। उन्होंने इन शकों को मूलतः क्षत्रिय ही बतलाया जो ब्राह्मणों का संपर्क छूट जाने के कारण वृष्लत्व को प्राप्त हुई।[१] जो विदेशी यहाँ अपनी राजनीतिक शक्ति स्थापित करने में सफल हुए थे वे सब अब क्षत्रिय वर्ग में सम्मिलित कर लिए गए। ब्राह्मणों के संपर्क में पुनः आने से उनकी वृषलत्वता जाती रही। अब वे भी वैदिक धर्मों की आराधना करने लगे। उनके पुरोहित ब्राह्मण धर्म में सम्मिलित कर लिए गए। प्राचीन आर्य-विचारधारा को उन्होंने भी अपना लिया था। मुल्तान के सूर्यमंदिर में शाकद्वीपी ब्राह्मणों को पुजारी के रूप में नियुक्त करना इसका स्पष्ट परिचायक है।[२]

## ( १ ) वर्णव्यवस्था :

ब्राह्मण समाजशस्त्रियों की व्यवस्था से अब शक म्लेच्छ नहीं रहे थे; वे भारतीय हो चले थे और उनमें भी वर्णव्यवस्था होने लगी थी। मग, मागध, मानस, मन्दग चार वर्ण थे।[३] किन्तु इनमें से मागध, मानस और मन्दग वर्णों के बारे में हमारे पास अन्य कोई दूसरा प्रमाण नहीं है। 'मग' शकों के पुरोहित होते थे यह स्पष्ट है।[४] भार-

---

१. शका यवनकाम्भोजास्तास्ताः क्षत्रियजातयः
वृषलत्वं परिगता ब्राह्मणानामदर्शनात्॥ अनु० प० ६८।२१।

२. भविष्य, शांब, वराह आदि।

३. मगाश्च मागधाश्चैव मानसा मन्दगास्तथा,
मगाः ब्राह्मण भूयिष्ठाः मागधा क्षत्रियास्तथा
वैश्यास्तु मानसास्तेषं शूद्रास्तेषान्तु मन्दगाः॥ विष्णुपुराण।

४. महाभारत ६।२; कूर्मपुराण ४८।३६।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh



तीय समाज में उनका पद उच्च ब्राह्मणों के समकक्ष समझा जाता। था। आज भी भारतीय समाज में ब्राह्मणों में एक ऐसा वर्ग है जो अपने को बड़े गर्व से शाकद्वीपी कहता है।

समाज में जहाँ तक वर्णों के मान और स्थान का प्रश्न है ब्राह्मण सर्वोपरि समझा जाता था। रुद्रदामन के जूनागढ़ लेख में एक जगह गो और ब्राह्मण की रक्षा करता हुआ रुद्रदामन को बत लाया गया है।[१] इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि समाज में ब्राह्मणों को उच्च स्थान प्राप्त था। अब देखना यह है कि क्या वे ब्राह्मण भारतीय ब्राह्मणों की भाँति कट्टर भी थे। मानव धर्मसूत्र ब्राह्मणों में निम्नलिखित गुणों का होना बतलाया है—

अध्यापनं अध्यायनं यजनं याजनं तथा
दान प्रतिग्रहश्चैव सत्कर्मान्यग्रजन्मनाः।१०।५५

अब देखना यह है कि ये गुण इन ब्राह्मणों पर कहाँ तक चरितार्थ होते थे। प्रतिग्रह करते हुए शक ब्राह्मणों का उल्लेख मिलता है। जिला शाहाबाद में प्राप्त देववरणार्क अभिलेख से विदित होता है कि बहुत काल पूर्व 'भोजक' नामक ब्राह्मण वहाँ रहते थे मागधराज बालादित्यदेव ने उस क्षेत्र को 'भोजक ब्राह्मण' सूर्यमित्र का सूर्यपूजन के निमित्त दान कर दिया था। बाद में वह गाँव अवंतिवर्मन नामक राजा द्वारा 'भोजक' ऋषिमित्र को दान कर दिया गया।[२]

शक अथवा 'मग' ब्राह्मणों का दूसरा नाम 'भोजक' भी था।[३] मोनियर विलियम्स ने 'भोजक' शब्द का अर्थ बतलाते हुए कहा है— सूर्यपूजकों या पुरोहितों का एक वर्ग जो मगों के उत्तराधिकारी थे

---

१. महाक्षत्रपेण रुद्रदाम्ना वर्षसहस्राय गो- ब्राह्मणार्थं धर्मकीर्ति वृद्धयर्थं....
२. का० इं० ३।२१५।
३. भविष्यपुराण १४४।२६।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh


तथा भोज जाति की स्त्रियों एवं मगों के साथ विवाह के परिणाम थे।[१] इस प्रकार जैसा कि देववरणार्क अभिलेख से विदित होता है शक ब्राह्मण भी प्रतिग्रह आदि पर निर्भर करते थे।

शक क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के बारे में हम अंधकार में हैं। मनुसंहिता शकों को क्षत्रिय की संज्ञा देता है।[२] जूनागढ़ लेख में भी रुद्रदामन को क्षात्र गुणों पूर्ण कहा गया है।[३] किन्तु ध्यान देने योग्य बात यहाँ यह है कि राजा क्षत्रिय ही हो यह उस काल को तथा भारतीय इतिहास को देखते हुए नहीं कहा जा सकता है, जबकि धर्मशास्त्रानुसार राजा को क्षत्रिय ही होना चाहिए।

## (२) विवाह :

आश्रम व्यवस्था का समाज में कहाँ तक पालन होता था इसका तो ठीक-ठीक पता नहीं है किन्तु उस काल में भी विवाह आदि होते थे। धर्म और दर्शन की दृष्टि से विवाह का संबंध जीवन के पुरुषार्थों से था। धर्म के अभ्यास और संस्कार के लिए ब्रह्मचर्य आश्रम की व्यवस्था थी। अर्थ की उपलब्धि तथा काम के सेवन के लिए गार्हस्थ्य और उसके आधारभूत विवाह की आवश्यकता थी। यदि समाजविज्ञानी शब्दों में कहा जाय तो विवाह का उद्देश्य तथा कार्य (१) स्त्री पुरुष के यौन संबंध का नियंत्रण और वैधीकरण, (२) संतान की उत्पत्ति, संरक्षण, पालन तथा शिक्षण और (३) नैतिक, धार्मिक एवं सामाजिक कर्तव्यों का पालन था। विवाह प्रायः सभी के लिए अनिवार्य था। एक आश्रम से दूसरे आश्रम में जाने की मर्यादा सर्वमान्य थी और सिद्धान्ततः कलि में सन्यास वर्जित था, यद्यपि इसके अपवाद स्वीकार्य थे। स्वयं पुरुष स्त्री के बिना आधा ही मनुष्य

१. संस्कृत इंगलिश डिक्शनरी पृ० ७२३।
२. मनु० १०।४३,४४।
३. 'राजलक्ष्मी धारण-गुणतस्सर्व-वर्णैरभिगम्य रक्षणार्थं प्रतिवेदृत'।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh


माना जाता था। महाभारत की निम्नलिखित सूक्तियाँ उद्धरणी हैं जिसमें 'गृह को गृह नहीं कहा गया है, गृहणी गृह कही जाती है।' 'भार्या मनुष्य का अर्द्धांश और श्रेष्ठतम सखा है। भार्या त्रिवर्ग ( धर्म, अर्थ, काम ) का मूल और संसार से तरण का साधन भी है।'[१]

धर्मशास्त्रों और स्मृतियों में वर्णित आठ प्रकार के विवाह इस काल की स्मृतियों[२] को गणना के लिए मान्य थे, यद्यपि इनमें से कई एक अप्रचलित और वर्जित हो रहे थे :

१. **पैशाच**—यह निम्नतम स्तर पर था जहाँ सुप्ता, मत्ता, प्रमत्ता कन्या से एकान्त में उपगमन किया जाता था। इसमें छल और पशु बल दोनों का प्रयोग होता था।

२. **राक्षस**—जहाँ कन्या के संबंधियों की हत्या, छेदन तथा भेदन कर उसको रोती हुई बलपूर्वक घर से हरणकर विवाह किया जाता था उसे राक्षस कहते थे। इसके लिए युद्ध हिंसा और पशुबल आवश्यक था। इसीलिए इसको राक्षस कहा गया।

३. **गांधर्व**—जहाँ वह और कन्या का स्वेच्छा से अन्योन्य संयोग होते थे उसे मैथुन्य कामसंभव गांधर्व विवाह कहा जाता था।

४. **आसुर**—जहाँ कन्या के संबंधियों तथा कन्या को शक्त्यानुसार धन देकर स्वच्छंदतापूर्वक उसका ग्रहण किया जाता था उसे आसुर कहा जाता था।

५. **प्राजापत्य**—जहाँ माता-पिता या संरक्षक 'तुम दोनों साथ धर्मानुचरण करो' कहकर कन्या को प्रदान कर देते थे उसे प्राजापत्य कहते थे।

---

१. न गृहं गृहमित्याहुर्गृहिणी गृहमुच्यते। शांति० १४४।६६।
अर्द्धं भार्या मनुष्यस्य भार्या श्रेष्ठतम सखा
भार्या मूलं त्रिवर्गस्य भार्या मूलं तरिष्यतः॥ आदि. ७४।४०।

२. मनु० ३।२१।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh


६. आर्ष—जहाँ एक या दो जोड़े गौ के धर्मतः ( यज्ञार्थ अथवा दानार्थ ) वर से लेकर विधिवत कन्या प्रदान की जाती थी उसे आर्षधर्म ( ऋषिविवाह ) कहते थे।

७. दैव—कन्या को अलंकृत कर यज्ञकार्य में लगे हुए ऋत्विज को दिया जाना दैव विवाह कहलाता था क्योंकि दैवकर्म से इसका संबंध था। इसीलिए इसको दैव कहते थे।

८. ब्राह्म—जब कन्या का पिता अथवा अभिभावक उसको भली भांति वस्त्राभूषण से सुसज्जित कर विद्वान तथा आचारवान वर को स्वयं बुलाकर और उसका आदर करके कन्यादान करता था तब उसे ब्राह्म विवाह कहते थे। विवाह की यह सबसे सात्विक और सरल प्रथा थी। अतः भारतीय इतिहास के प्रायः सभी कालों में यह अधिक प्रचलित रही।[१]

उपर्युक्त आठ प्रकार के विवाहों के अतिरिक्त स्वयंवर भी एक प्रकार था।[२] इसमें कन्याओं को अपना पति चुनने का अधिकार प्राप्त रहता था। जो कन्या स्वयं अपना वर चुनती थी उसे स्वयंवरा कहते थे। धर्मशास्त्र के अनुसार ऋतुमती होने के तीन वर्ष के भीतर यदि पिता अथवा अभिभावक कन्या के विवाह की व्यवस्था नहीं कर पाते तो कन्या को अधिकार था कि वह अपना वर स्वयं चुने।[३]

## ( ३ ) बहुपत्नी प्रथा :

यह प्रथा बहुत प्राचीन काल से समाज में प्रचलित थी। किन्तु प्रचलित होते हुए भी समाज इसको हेय दृष्टि से देखता था। अधिकांशतः यह राजकुलों तथा धनिक वर्गों में ही पाया जाता था।

---

१. डा० राजबली पाण्डेय, हि० सा० वृ० इ० १।११६।

२. ए पि० इं० ८।४२।

३. त्रीणि वर्षाण्यृतुमति काङ्क्षेत पितृशासनम्
ततश्चतुर्थे वर्षे तु विन्देत सदृशं पतिम्। बौ० ध० शू० ४।१।१४।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh



शकों में बहुपत्नी प्रथा का वर्णन हेरोडोटस करता है।[१] पेरिप्लस के अनुसार नहपान का रनिवास स्त्रियों से भरा रहता था।[२] जूनागढ़ अभिलेख में रुद्रदामन को 'नरेन्द्र कन्या स्वयंवरानेक माल्यप्राप्तदाम्ना' कहा गया है।[३]

## (४) अंतर्जातीय विवाह :

वैदिक साहित्य में इस प्रकार के विवाहों का उदाहरण मिलता है जिसमें ब्राह्मण क्षत्रिय की कन्या से विवाह कर लेता था।[४] किन्तु सूत्रों और स्मृतियों के काल से सवर्ण विवाह पर बल दिया जाने लगा। तथापि अनुलोम ( उत्तम वर्ण के वर का अवर वर्ण की कन्या के साथ ) विवाह वैध माना जाता था। इस संबंध को कान्हेरी अभिलेख स्पष्ट करता है जहाँ शातकर्णि को रुद्रदामन का जामाता कहा गया है।[५] शातकर्णि ब्राह्मण था।

## (५) स्त्रियों की दशा :

वैदिक युग में पत्नी पति के साथ बैठकर यज्ञ करती थी।[६] उसके बिना पति का यज्ञ पूरा नहीं हो सकता था। किन्तु २०० ई० पू० में उसका इतना अधः पतन हुआ कि वह शूद्रा बना दी गयी।[७] उसकी इस दुरवस्था का मूलकारण पहले तो कर्मकाण्ड प्रधान धर्म था, किन्तु

---

१. हेरोडोटस ४।७८।

२. डा० चट्टोपाध्याय, दि शकास इन इंडिया, पृ० ३६।

३. एपि० इं० ८।४२।

४. श० ब्रा० ४।१।५।

५. आर्के० सर्वे वे० इं० ५।११।७८।

६. ऋ० ५।२८।१ में सायण की व्याख्यानुसार विश्ववारा प्रातःकाल यज्ञ करती है। ऋ० १०। ८६। १ में स्त्रियों के यज्ञ में जाने की चर्चा है।

७. हरिदत्त वेदालंकार, हिन्दू परिवार मीमां सा, पृ० १३३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh


बाद में वैराग्यमूलक धर्म भी सहायक हुआ।[१] इस प्रकार नारी की अवस्था दिन-प्रति दिन हीन होती गयी।

सूत्रयुग के पूर्व स्त्रियों की शिक्षा की व्यवस्था थी। वेदों के युग में कन्या को ब्रह्मचर्य आश्रम में प्रवेश करने का अधिकार था, उसका उपनयन संस्कार होता था और उसे उच्चतम् आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक शिक्षा मिल सकती थी। लोपामुद्रा, विश्वारा, घोषा आदि स्त्रियों ने मंत्रद्रष्टा ऋषि पद को प्राप्त किया था। उपनिषदों में अनेक विदुषी और ब्रह्मवादिनी स्त्रियों का उल्लेख मिलता है। प्रायः रामायण, महाभारत आदि महाकाव्यों के युग तक यह परंपरा चलती रही। रामायण में कौशल्या और महाभारत में द्रौपदी क्रमशः मंत्रविद् और पंडित कही गयी हैं, परन्तु बौद्ध युग के आरंभ होते ही अधिक संख्या में भिक्षुणी बनने और तत्पश्चात् पवन-पहलव-शक-तुषारादि के आक्रमण के कारण स्त्रियों की उच्च शिक्षा के स्थान पर उसकी सुरक्षा तथा गोपनीयता ने स्थान ग्रहण किया।[२]

गार्गी संहिता के युगपुराण में उल्लेख है कि इन आक्रमणों से विशेषकर अम्लाट शक के बाद, भारतीय वर्ण-व्यवस्था सर्वथा विनष्ट हो गयी। इस वस्तुस्थिति में जब प्रांत आकुल हो गया, समाज विपन्न हो गया तब इस राजनीतिक और सामाजिक विप्लव के परिणाम को संभालने के लिए भारतीय समाजशास्त्री विकल हो उठे। गृह्यसूत्रों में समाज को फिर से नियम देने की व्यवस्था की गयी। इस वैदेशिक प्रवाह और विप्लव में प्राण तो संकट में पड़ ही गए थे, स्त्रियों की भी बड़ी दुर्दशा हुई। उनकी विपत्ति को देश और समाज की विपत्ति समझ सूत्रकारों ने उनकी पुनर्व्यवस्था की। परन्तु उनकी व्यवस्था स्त्रियों के प्रभूत नियंत्रण सिद्ध हुई।[३] मनु के अनुसार "पति ही कन्या

१. शंखायन ब्रा० २७।४ "अयज्ञिय वै पत्न्यौ बहिर्येदिहिताः।"
२. हिंदू परिवार मीमांसा, पृ० १४० फु० नो० नं० २२।
३. डा. उपाध्याय, भारतीय समाज का ऐतिहासिक विश्लेषण, २६०-६

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh


का आचार्य, विवाह ही उसका उपनयन संस्कार पति की सेवा ही आश्रमनिवास और गृहस्थी के कार्य ही दैनिक धार्मिक अनुष्ठान था।"[१]

पत्नी को गृहस्वामिनी का सा अधिकार प्राप्त था। इसी अधिकार के कारण महाक्षत्रप राजूल की अग्रमहिषी मथुरा सिंह शीर्ष लेख[२] लिखवा सकी थी और उषवदात की पत्नी दानादि कार्यों में अपने पति के साथ रहती थी।[३]

स्त्री के अनेक रूपों में मातृरूप सबसे अधिक आदरणीय और महत्त्व का माना जाता था। वास्तव में माता होने ही में स्त्री-जीवन की सार्थकता समझी जाती थी। माता होने के साथ ही स्त्री का घर में स्थान और मूल्य दोनों बढ़ जाते थे। महाभारत में माता की भूरि-भूरि प्रशंसा की गयी है। माता के समान कोई शरण नहीं और न तो उसके समान कोई गति। माता के सदृश कोई त्राण नहीं और न उसके बराबर कोई प्रिय।[४] सत्य से बढ़कर कोई धर्म नहीं और माता से बढ़कर कोई गुरू नहीं।[५] मनुस्मृति में स्त्रियों के ऊपर कठोर नियंत्रण का विधान है, किन्तु उसके अनुसार भी माता का स्थान बहुत ऊँचा है; दश उपाध्यायों से आचार्य श्रेष्ठ होता है, शत आचार्यों से पिता। माता-पिता से सहस्रगुना श्रेष्ठ होती है।[६] संभवत :

---

१. वैवाहिको विधि : स्त्रीणाँ संस्कारों वैदिकः स्मृतः।
पतिसेवा गुरौ वासो गृहार्थो ऽ ग्निपरिक्रिया ॥ मनु० २।६७।

२. एपि० इं० ६।१४१।

३. वही, ७।११।८१; ८।१३।८५।

४. नास्ति मातृसमा छाया नास्ति मातृसमा गति;
नास्ति मातृसमं त्राण नास्ति मातृसमा प्रिया ॥ शांति, २६७।३१।

५. नास्ति सत्मात्परो धर्मो नास्ति मातृसमो गुरु : शांति, ३४३।१८।

६. उपाध्यायद्दशाचार्यः आचार्याणां शंत पिता।
सहस्रं तु पितुर्माता गौरवेणतिरिच्यते ॥ मनु० २।१४५-४६।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh


इसीलिए अपने नाम के आगे लोग अपनी माता का नाम लगाने लगे थे। सातवाहन वंश का इतिहास माता के प्रति भक्ति प्रदर्शित करने में तो अग्रणी है। महाक्षत्रप शोडास के काल के मथुरा अयागपट्ट लेख में भी इस तरह का वर्णन मिलता है, जहाँ अमोहिनी नामक स्त्री के पुत्रों ने अर्हत पूजा के निमित्त अयागपट्ट का निर्माण किया था।[१]

भारतीय समाज-व्यवस्था पर इस शक आक्रमण का एक प्रभाव भी पड़ा जिससे बाल-विवाह का आविर्भाव हुआ। विदेशी लुटेरों से अपनी तरुण कन्याओं की रक्षा-हेतु ही इसका विधान गया किया था; क्योंकि पति का अपनी पत्नी की रक्षा कर सकना अनेक बच्चों वाले पिता की अपेक्षा सहज था। संभवतः इसीलिए सूत्रकारों ने इस सूत्र की रचना की :

प्रयच्छेत्नग्निकां कन्यामृतुकालभयात्पिता
ऋतुमत्यां हि तिष्ठन्त्यां दोषःपितरमृच्छति।

**वसिष्ठ**

अर्थात् पिता को अपनी कन्या को उसके युवती होने से पहले ही, ऋतुमती होने से पूर्व ही शादी कर देनी चहिए; यदि वह ऋतुमति होने पर भी अपने घर रह जाती है तो पिता पाप करता है। एक स्थल पर तो नग्निका को, जो अभी ठीक से कपड़ा पहनना भी नहीं जानती, ही श्रेष्ठ कहा गया है।[२]

●

१. एपि० इं० ६।२४३-४४।
२. नग्निका तु श्रेष्ठा। गोभिल,३।४।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

# आर्थिक-जीवन

भारतीय समाज ने जब तक शकों को बर्बर समझा उन्होंने वैसा ही ( बर्बरतापूर्ण ) परिचय दिया। उन्होंने देश को रौंद डाला। गाँव के गाँव उजाड़ डाले, खलिहानों में आग लगा दिया, कत्ले आम किया। गार्गी संहिता के युगपुराण में कहा भी गया है—तब लोहिताक्ष अम्लाट नाम का महाबली धनुभूल से अत्यन्त शक्तिनाम हो उठेगा और पुष्यनाम धारण करेगा। रिक्त नगर को वे सर्वथा आक्रान्त कर लेंगे। वे सभी अर्थ लोलुप और बलवान होंगे। तब वह विदेशी लोहिताक्ष अम्लाट रक्तवर्ण के वस्त्र धारण कर निरीह प्रजा को क्लेश देगा। पूर्वस्थिति को अधोगामी कर वह चतुर्वर्णों को नष्ट कर देगा।[१]

किन्तु बाद में जब भारतीय समाज ने उनको प्रश्रय दिया और उनको मूलतः क्षत्रिय बतलाया जो ब्राह्मणों का सम्पर्क न रहने से वृषलत्व को प्राप्त हुए थे[२] तो उनमें भी श्रम-विभाजन हुआ।[३] धर्मशास्त्रों के अनुसार कृषिकर्म, व्यापारादि वह भी करने लगे। कर्म-के अनुसार इसलिये क्योंकि वह ब्राह्मणों के समाज में प्रविष्ट हुए थे और ब्राह्मणों ने अपने समाज में ग्रहण कर उनको गौरवान्वित

---

१. युगपुराण ६१-६७।

२. शका यवनकाम्मोजास्तास्ताः क्षत्रियजातयः।
वृषलत्वं परिगता ब्राह्मणानामदर्शनात्॥ अनु प० ६८-२१।

३. मगाश्च मागधाश्चैव मानसा मन्दगास्तथा,
**मगाः** ब्राह्मण भूयिष्ठाः **मागधा** क्षत्रियास्तथा
वैश्यास्तु **मानसा** स्तेषं शुद्रस्तेषान्तु **मन्दगाः**। वि०पु० २।४।६६।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh


किया था। सम्भवतः इसीलिये रुद्रदामन प्रथन अपने जूनागढ़ लेख[1] में बार-बार कहता है—धर्मानुरागेन, यथावत्प्राप्तैर्बलिशुल्कभागैः, धर्म्मकीर्त्तिवृद्धयर्थं च अपीडयित्वा कर-विष्टि-प्रणयक्रियाभिः आदि।

(१) कृषि—भारत प्राचीन काल से ही कृषि प्रधान देश रहा है। कृषि की ओर राजा ध्यान भी देता था। राज्याभिषेक के समय उससे इस बात की प्रतिज्ञा करवायी जाती थी कि वह राज्य को कृषि, क्षेम, सम्पन्नता एवं वर्धन का ध्यान रखेगा।[2] धर्मशास्त्रों ने कृषि से होने वाली आय को भी निश्चित कर दिया था। धर्मशास्त्रों में राजा को 'षड्भागभृत कहा गया है। 'भाग' का तात्पर्य यहाँ खेती सम्बन्धी कर से है। भाग उस भूमि को कहते हैं जिस पर जोतने वाले का मालिकाना रहता है और राज्य उससे उसकी सुरक्षा का छठां भाग लेता था, पर कभी-कभी विभिन्न दशाओं में यह 'कर' बढ़ भी जाता था। 'देवमात्रिका' पर कर की मात्रा कम थी। देवमात्रिका उस भूमि को कहते हैं जिसकी सिंचाई प्रकृति स्वयं करती हो। 'अदेवमात्रिका' पर कर की मात्रा राज्य निश्चित करता था क्योंकि इस प्रकार की भूमि की सिंचाई का प्रबन्ध राज्य स्वयं करता था। पेरिप्लस के अनुसार काठियावाड़ और उसके आसपास की भूमि में गेहूँ, धान, गन्ना आदि की फसल हुआ करती थी।[3] गेहूँ उनका मुख्य खाद्य-पदार्थ था।[4] फिर वे ऐसे स्थानों में बसे भी थे जहाँ गेहूँ की पैदावार बहुत होती थी।

---

१. एपि० इं० ८।४२ आगे।

२. इयं ते राट्।....यन्तासि यमनो ध्रुवो सि धरुणः।
कृष्यै त्वा क्षेमाय त्वा रय्यै त्वा पोषाय त्वा ॥शतपथ ५।२।१।२५।

३. कं० हि०इं० २।४३१।

४. बाह्लीकाः पह्लवाश्चीनाः शूलीका यवनाः शकाः
मांसगोधूममाध्वीकशस्त्रवैश्वानरौचिताः॥ चिकित्सा स्थान ३ ०।३१६।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh


(२) शिल्प—कृषि के बाद आर्थिक जीवन का आधार शिल्प था। शिल्प का तात्पर्य यहाँ उद्योगों से है। प्रायः बड़े-बड़े शिल्प राज्य के हाथ में होते थे। उनका संचालन राजकीय विभागों द्वारा होता था। देश के आर्थिक शासन के हेतु राज्य को उनसे शिल्प-सम्बन्धी प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त होता था और साथ ही उनसे राज्य की आय भी बढ़ती थी। महाभारत में कहा भी गया है :

'व्यापारियों की उत्पादन-शक्ति को सदा प्रोत्साहित करते रहना चाहिये। वे लोग राज्य को बलवान बनाते हैं, कृषि की वृद्धि करते हैं और व्यापार बढ़ाते हैं। इसीलिए बुद्धिमान राजा उनके साथ बहुत ही दया और प्रीति का व्यवहार करते हैं।....राज्य में व्यापारियों और वणिकों से बढ़कर और कोई सम्पत्ति नहीं होती।[१]

चमड़ा और फर पश्चिमोत्तर भारत का मुख्य उद्योग था।[२] यदि शकों के वेषभूषा पर ध्यान दिया जाय तो ज्ञात होगा कि यह उद्योग उस काल खूब फला-फूला होगा। वे लम्बा ओवरकोट पहनते थे जो ठीक आजकल के मार्निंग ड्रेस की तरह होते थे जिस पर फर लगा होता था। पैर तथा कटि-प्रदेश को ढकने के लिये वे लम्बा जूता और शलवार पहनते थे।[३]

वस्त्र-उद्योग भी था। वंग, पुण्ड्र, वाराणसी, मगध, मदुरा, अपरान्त, कलिंग, वत्स, मैसूर आदि इस उद्योग के मुख्य केन्द्र थे।[४] इस उद्योग में अधिकतर जुलाहे लगे हुए थे जिनको 'कोलीक'[५] कहा जाता था। मुख्य उद्योगों में आकर तथा धातु उद्योग भी थे। इससे

---

१. महाभारत १२।८७।३८-४०।
२. महाभारत २।२८।१६, २।४६।१६।
३. मे० आर्के० सर्वे इं० ३४।५।
४. कं० हि० इं० २।४३३।
५. एपि० इं० ८।१२।८२ आगे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh


मूल्यवान, हीरे-ज़वाहरातों की प्राप्ति होती थी। रुद्रदामन प्रथम का कोश कानक-रजत-वज्र-वैडूर्य आदि रत्नों से भरा था।[१] पेरिप्लस के अनुसार भारत का लौह और इस्पात अपती धातु की किस्म और मजबूती के लिये मशहूर होने के कारण काठियावाड़ और उसके आस-पास के बंदर से दूर पूर्वी अफ्रीका को जाया करते थे।[२] लौह और इस्पात उद्योग लोहवर्ण (=लोहकार, लोहार) के हाथों में था।[३]

(३) वाणिज्य एवं व्यापार—देश को विभिन्न प्रदेशों और नगरों से मिलाने वाली सड़कें और मार्ग बने हुए थे। दक्षिण भारत में पैठन, नगर, नासिक, जुन्नर, कर्हाटक (करहाड) आदि नगर व्यापार के प्रसिद्ध केन्द्र थे। इसके अतिरिक्त उत्तर भारत में उज्जयिनी, मथुरा, कौशाम्बी आदि भी व्यापार के केन्द्र थे। व्यापारियों को कई नामों से जाना जाता था। यथा-(१) नैगम[४] (२) सार्थवाह (३) वाणिज्य (व्यवसायी)[५] (४) वणिक (व्यापारी) (५) वैदेहक आदि।

व्यापार खूब चलता था। पश्चिम के देशों से समुद्री व्यापार भी होता था। पश्चिम तट के प्रसिद्ध बंदरगाह भड़ौंच, सोपारा, कल्याण आदि थे जहाँ से जहाज पश्चिमी देशों के लिए रवाना होते थे और बाहर से जहाज आकर ठहरते थे। सोपारा जिला नहपान के अधिकार में था और उसका शासक कोई 'संदने' था।[६] इसी काल व्यापार-सम्बन्धी एक पुस्तक लिखी गयी (पेरिप्लस आफ दि रीथ्रियन सी) जिसमें वाणिज्य की वस्तुओं का उल्लेख किया गया है।[७] इस पुस्तक

१. एपि० इ० ८।४२ आगे।
२. कं० हि० इं० २।४३४।
३. इं० क० १२।८२-८७।
४. एपि० इं० ८।१२।८२ आगे।
५. भावनगर अभिलेख, पृ० २३।
६. इं० ए० १९१९ पृष्ठ ८२-८३।
७. वही ८।१०७ आगे।

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh 

के आधार पर पश्चिमी देशों को यूरोप, अफ्रीका और पश्चिमी एशिया आदि को भारत से हाथी दांत के सामान, रेशमी वस्त्र, मसाले, हीरे-जवाहरात जाते थे और वहाँ से सुर-सुंदरियाँ, तेल-फुलेल और उत्तम किस्म के वस्त्र आते थे।

(४) श्रेणियां—मौर्य युग के समान इस काल में भी आर्थिक जीवन का आधार 'श्रेणियां' थी। शिल्पी लोग श्रेणियों में संगठित थे और इसी प्रकार व्यापारी भी। इस युग के अनेक शिला-लेखों में इन श्रेणियों का उल्लेख किया गया है। उनसे उस काल के आर्थिक जीवन पर प्रकाश पड़ता है। ऐसे लेखों में नासिक का गुहा लेख-सिद्धी विशेष महत्त्व का है। बयालीसवें वर्ष में, वैशाख मास में राजा क्षहरात क्षत्रप नहपान के जामाता दीय पुत्र उषवदात ने यह गुहामंदिर चतुर्दिश संघ को अर्पण किया और उसने अक्षयनीवी तीन हज़ार कार्षापण चतुर्दिश संघ को दिये, जो इस गुहा में रहने वालों का कपड़े का खर्च और विशेष महीनों में मासिक वृत्ति के लिये होगा, और ये कार्षापण गोवर्धन में रहने वाली श्रेणियों के पास जमा किये गये। कोलियों के निकाय में दो हज़ार, एक फी सदी सूद पर, दूसरे कोलिक निकाय के पास, एक हज़ार, पौन की सदी सूद पर। और ये कार्षापण लौटाये नहीं जायेंगे, केवल उनका सूद लिया जायेगा। इनमें से जो एक फ़ी सदी सूद पर दो हज़ार कार्षापण रखे गये हैं, उनसे मेरे गुहामंदिर में रहने वाले बीस भिक्षुओं में से प्रत्येक को बारह चीवर दिये जायेंगे और जो पौन फी सदी पर एक हज़ार कार्षापण है, उनसे कुशनमूल का खर्च चलेगा। कापुर प्रदेश में स्थित चितलद्रुग गाँव से नारियल के ८००० पौधे भी लिये गये। यह सब निगम सभा में सुनाया गया, और फलककार(लेखा रखने के दफ्तर) में चरित्र के अनुसार निबद्ध किया गया।[१]

---

१. एपि० इं० ८।१२।८२।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh


एक ही वस्तु के व्यापारी अथवा जाति के लोग 'श्रेणियां' बनाकर रहते थे। कुम्हार[१], तेली[२], जुलाहे[३] 'नवकर्मिक[४], लोहार[५] आदि की श्रेणियां थीं।

श्रेणियां बैंक का भी काम करती थीं।[६] इनके पास अक्षयनीवी (मूलधन) रख दिया जाता था। वह कभी क्षय नहीं होता था। उसके ब्याज ही से काम लिया जाता था। ये श्रेणियां जहाँ अपने व्यवसाय का संगठित रूप से संचालन करती थीं वहाँ दूसरे लोगों का रुपया भी धरोहर के रूप में रख कर उस पर सूद देती थीं। उनकी स्थिति समाज में इतनी ऊँची और सम्पानस्पद थी कि उनके पास रुपया भी जमा होता था, जिसे फिर लौटाया नहीं जाता था, जिसका सिर्फ सूद ही सदा के लिये किसी धर्मकार्य में लगता था। यही कार्य आजकल ट्रस्टी रूप में बैंक करते हैं। नगर सभा (निगम) में इस प्रकार की धरोहर की बाकायदा निबद्ध, चरित्र की तरह ( रजिस्टर्ड ) कराया जाता था।

(५) **श्रेणियों का संगठन और उनका कार्य**—राष्ट्र संगठन की दृष्टि से श्रेणियों का बहुत महत्त्व था। इसके प्रधान या सभापति को 'श्रेष्ठिन' कहते थे। मानव धर्मशास्त्र में जाति, जानपद और श्रेणी के नियम या कानून मान्य किये हैं।[७] याज्ञवल्क्य ने ऐसे लोगों को दण्ड देने का विधान भी किया है जो समूह के शुभचिन्तकों के

---

१. लूडर्स लिस्ट नं० ११३७।

२. एपि० इं० १।१६०।

३. एपि इं० ८।१२।८२।

४. इं० क० ६।४२१-४२८।

५. इं० क० १२।८२-८७।

६. वही।

७. जातिजानपदान्धर्म्माञ्श्रेणीर्धार्म्मश्च धर्म्मवित्।
समीक्ष्य कुलधर्माश्च स्वधर्मं प्रतिपादयेत्॥ ८।४१।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

निश्चय के विरुद्ध काम करते हों ।[१] श्रेणी अथवा नैगम का अपना निजी अधिवेशन भवन और कार्यालय होता था जिसे 'सभा' कहते थे ।[२] एक स्थान पर यह उल्लेख मिलता है कि धनवान और उदार व्यापारी ने नैगम सभा के अधिवेशन में यह लिखवाया था कि गौवर्धन नगर के कुछ श्रेणियों के पास मेरा जो धन है, वह अमुक-अमुक दान कार्यों में लगाया जाय। इस वाक्य का अनुवाद सेनार्ट ने इस प्रकार किया है—यह सब निगम सभा के कार्यालय में नियम के अनुसार लिखा दिया गया है और इसकी रजिस्ट्री करा दी गयी है।[३]

उपर्युक्त उद्धरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस सभा में एक लेखक या रजिस्ट्रार भी हुआ करता था, वह जो लेख प्रमाण स्वरूप उपस्थित करता था सर्वोत्कृष्ट प्रमाण समझा जाता था।

न्याय या निर्णय का काम भी श्रेणियाँ करती थी । मानव धर्म-शास्त्र में उन लोगों के लिये दण्ड का विधान है जो सामूहिक संस्थाओं के निश्चयों अथवा समयों के विरुद्ध आचरण करते थे ।[४] इनके निर्णयों का पालन होता था ।[५] यादि वे राजा के बनाये हुए नियमों या धर्मों के विरुद्ध न हों ।[६]

---

१. वीरमित्रोदय पृ० १७६ ।

२. हिन्दू पोलिटी, डा० जायसवाल, § २५६ ।

३. एपि० इं० ८।१२।८२ ।

गोंवर्धन-वाथवासु श्रेणिसु कोलीकानिकाये २००० वृधि पडिक-शत....

एत च सर्व स्थावित निगमसमाय निवध च फलकवारे चरित्रोति ।

४. मनु० ८।२१८-२२१ ।

५. देशस्थित्यानुमानेन वा ।

क्रियते निर्णयस्तत्र व्यवहारस्तु वाध्यते ॥

वीरमित्रोदय पृ० १२० में उद्धृत

६. याज्ञवल्क्य संहिता २।१८६ ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh


धर्म-स्थान तथा सार्वजनिक स्थान भी उनके अधिकार में होते थे। वे मंदिरों की तथा अन्य पवित्र स्थानों की देख-रेख करते थे। इस प्रकार की इमारतों की वे मरम्मत भी कराते थे।[१]

(६) सिक्के—व्यवसाय एवं जन-जीवन में सिक्कों का महत्त्व लोग समझने लगे थे। लेनदेन के कार्यों में सिक्कों का प्रचलन होने लगा था। नहपान के नासिक गुहाभिलेख[२] में कार्षपण शब्द का उल्लेख हुआ। कार्षापण सिक्के को कहा गया है। ये दो तरह के होते थे—तांबे के और चाँदी के। यहाँ चाँदी के कार्षापण सिक्कों से ही मतलब है।[३] सोने कि सिक्के सुवर्ण कहे जाते थे। ३५ कार्षापणों का एक सुवर्ण होता था।[४]

शककालीन आर्थिक जीवन का अध्ययन करने से विदित होता है कि वे भारतीय अर्थचिन्तकों के विचारों से प्राभावित थे। सम्भवतः इसीलिए रुद्रदामन प्रथम को सुदर्शन झील के मरम्मत कराने में अपने कोष से धन व्यय करना पड़ा था क्योंकि उस झील से सिंचाई का भी काम लिया जाता रहा होगा जिस पर 'कर' की मात्रा राज्य निश्चित करता था। ऐसी दशा में उसकी मरम्मत के लिये प्रजा से अनुग्रह प्राप्त करना मुश्किल होता था। सम्भवतः इसीलिये रुद्रदामन के कर्म सचिव और मतिसचिव, उस ताल के मरम्मत के सम्बन्ध में उसके द्वारा जनता से आर्थिक सहायता की अपील के प्रश्न पर,

---

१. धर्मकार्यमपि संभूय कार्यमित्युक्तं तेनैव।
सभाप्रपादेवगृहतटाकारामसंस्कृतिः॥
वीरमित्रोदय में बृहस्पति पृ० ४२५॥
इस सम्बन्ध में अभिलेख भी उद्धरणीय हैं। यथा एपि० इं० ८।८२, ८।८८, आर्के० सर्वे वे० इं० ४-जुन्नर अभिलेख।

२. एपि० इं० ८।१२।८२।

३. इं० ए०, १९१९, पृ० ८१।

४. वही।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh



उसके विरुद्ध हो गये थे। यही कारण है कि उसको अपने कोष से धन व्यय कर उस ताल को बनवाना पड़ा।

शककालीन आर्थिक जीवन पर इस प्रकार यदि हम एक सम्यक दृष्टि डालें तो भारतीय आर्थिक जीवन और शककालीन आर्थिक जीवन में कोई भेद नजर नहीं आयेगा। यदि अन्तर कोई नजर आता है तो वह नामकरण का है जो कि केवल सहूलियत के लिए किया है जिसको हटाया बढ़ाया जा सकता है। ऐसा केवल काल-विशेष को दृष्टि में रखकर किया गया है। 'शककालीन' निकाल देने से वह शुद्ध भारतीय हो जाता है। इस प्रकार 'शककालीन आर्थिक जीवन' में हम भारतीय आर्थिक जीवन को ही परिलक्षित करते हैं। और वह इसीलिये क्योंकि ब्राह्मणों का पुनः सम्पर्क उनको मिला था जिससे उनका वृषलत्व जाता रहा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

# धार्मिक स्थिति

पृष्ठभूमि—पूर्व वैदिक काल का वह धर्म जिसमें मानव अपने इष्ट देव को प्रार्थना और स्तुति करके ही रिझा लेता था कालान्तर में ब्राह्मण कर्मकाण्ड और रूढ़िवादिता के कारण दुरुह हो गया। इस अवस्था में ब्राह्मणों का दबदबा बढ़ा क्योंकि वे ही अर्थ के जानकार माने गये। उनका गौरव देवताओं का सा हो गया, वे 'भूदेव' कहे जाने लगे। इन 'भूदेवों' ने यज्ञों की एक शृंखला बांध दी, परिमाण भी बढ़ गया। इनकी अवधि कुछ दिनों से लेकर वर्षों तक की होने लगी। पुरोहित अपने सहायकों के साथ यज्ञ-मण्डप में विधि-क्रियाओं की देख-रेख करने लगे। होतृ, उद्गातृ, अध्वर्यु और ब्रह्मन् उनमें मुख्य थे। धर्मभीरु जनता उन पेचीदियों को क्या समझती जिनमें से एक में भी किंचितमात्र त्रुटि से उसके लिये अनंत पारलौकिक दण्ड-यन्त्रणाओं का विधान था। उसने अपने को पूर्णतया ब्राह्मणों के हाथ में डाल दिया। उसने अपना पुरुषार्थ, साहस, आत्मविश्वास और व्यक्तित्व खो डाला। वस्तुतः धर्म की आत्मा इसके नीचे दब गयी थी और नैतिक विकास का मार्ग अवरुद्ध हो गया था। अतएव ऐसे धर्म के विरोध में एक सीधे-सादे, स्वाभाविक और सर्वसुलभ धर्म की खोज स्वभावतः चल पड़ी।

उत्तर वैदिक काल के धर्म से प्रतिक्रिया उसी युग में लिखे आरण्यक और उपनिषद् ग्रन्थों में शुरू हो गयी थी। उपनिषदों ने वेदों के प्रमाण के बदले अनुभव, व्यक्तिगत ईश्वर के स्थान में अमूर्त और अनिर्वचनीय ब्रह्म और यज्ञों की जगह नैतिक आचरण पर बल दिया। परन्तु उपनिषदों की शैली दार्शनिक थी, जो जनसाधारण के लिये सुगम न थी; उनकी नीति समझौते और समन्वय की थी, अतएव

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh



परंपरागत धर्म का जोरदार विरोध नहीं हो सका। किन्तु उपनिषदों के बाहर कई एक सम्प्रदाय हुए जो प्राचीन धर्म के कड़े आलोचक और उग्र तथा क्रान्तिकारी विचारों के प्रवर्तक थे। इनमें सबसे पहले चार्वाकों का उल्लेख किया जा सकता है जो वैदिक प्रमाण और कर्म-काण्ड के घोर विरोधी, भौतिक और भोगवादी थे। इसके अतिरिक्त ईश्वर-मोक्ष-मार्ग-संबंधी विभिन्न विचार वाले, नास्तिक, संदेहवादी भौतिक, भोगवादी, तपोमार्गी आदि सम्प्रदायों का उदय उत्तर वैदिक काल से प्रारंभ होकर जनपदों के समय तक होता रहा। इन सम्प्रदायों ने बौद्धिक और नैतिक जगत में काफी उथल-पुथल मचाया। इन सब के अंत में ईसा पूर्व छठी शती में दो ऐसे सम्प्रदायों का उदय हुआ जो पहले के सम्प्रदायों से अधिक स्पष्ट, संघटित और स्थायी हुए। ये श्रमण सम्प्रदाय थे। इन सम्प्रदायों ने जन-बोली में अपने धर्म का प्रचार किया। फलतः लोगों का ध्यान इधर आकृष्ट हुआ। परिणाम स्वरूप अधिकाधिक लोग श्रमण-धर्मावलम्बी होने लगे। सम्राटों ने भी इसको प्रश्रय दिया। अशोक के काल में तो बौद्ध धर्म अपने देश की चाहार-दीवारी लांघकर दूसरे देशों में प्रवेश कर गयी किन्तु अशोक मौर्य के उत्तराधिकारी अयोग्य एवं धर्म के नाम पर अत्याचार करने वाले निकले। भिक्षु संघ भी ऐश्वर्यशाली हो गया था। सर्वत्र विशाल वैभवपूर्ण विहारों की स्थापना हो गयी थी जिनमें बौद्ध भिक्षु बड़े आराम का जीवन व्यतीत करते थे। मनुष्यमात्र की सेवा करने वाले, भिक्षु-वृत्ति से दैनिक भोजन प्राप्त करने वाले और निरंतर घूम-घूमकर जनता को कल्याण के मार्ग का उपदेश करने वाले बौद्ध भिक्षुओं का स्थान अब सम्राटों के आश्रय में सब प्रकार का सुख भोगने वाले भिक्षुओं ने ले लिया था। वैदिक सम्प्रदाय में इसकी प्रतिक्रिया प्रारंभ हो गयी थी। इस काल बहुत से दर्शन ग्रन्थों का पुनर्निर्माण हुआ। गाथा और नाराशंसियाँ फिर से लिखी गयीं। संस्कृत को पुनरुज्जीवित करने के लिये कात्यायन और पतंजलि प्रभृत

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh


विद्वान पाणिनि के व्याकरण पर भाष्य लिखे।

किन्तु यवन-शक पहलवादि आक्रमणों ने उस इतिहास को जो शुंग-काल लिखने जा रहा था मिटा दिया। ब्राह्मणों को उत्तरी भारत छोड़ दकन के सातवाहनों की शरण में जाना पड़ा।

**बौद्ध धर्म**—वैदिक प्रतिक्रिया के काल में श्रमणों (बौद्धों) को पददलित किया गया।[१] श्रमणों ने जिनमें जाति-पांति और वर्ग-भेद का विचार नहीं था वैदिक मार्गियों से बदला लेने की दृष्टि से विदेशियों को 'धर्ममीत'[२] कहकर अपनी ओर मिलाया। विदेशी आक्रमणकारियों ने जिन्हें ब्राह्मण धर्म में कोई स्थान नहीं मिल सका था पहले श्रमण धर्म का ही आश्रय ग्रहण किया। भारत में शकों का पहला शासक बौद्ध ही था।[३] तक्षशिला में 'मोग' के क्षत्रप बौद्ध थे।

मथुरा के क्षत्रप सर्वास्तिवादी बौद्ध थे।[४] महाक्षत्रप रेजुबुल की अग्रमहिषी ने सर्वास्तिवादियों के लिये स्तूप और संघराम का निर्माण, करवाया था[५]। सर्वास्तिवाद थेरवादी शाखा थी। तिब्बती अनुश्रुति के अनुसार इस पंथ का संस्थापक राहुलभद्र था।[६] इसका प्राचीन केन्द्र मथुरा थी। बाद में यह गंधार और कश्मीर भी गया। पूरे उत्तर भारत में इसका काफी प्रचार था और अशोक एवं कनिष्क के कालों में तो इसका और प्रभाव बढ़ा।

---

१. दिव्यावदान, कावेल और नील का संस्करण, पृ० ४३४-३४-यो मे श्रमणशिरो दास्यंति तस्याहं दीनारशतं दास्यामि।

२. युगपुराण, धर्ममीत तमा-वृद्धा जनं भोक्ष्यन्ति निर्भयाः।

३. ज० रा० ए० सो०, १९१४, पृ० ७९३।

४. एपि० इं० ४।५५ (भगवत शकमुणिस शरिरं प्रतिथवेति संघरमं च सर्वबुधन पुयए)

५. एपि० इं० ९।१४१ (थुव च संघरम च चतु-दिश्रस सघस सर्वास्तिवत्रन प रग्रहे)

६. दि एज आफ इंपीरियल यूनिटी, पृ० ३८०।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh


यहाँ पर इस बात का उल्लेख कर देना अनुचित न होगा कि इस काल का बौद्ध धर्म प्राचीन बौद्ध धर्म नहीं रह गया था। ईसवी पूर्व द्वितीय शती में जो वैदिक पुनर्जागरण (आन्दोलन) हुआ था उसमें वैदिक धर्मों ने बौद्ध और जैन धर्म की बहुत सी अच्छाइयों को आत्मसात कर लिया था। बौद्ध विचारों का प्रभाव इस काल के दर्शनों और धार्मिक विश्वासों पर भी पड़ा क्योंकि जिस प्रकार बौद्ध, सृष्टि के कर्त्ता के रूप में, किसी ईश्वर को नहीं मानते, उसी प्रकार अन्य भारतीय दर्शन भी ईश्वर को सृष्टि-कर्त्ता के रूप में नहीं मानते। किन्तु बौद्ध जहाँ ईश्वर की सत्ता को मानते ही नहीं वहाँ अन्य भारतीय दर्शन ईश्वर की सत्ता से पूर्णतः मुक्त नहीं हो सके हैं। सांख्य-योग तथा मीमांसा ईश्वर-कतृत्व में तो विश्वास नहीं करते, परन्तु उसकी सत्ता में विश्वास करते हैं।[१]

धार्मिक क्षेत्र में भी इसी तरह परिवर्तन हुआ। वैदिक धर्म में प्रकृति की विविध शक्तियों के रूप में ईश्वर की पूजा की जाती थी, पर अब उनका स्थान उन महापुरुषों ने ले लिया जिनका कि सर्व-साधारण में अपने लोकोत्तर गुणों के कारण अनुपम आदर था। शुंग-काल में जिस सनातन-वैदिक धर्म का पुनरुद्धार हुआ, उसके उपास्य देव वासुदेव, संकर्षण और शिव थे। बौद्ध और जैन धर्मों में जो स्थान बोधिसत्वों और तीर्थंकरों का था, वही स्थान इस सनातन धर्म में इन महापुरुषों का हुआ। इन धर्मों के अच्छे गुणों को अपना लेने से वैदिक धर्म का प्रभाव बढ़ गया था। फलतः हम कई विदेशियों को वैदिक धर्म में दीक्षित पाते हैं। हेलियोदोर वैष्णव हो गया था।[२] इस प्रकार बौद्ध अपना प्रभाव खो रहे थे। इसका उन्हें दुःख था। अपनी खोई हुई कीर्ति को पुनः प्राप्त करने लिये वे विचार-विमर्श

---

१. न्या० सू० ४। १। २०।

२. डी० सी० सरकार, सिलेक्ट इंस्क्रृप्शंस, १। ९०-९१।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh



करने लग गये थे। सर्वास्तिवादियों (थेरवादियों) को अपने विचारों में परिवर्तन करना पड़ा। सर्वास्तिवादी अधिकतर शुष्क-सिद्धान्तपरक थे। "तर्क और दर्शन जन-विश्वास से दूर होता है। जनता अपने उपास्य के व्यक्तित्व का अवलोकन साकार रूप में करना ज्यादा पसन्द करती है।" इस तथ्य को सर्वास्तिवादियों ने समझा।[१] परिणामस्वरूप बुद्ध की अनेकानेक उपास्य मूर्तियाँ कोरी जाने लगीं।

भिक्षु संघ में यह मतभेद बुद्ध की मृत्यु के कुछ ही कालोपरान्त प्रारंभ हो गया था। वह भिक्षु संघ जिसकी स्थापना बुद्ध ने एक संघठन के रूप में की थी अशोक के काल तक आते-आते १८ भागों में बँट गया। इसमें दो दल थे—महासांघिक और थेरवादी। थेरवादी पाठेय्यक कहे गये और महासांघिक प्राचीनक।[२] द्वितीय महासंगीति में प्राचीनक भिक्षु अधर्मवादी ओर पाठेय्यक धर्मवादी निश्चित किये गये। भिक्षु अब संघ के बाहर भी रह सकते थे। तृतीय बौद्ध संगीति में इस अनुशासनहीनता पर रोक लगाया गया। राजा अशोक मौर्य थेरवादी (पाठेय्यक) विचारों का था। स्वयं उसने अपने शिला-लेख में घोषणा किया कि जो भिक्षु और भिक्षुणि संघ के नियमों का पालन नहीं करेंगे, उनको भिक्षु संघ से निष्कासित कर दिया जायेगा।[३]

---

१. महायान का जन्म होने पर सर्वास्तिवादियों को ही हीनयानी कहा जाने लगा था। बाद में सर्वास्तिवादी महायानी हो जाते हैं। चतुर्थ महासंगीति के बहुत से आचार्य पहले सर्वास्तिवादी थे, बाद में महायानी हो गये। वसुबंधु पहले सर्वास्तिवादी थे बाद में महायानी हुए; अश्वघोष और असंग भी पहले सर्वास्ति-वादी थे।

२. भरतसिंह उपाध्याय, बौद्ध दर्शन तथा अन्य भारतीय दर्शन, पृ० ५४६।

३. ए चुंखो भिखू वा भिखूनि संघं भाखति से ओदातानि दुसानि संधापयिया आनावाससि आवासयिये। देखिये, सारनाथ स्तंभ लेख।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh



किन्तु यह मतभेद बढ़ता ही गया। एक ही संघाराम में कई मतावलम्बी रहते थे जो भिन्न-भिन्न नियमों का पालन करते थे। हीनयानियों और सर्वास्तिवादियों की दृष्टि में जो अनुचित था वह महायानियों और महासांघिकों की दृष्टि में उचित था। यथा हीनयानी दोपहर के बाद के भोजन को पसन्द नहीं करते, सोना-माला-फूल का अपने लिये उपयोग वे वर्ज्य समझते थे, परन्तु महासांघिक इसको उचित समझते थे। इस प्रकार एक ही संघ में कई मतावलम्बी रहते थे और यदि कोई भिक्षु-संघ को दान करना चाहता था तो वह जिस मतावलम्बी को दान देना चाहता उसका नाम भी उल्लेख करता था। इसके कतिपय उदाहरण शक अभिलेखों में मिलते हैं। शक रंजुबुल की अग्रमहिषी ने एक स्तूप और संघाराम को सर्वास्तिवादियों को दान में दिया था[१]।

ब्राह्मण धर्म के भक्तिवाद का स्पष्ट प्रभाव इस काल में दृष्टि-गोचर होता है। हीनयान जो कि ज्ञानप्रधान मार्ग था उसके स्थान पर महायान (भक्तिमार्ग) का प्रादुर्भाव हुआ। साधारण जनता के मस्तिष्क में भक्ति पहले ज्ञान बाद में प्रवेश करती है। बौद्ध मूर्तियों के अभ्युदय का रहस्य इसी भक्तिवाद के प्रचुर प्रचार में अंतर्हित है।

प्रश्न हो सकता है कि बुद्ध-प्रतिमा को पत्थर पर क्यों कोरा गया जब कि बुद्ध ने अपनी मूर्ति-पूजे जाने का विरोध किया था। इस संबंध में यह कहा जा सकता है कि इस काल तक बौद्ध भिक्षुओं में बहुत परिवर्तन हो चला था—वे अब श्रमण नहीं रहे थे। अब वे मठों और विहारों ही में रहते, घूम-घूमकर सेवा करने की भावना उनसे दूर होने लगी थी—वे विलासी हो चले थे। ब्राह्मणों को अवसर मिला। उन्होंने एक आन्दोलन किया। जिसमें भिक्षु-जीवन के विरुद्ध भावना को उभाड़ा गया।

---

१. एपि० ई० ६। १४१।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh


आश्रम व्यवस्था प्राचीन आर्यों के जीवन का एक महत्त्वपूर्ण अंग थी, परन्तु जैन और बौद्ध संप्रदायों के प्रादुर्भाव से यह व्यवस्था विशृंखलित हो गयी—युवा, वृद्ध, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सब प्रकार के लोग भिक्षु बनने लगे थे। इन्हें अपनी आजीविका के लिये स्वयं परिश्रम करने की कोई आवश्यकता नहीं पड़ती थी, क्योंकि धनी और राजा लोग इनके पालन पोषण के लिये धन को पानी की तरह बहाते थे। इसका इसी से पता चल जाता है जब अशोक के आज्ञा देने पर भी उसके मंत्रियों ने बौद्ध भिक्षुओं को और अधिक दान देना अस्वीकृत कर दिया था।[१] फलतः भिक्षु विलासी होने लगे। वैदिक धर्मावलम्बी तो अवसर की तलाश में थे ही। उन्होंने गृहस्थाश्रम धर्म का प्रतिपादन किया। गृहस्थाश्रम सब आश्रमों में ऊँचा है, उसीसे सब आश्रमों का पालन होता है, इस विचार पर बल दिया जाने लगा था। मनु ने कहा है, जैसे 'वायु का आश्रय पाकर सब जन्तु जीते हैं, उसी प्रकार गृहस्थ का आश्रय पाकर सब आश्रमों का गुजारा चलता है।[२] मनु के अनुसार एक आश्रम से क्रमशः दूसरे आश्रम में प्रवेश

---

१. दिव्यावदान, पृ० ४३० और आगे। सम्राट अपनी भूमि अथवा राष्ट्र को छोड़कर बाकी सब कुछ दे दिया करता था। अर्थात् उसके कोश में व्यय से बचा हुआ और जितना धन होता था, वह सब दान दे दिया करता था। इस प्रकार के किसी विशिष्ट दान का मंत्री लोग विरोध नहीं करते थे, क्योंकि ऐसा दान करने का सम्राट को अधिकार था। परन्तु यदि वह फिर इसी प्रकार कोई और दान करना चाहता था, तो मंत्री लोग उसका विरोध करते थे; और ऐसा ही करना अशोक के मंत्रियों ने अपना कर्तव्य समझा था।

—हिन्दू-राज्य-तंत्र २।२३२ नोट।

२. यथावायुं समाश्रित्य वर्तन्ते सर्वजन्तवः
तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्तन्ते सर्व आश्रमा ॥ मनु० ३।७७।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh


कर, यथासमय होम-हवनादि अनुष्ठानों को सम्पादित कर पूर्ण जितेन्द्रिय होने के बाद परिव्राजक होना चाहिए। इस काल में तीन ऋणों की भी कल्पना की गयी।[१] जब तक इन ऋणों से परित्राण नहीं हो जाता, व्यक्ति मोक्ष नहीं प्राप्त कर सकता था। इस प्रकार गृहस्थाश्रम धर्म का प्रतिपादन किया गया। लोगों का ध्यान भी इधर आकृष्ट हुआ। परिणामस्वरूप हीनयानियों के अर्हत और प्रत्येक बुद्धों का महत्त्व घटने लगा।

इसके अतिरिक्त उन्होंने अब्राह्मण धर्म के प्रवर्त्तकों को अवतार का रूप दिया और उनके धर्म को आत्मसात करना शुरू किया।[२]

ब्राह्मणों के इस सतत प्रहार से हीनयानियों के अर्हत और बुद्धों की प्रतिष्ठा को धक्का लगा। कुण्ठित हो चले बौद्धों के लिये यह चुनौती थी। अतएव इन एकान्तवासी देवताओं के स्थान को महायान के बोधिसत्वों ने ग्रहण किया; जिसका जीवन हो परोपकार, प्राणियों के दुखोपशमन की वेदी पर अर्पित रहता था[३]; जिसकी पूजा-अर्चना कर गृहस्थ भी मुक्ति प्राप्त कर सकता था। इस काल में बौद्ध-देवमण्डल की भी रचना हुई। उनके देवमण्डल में बुद्ध तथा अनेक बोधिसत्वों ने स्थान ग्रहण किया। इसके अतिरिक्त जितने विदेशी थे उनके देवी-देवता भी बौद्ध हो गए और उन लोगों ने भी बौद्ध-देवमण्डल की रचना की।[४] कलान्तर में इसमें भी कर्मकाण्ड का विधान हुआ।

---

१. ऋणानि त्रीण्यपाकृत्य मनो मोक्षे निवेशयेत
अनपाकृत्य मोक्षं तु सेवमानो व्रजत्यधः॥ मनु० ६।३५।

२. देखिये, वराह पुराण ४।२।

३. टी० सुजुकी, आउट लाइन्स आफ महायान बुद्धिज़्म, पृ० ६२-६५।

४. भरतसिंह उपाध्याय, बौद्ध दर्शन तथा अन्य भारतीय दर्शन, पृ० ५७६।

"पहलव, शक, कुषाण; ग्रीक, पार्थियन और स्कीथियन आदि जातियों के कुछ देवताओं को बोधिसत्व का रूप दे दिया गया है।"

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh


इस प्रकार वह बौद्ध धर्म जो कि ज्ञानप्रधान था और ब्राह्मणों की विलासिता और कर्मकाण्ड का खण्डन करके प्रकाश में आया था कालान्तर में वह भी उसीका शिकार हुआ।[१] वह भी विलासी हो गये थे। ब्राह्मणों के आघात से उनको अपना पुराना चोला छोड़ना पड़ा—ज्ञान की जगह भक्ति का समावेश किया। उनको महायान के रूप में प्रकट होना पड़ा—ब्राह्मण धर्म के अनुरूप बनना पड़ा! यही कारण है कि इस काल में बोधिसत्वों की अनेकानेक मूर्तियां कोरी गयी।

जैन धर्म—बौद्धों की भांति जैनियों का भी इस काल में प्रसार एवं प्रचार हुआ। मथुरा में जैनों के बहुत से अभिलेख एवं अयागपट्ट मिले हैं। यहाँ पाये गये १३२ अभिलेखों की, लूडर की, सूची में ८४ केवल जैन हैं। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि मथुरा में बौद्धों की अपेक्षा जैनियों का अधिक प्रभाव था क्योंकि बौद्धों के वहाँ लूडर की सूची के अनुसार केवल ३३ अभिलेख मिले हैं। इसकी पुष्टि कनिष्क के उस कथन से भी हो जाती है जिसमें उसने भ्रमवश मथुरा में बौद्ध स्तूपों का होना बतलाया है।[२]

मथुरा की भांति उज्जयिनी भी जैनों का केन्द्र था। यदि अशोक के पौत्र संप्रति की कथा में विश्वास किया जाय तो ज्ञात होगा कि उसने जैन धर्म के प्रचार के लिये मिशनरियाँ भी भेजीं।[३] दक्षिण के प्रदेशों में उसने इन मिशनरियों के द्वारा ही धर्म का प्रचार किया। उज्जयिनी और मलावा में जैन धर्म करीब ईसवी पूर्व द्वितीय शती में

---

१. सुबंधु के वासवदत्ता का हाल द्वारा संस्करण, पृ० २९७।
कश्चिन्दौद्धसिद्धान्त-इव क्षपितश्रुतिवचनदर्शनोभवेत।

२. इं० एं० १९०२ पृ० ३८५।

३. दि एज आफ इम्पीरियल यूनिटी, पृ० ४१९।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh


ही पहुँच गया था। पहली शती ईसवी पूर्व में भी जैन धर्म मालवा में फल-फूल रहा था। इसका पता 'कालकाचार्य कथानक' से चलता है। इस कथा के अनुसार कालकाचार्य और उसकी बहन सरस्वती दोनों जैन भिक्षु और भिक्षुणी थे। सरस्वती बड़ी रूपवती थी। उज्जयिनी का राजा उसके रूप पर मुग्ध था। उसने उसको बलात् उठवा लिया। लोगों ने भिक्षुणी को छोड़ देने के लिये समझाया किन्तु विलासी राजा ने सुना-अनसुना कर दिया। जनता ऐसे राजा से कुपित थी, अतएव उसने शकों को (धर्ममीत) कहकर आमंत्रित किया। शकों ने गर्दभिल का नाशकर सुव्यवस्था को पुनर्स्थापित किया।[१]

बाद में ये शक उज्जयिनी से मालवों द्वारा निकाल बाहर किये गये। संभवतः इस काल में जैनियों की वही दशा हुई हो जैसे शुंगों के काल में बौद्धों की हुई थी। उज्जयिनी में जैनों को हम पुनः चष्टन वंश के स्थापित हो जाने पर पाते हैं। जयदामन के पौत्र (दामघसद अथवा रुद्रसिंह प्रथम) का जूनागढ़ अभिलेख[२] एक 'केवली' ज्ञान-प्राप्त व्यक्ति का उल्लेख करता है जो कि जरामरण से मुक्त हो गया है। यह लेख एक गुहा में पाया गया जो कि जैन भिक्षुओं के प्रयोग में आता था जैसा कि उसमें पाये गये विचित्र चिन्हों से मालूम होता है। जैसे स्वास्तिक, भद्रासन, मीनयुगल आदि।[३]

बौद्धों में बोधिसत्वों की भाँति इनमें भी तीर्थंकरों की पूजा होती थी। शक काल की इनकी कितनी ही मूर्तियाँ और आयागपट्ट पाये गये हैं। मूर्ति-पूजा का प्रचलन इनमें पहले ही से था। इसका एक प्राचीन उदाहरण नन्द-काल में मिलता है जब नन्द राजा कलिंग से

---

१. देखिये स्टोरी आफ कालक, नार्मन ब्राउन।

२. एपि० इं० १६। २४१।

तथा पुरमिव केवलि ज्ञान संप्राप्तानां....जरामरण।

३. दि एज आफ इंपीरियल यूनिटी, पृ० ४१६।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh


जैन-मूर्ति को उठा लाया था जिसको बाद में कलिंग पति खारवेल पाटलिपुत्र से उठवा ले गया।[१]

**भक्ति आन्दोलन**—इस काल की महती देन भक्ति आन्दोलन थी जिसने वैदिक और अवैदिक दोनों धर्मों को आन्दोलित किया। जन-विश्वास तर्क और दर्शन से दूर होता है। वह अपने देवता के प्रति श्रद्धा-भक्ति का पूरा आचरण करना चाहता है। पूर्व वैदिक काल में वह अपनी भक्ति और श्रद्धा को देवता की स्तुति और प्रार्थना कर प्रदर्शित करता था। यह स्थिति अधिक दिनों तक नहीं रही। उत्तर वैदिक काल के कर्मकाण्डों ने उसको स्तुति और प्रार्थना करने का अवसर ही नहीं दिया। इस कर्मकाण्ड के नीचे लोगों का आत्मविश्वास जाता रहा और उसके आत्मस्वातंत्र्य की भावना दबने लगी। ईश्वर के नाम पर किये जाने वाले इन कर्मकाण्डों से लोगों को धीरे-धीरे घृणा होने लगी। परिणाम-स्वरूप छठी शती ईसवी पूर्व में अवैदिक आन्दोलन हुए। इस आन्दोलन में ब्राह्मण कर्मकाण्ड के साथ-साथ उनका ईश्वरवाद भी उलट गया। ईश्वर की नयी व्याख्या की गयी। सृष्टि-कर्ता के रूप में इसने ईश्वर को नहीं माना। फिर उसकी पूजा-अर्चना से क्या लाभ? इस संबंध में जैन शास्त्रकारों का कहना है कि ईश्वर की उपासना ईश्वर को प्रसन्न करने के लिये नहीं की जाती अपितु हृदय की, अपने चित्त की शुद्धि के लिये की जाती है। सभी दुःखों के उत्पादक राग-द्वेष-को दूर करने के लिये राग-द्वेष रहित परमात्मा का अवलम्बन लेना परम उपयोगी एवं आवश्यक है।[२]

अवैदिकों के इस आन्दोलन ने वैदिकों (ब्राह्मणों) को आंदोलित कर दिया। उनमें जो पहले से जागरूक थे वे तो सतर्क थे ही अब सब सतर्क हो गये और 'अपौरुषेय' की स्थापना की चिन्ता में लग गए। उन्होंने इस की स्थापना के लिये सामंजस्यवादी नीति को ग्रहण किया। उन्होंने

१. वही, पृ० ४२६।

२. जैन दर्शन, न्या० न्या० मुनि श्रीन्यायविजयजी, पृ० ५४।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh


अवतारों की कल्पना की जिसमें सभी अवैदिक धर्मों को आत्मसात कर लिया और उनके प्रवर्तकों को विष्णु का अवतारी रूप बतलाया[१] एवं भक्ति और साधानामार्ग का प्रचार किया। उनके अनुसार भक्ति ही इस दुःखमय संसार से जीव को मुक्त कराने का एकमात्र साधन है। भक्तवत्सल भगवान की अनुग्रह शक्ति ही जीवों को भवपंक से उद्धार कर सकती है। भगवान से निश्चल रूप से यह प्रार्थना करनी चाहिए कि मैं अपराधी का आलय हूँ, अकिंचन हूँ तथा निराश्रय हूँ। हे भगवान आप ही मुझे उद्धार करने के लिये उपाय बनिये। इस प्रकार वह ईश्वर का शरणागत होता है।[२] यह भक्ति भावना की भिन्नता के कारण भिन्न-भिन्न देवताओं के साथ की जा सकती है।

ईश्वर के शासन में सब बराबर होते हैं, भेदाभेद का प्रश्न वहाँ नहीं रहता। ईश्वर की शरण में जो जायेगा त्राण पायेगा। इस प्रकार की भावना का प्रचार कर और चूँकि अवैदिक धर्मों में विदेशियों को शरण मिली थी और वह विदेशियों का काल था, जो देश में बसते जा रहे थे, ब्राह्मण धर्म में इस प्रकार की व्यवस्था करना अनिवार्य हो गया था। इस प्रकार इस भक्ति आन्दोलन का मुख्य उद्देश्य विदेशियों को धर्म में दीक्षित कर उनमें अहिंसा का प्रचार करना था।

बौद्ध धर्म में इस प्रकार की व्यवस्था नहीं थी। जब साधारण हिन्दू जनता बौद्ध धर्म में दीक्षित हुई तो भक्ति मार्ग से परचे होने के कारण

---

१. मत्स्यः कूर्मो वराहश्च नरसिंहोऽथ वामनः। रामो रामश्च कृष्णश्च बुद्धः कल्की च ते दश। वाराहपुराण ४।२।

२. अहमस्म्यपराधानामालयोऽकिञ्चनोऽगतिः
त्वमेवोपायभूतो मे भवेति प्रार्थना-मतिः।
शरणागतित्युिक्ता सा देवेऽस्मिन् प्रयुज्यताम्॥ अहि० सं० ३७।३१।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh


उसे एक बड़ी कमी का बोध हुआ। ब्राह्मणों ने इनके प्रवर्तकों को पूजना भी प्रारंभ कर दिया था जिससे उनकी प्रसिद्धि को धक्का लगा था। अतएव महायान, हिन्दुओं के भक्तिमार्ग से अनुप्राणित, इसका परिणाम हुआ।

**भागवत धर्म**—मोरा कूप लेख से विदित होता है कि शक-नृपति भागवत धर्मावलम्बी भी थे। मोरा गाँव मथुरा से सात मील की दूरी पर स्थित है। लेख इस प्रकार है—

महाक्षत्रप राजुवुल के पुत्र, स्वामि....भगवत वृष्णी पंचवीरों की प्रतिमा शिला पर कोरी गयी....जो कि तोषा का भव्य अद्वितीय शिला-गृह है....पूजा के पाँच प्रकरण जो कि चमकदार पत्थर के बने थे, बड़े ही सुन्दर....।[१]

डा० जितेन्द्रनाथ बनर्जी ने वायुपुराण के आधार पर इन पंचवीरों को संकर्षण, वासुदेव, प्रद्युम्न, शांब और अनिरुद्ध बतलाया है।[२] यह पंचरात्र अनुश्रुति के बहुत समीप है। और मथुरा, वह तो भागवत मतावलम्बियों का प्राचीन गढ़ ही था। कृष्ण के जीवन का अधिकांश भाग मथुरा ही में व्यतीत हुआ था।

शकों के भागवत धर्मावलम्बी होने का एक दूसरा प्रमाण भी मिलता है। मथुरा में जब शक क्षत्रपों का शासन था, तब वैष्णव धर्म का इस मण्डल में विशेष अभ्युत्थान हुआ। शोडास के सम-

---

१. महाक्षत्रपस राजूवुलस पुत्रस स्वामि....
भगवतां वृष्णीनां पंचवीराणां प्रतिमाः शैलदेवगृ....
यस्तोषायाः शैलं श्रीमद्गृह मतुलम दधसमधार....
आर्चादेशां शैलां पंच ज्वलत इव परम वपुषा....

२. ज० इं० सो० ओ० आर्ट, १९४२ पृ० ६५-६८; इं० हि० कां० १९४४, पृ० ८२-९०।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh


कालीन एक लेख[१] से ज्ञात होता है कि वसु नामक व्यक्ति ने महास्थान में भगवान वासुदेव का एक चतुःशाला मंदिर, तोरण तथा वेदिका (चौकी) की स्थापना की थी। मथुरा में कृष्ण-मंदिर के निर्माण का यह पहला पुरातात्त्विक प्रमाण है।

अब प्रश्न भागवत धर्म के अभ्युदय का उठता है। इसका उत्तर गार्व साहब ने दिया है[२]—कृष्ण संभवतः लड़ाकू और अब्राह्मण जाति के नेता थे जो बुद्ध के बहुत काल पहले हुए थे। वह अपनी जाति के नेता थे, इसलिए नहीं कि वीर थे बल्कि इसलिए कि उन्होंने एक नये धर्म की स्थापना की थी—ऐसे धर्म की जिसका वैदिक अनुश्रुति और एकेश्वरवाद से कोई मेल न था जिसमें मुख्यतया नैतिक उत्थान पर बल दिया जाता था। इस धर्म के अनुयायियों को भागवत कहा गया है। बाद में इसने अन्य नाम भी ग्रहण किये। कृष्ण अपनी जाति में अर्ध-देवता से देवता का रूप धारण करने लगे। ब्राह्मण धर्मानुयायियों ने तब इस धर्म को जो कि नैतिक उत्थान पर बल देता था अपने धर्म में सम्मिलित कर लिया और कृष्ण को विष्णु का अवतारी बतलाया। इस प्रकार ब्राह्मणों ने भागवत धर्म को आत्मसात कर लिया....

श्री रामप्रसाद चन्दा ने इस विद्वान लेखक के कुछ बातों से असहमति जतायी है। वे पूरे भागवत धर्म का ब्राह्मण धर्म में आत्मसातीकरण नहीं मानते।[३] भागवत धर्म की एक शाखा 'पांचरात्र' अब भी अवैदिक थी। अवैदिक अथवा अब्राह्मण 'पांचरात्र' के देवता—संकर्षण, वासुदेव, प्रद्युम्न, शांब और अनिरुद्ध अब भी दस्युओं द्वारा पूजे जाते हैं। इसको मोरा-कूप-लेख प्रमाणित

१. वसुना भगवतो वासुदेवस्य महास्थान....चतुःशालां तोरणं वेदिकाः प्रतिष्ठापितो प्रीतोभवतु वासुदेवः स्वामिस्य महाक्षत्रपस्य शोडासस्य संवर्तयातम्।

२. इनसाइक्लोपीडिया रिलिजन एण्ड इथिक्स, २। ५३५-५३६

३. दि इण्डो-आर्यन रेसेज, १। ४।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh


करता है।[१]

पांचरात्र मत का विशिष्ट निरूपण महाभारत के शांतिपर्व के नारायणीयोपाख्यान (३३४ अध्याय—३५१ अध्याय) में किया गया है। इस संप्रदाय के प्रधान उपास्य देव वासुदेव हैं। वे ही षड्गुणों से विशिष्ट होने के कारण 'भगवत्' शब्द से अभिहित किये जाते हैं।

**शिवोपासना**—शिवोपासना बहुत प्राचीन काल से चली आ रही है। इसका आरंभ वेदों से है और उसी समय से धीरे-धीरे इसका विकास होता आया है। ऋग्वेद में शिव 'रुद्र' थे। उनकी कल्पना प्राकृतिक तत्त्वों के मानवीकरण से की गयी थी। ऋग्वेद के सूक्तों में रुद्र का जो स्वरूप हमें दिखायी पड़ता है उसके कितने पहलू हैं और वे किसके प्रतीक हैं इस विषय को लेकर बहुत से अनुमान लगाये गये हैं। कोई उसे झंझावात का प्रतीक तो कोई विनाशकारी शक्ति का प्रतीक समझता है। अपने इस प्रलयकारी स्वरूप के कारण रुद्र अथर्ववेद में 'महादेव' हो गये, वह पृथ्वी-अंतरिक्षादि में व्यापक बतलाये गये, आकाश-पृथ्वी के ईश समझे गये, भव में सर्वद्रष्टा, सर्वव्यापक, एवं नाशक की भावना की गयी और सवितृ को भी आर्यमान, वरुण, रुद्र और महादेव नाम देकर उसके गुणों का संबंध रुद्र से दिखलाया गया।[२]

रुचि के शृंगारमय प्रिय पदार्थों की ओर सहज व अधिक होने के कारण लोग रुद्र की भयानकता से डरते थे और विष्णु की उपासना को प्रिय समझते थे। इस भावना को दबाने के लिए शैवों द्वारा अथर्वशिरसोपनिषद् प्रस्तुत हुई, उसमें रुद्र को घोषित करना पड़ा—"मैं ही गायत्री हूँ, मैं ही सर्वस्व हूँ।" रुद्र-भक्तों ने भी व्यक्त किया, "जो रुद्र है वही भगवत् है, ब्रह्मदेव है, महादेव है।"[३]

---

१. मे० आर्के० सर्वे इं० ५। १६५-६६।

२. अथर्ववेद ६। ७। ७; ११। २। १०; ११। २। २७; ११। २। २५।

३. अथर्वशिर उपनिषद् १ से ४।

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh 

उस काल के सिक्कों का अनुशीलन करने पर विदित होता है कि उस काल में शिव की अनेकानेक मूर्तियों को कोरा गया। तक्षशिला के शक नृपतियों के सिक्कों पर शिव-पार्वती एवं अन्य देवी-देवताओं की मूर्तियाँ पाई गयी हैं।[१] इसके अतिरिक्त शक राजाओं का नामकरण भी कुछ ऐसा हुआ है जिससे उनके शिवभक्त होने में संदेह ही नहीं रह जाता। रुद्रदामन, रुद्रसिंह आदि कुछ ऐसे ही नाम हैं।

सूर्यपूजा—प्रकृति के देवताओं को आर्यों की भाँति अन्य जातियों ने भी पूजा। भारत में विष्णु अथवा आकाश के प्रकृत सूर्य की पूजा तो निःसन्देह आर्यों ने प्रचलित की, किन्तु उसे मूर्ति बनाकर शकों और कुषाणों ने ही सर्वप्रथम पूजा। इस संबंध में साहित्यिक और पुरातात्त्विक दोनों प्रमाण उपलब्ध हैं। कुषाणकालीन सूर्य की मूर्तियों (उस युग से पूर्व की सूर्य-प्रतिमाएँ भारत में नहीं मिलतीं) का पहनावा मध्यएशियाई है—चोगा, सलवार, ऊँचे घुटनों तक जूते, बगल में कटार। स्पष्ट है कि भारत में सूर्य की मूर्ति-रूप में पूजा शकों ने चलाई और जब यहाँ के ब्राह्मण उसकी पूजा न करा सके तो शक पुरोहितों को भारत में बुलाना पड़ा। पुराणों[२] के अनुसार कृष्णवंशी शांब ने सूर्य का पहिला मंदिर सिंध में बनवाया और उसके लिये उसने शकद्वीप से पूजा के लिये 'मग' नामक ब्राह्मणों को आमंत्रित किया। शक ब्राह्मण ही संभवतः सूर्य-पूजा का विधान करते थे। देवबरणार्क लेख से विदित होता है कि मगधराज बालादित्यदेव ने सूर्यमित्र नामक 'भोजक' ब्राह्मण को सूर्य की पूजा के निमित्त एक गाँव दिया था। बाद में वह राजा अवंतिवर्मन द्वारा भोजक ऋषिमित्र को दान कर दिया गया।

ये शक-नृपति सूर्य-पूजक थे, यह उनके लेख से स्पष्ट है। उन्होंने ऐसे नाम धारण किये थे जो उस देवता के नाम होते थे। प्रमाण-

१. पं० म्यू० कै० १। २६।

२. भविष्य, शांब, वराह आदि।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh


स्वरूप स्वामि जीवदामन का कानखेरा[१] लेख लिया जा सकता है, जिस पर निम्न लेख है—सिद्धं ॥ भगवतस्त्रिदश गण-सेनापतेरजित-सेनस्य स्वामि महासेन महातेज....**सादित्यवीर्य्य** जीवदाम....

आदित्य सूर्य का नाम है। इस प्रकार इस लेख का अर्थ हुआ—सिद्ध। भगवान स्वर्ग के सेनापति, अजेय सेनावाले, स्वामि महासेन के समान महत् तेजवाले सूर्य-तुल्य पराक्रम वाले जीवदाय ( का )....

**कार्तिकेय पूजा**—कार्तिकेय के पिता शिव अथवा अग्नि थे, माता उषा, गंगा, स्वाहा आदि बतलाई गई हैं। कार्तिकेय देवताओं के सेनापति थे। इसीलिए महासेन भी कहे गये। कार्तिकेय की पूजा गुप्त काल तक बहुत लोकप्रिय हो गई थी। श्रीधरवर्मन कार्तिकेय-भक्त था यह उसके लेख से स्पष्ट है।[२]

यद्यपि वह वैदिक प्रतिक्रिया का काल था जिसमें कर्मकाण्डों का विरोध भी हुआ किन्तु सभी कर्मकाण्डों पर रोक लगा दिया गया ऐसी बात न थी। यज्ञ और दान अब भी होते थे। दान कलियुग में धार्मिक जीवन का मुख्य पहलू था।[३] गृहस्थाश्रम पर इस काल बहुत बल भी दिया गया था जिनके दान पर ब्रह्मचारियों की शुश्रुषा होती थी।[४]

किन स्थानों पर दान करना चाहिए और कहाँ दान करने पर कितना पुण्य होता है इस पर भी इस काल विचार किया गया। धर्म-शास्त्रों के अध्ययन से पता चलता है कि घर पर किये गए दान से दश

---

१. एपि० इं० १६। २३२।

२. एपि० इं० १६।२३२।

३. तपः पर कृतयुगे त्रेतायाँ ज्ञानमुच्यते
द्वापरे यज्ञमेवाहुर्दानमेकं कलौ युगे ॥ मनु० १।८६।

४. दानमेव गृहस्थानां शुश्रुषा ब्रह्मचारिणाम्।
हेमाद्रि ( दान पृ० ६ )

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh 

गुना फल मिलता है, गोष्ठियों में दान करने पर शताधिक पुण्य-प्राप्ति होती है और पुण्य तीर्थों पर दान करने से सहस्र गुना फल की प्राप्ति होती है। उससे भी अधिक पुण्य की प्राप्ति तब होती है जब व्यक्ति शिव प्रतिमा के निकट कोई दान करता है।[१] उन तीर्थस्थलों का भी वर्णन किया गया है जहाँ पर दान करने से अधिक पुण्य की प्राप्ति होती है।[२]

पुण्यतीर्थ के रूप में प्रभास का उल्लेख शक अभिलेखों में हुआ है।[३] तीर्थ के रूप में महाभारत में भी इस उल्लेख आया है। 'उदधौ-तीर्थम्' के रूप में इसका उल्लेख हुआ है।[४] नहपान के जामाता उषव-दात ने उस पुण्यस्थली पर ब्राह्मणों को तीन लाख गौवें और १६ गाँव दान में दिये एवं एक लाख ब्राह्मणों को प्रत्येक वर्ष भोजन कराया और आठ ब्राह्मणों का विवाह अपने खर्च से करवाया।[५] महाभारत

---

१. गृहे दशगुणं दानं गोष्ठे चैव शताधिकम्।
पुण्यतीर्थेषु सहस्रमनन्तं शिवसान्निधौ॥ दानमयूख पृ० ८।

२. वाराणसी कुरुक्षेत्र प्रयागः पुष्कराणि च। गंगासमुद्रतीरं च नैमि-षामरकण्टकम् श्रीपर्वतमहाकालं गोकर्णं वेदपर्वतम्। इत्याद्याः कीर्तिता देशाः सुरसिद्धनिषेविताः। सर्वे शिक्षोच्चयाः पुण्या सर्वा नद्यः ससागराः। गोसिद्धमुनिवासाश्च देशाः पुण्याः प्रकीर्तिताः एषु तीर्थेषु यद्दत्तं फलस्यानन्त्य कृद्भवेत।

—हेमाद्रि (दान० पृ० ८३)

३. एपि० इं० ७।१३।५७; ८।१०।७८।

४. सुराष्ट्रेष्वपि वक्ष्यामि पुण्यान्यायतनानि च।
....प्रभासं चोदधौ तीर्थं त्रिदशानां युधिष्ठिर॥
तत्र पिंडारकं नाम तापसाचरितं शिवम।

—इं० एं० १९२५ पृ० ३१

५. एपि० इं० ८।१०।७८।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh


वनपर्व में इस प्रकार का विवाह कराने के महत्त्व को बतलाया गया है। उसके अनुसार जो कन्याओं को ब्राह्मणों को ब्रह्म के रूप में देता है वह भूमि को इन्द्र के समान भोगता है।[१]

इस प्रकार यदि हम इस काल की धार्मिक-स्थिति का उपसहनीय संक्षेप करें तो इसी निष्कर्ष पर पहुँचेगे कि वह काल धार्मिक समन्वयवाद का था जिसमें वैदिक और अवैदिक धर्मों का सम्मिश्रण हुआ तथा दान के महत्त्व को दर्शाया गया।

१. यो ब्राह्मदेयां तु ददाति कन्यां भूमिप्रदानं च करोति विप्रे।
ददाति दानं विधिना च यश्च स लोकमाप्नोति पुरन्दरस्य॥
 वनपर्व १८६।१५।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

# भाषा और साहित्य

शकों के अभिलेखों की भाषा और साहित्य का विस्तार बहुत व्यापक नहीं कहा जा सकता। वस्तुतः साहित्य की दृष्टि से तो किसी विदेशी जाति का साहित्य भारतीय सीमाओं में विशेष स्तुत्य अथवा महत्त्व का नहीं है। इण्डो-ग्रीक, पहलव, कुषाण और शक चारों जातियों के अभिलेख कम या अधिक मात्र में उपलब्ध हैं जिनसे तत्कालीन प्राकृत और संस्कृत भाषा के क्रियाकलाप अथवा विन्यास पर प्रकाश पड़ता है। अधिकतर वह, पहले तीनों राजकुलों के संदर्भ में अत्यन्त सीमित हैं। इण्डो-ग्रीक राजाओं ने तो अभिलेख रूप में उल्लेखनीय साहित्य सिरजा ही नहीं, जो कुछ उनके संबंध का उपलब्ध है प्रायः सारा सिक्कों पर ही है। सिक्कों का निर्माण, धातु की शुद्धता और देवताओं में विश्वास, विशेषकर कुषाणों के सिक्कों पर उत्कीर्ण मध्यएशियाई धर्मों को ध्वनित करने वाले आलेख संस्कृति पर कुछ प्रकाश डालते हैं, पर उनसे इण्डो-ग्रीक सिक्कों के द्विभाषी आलेखों के बावजूद उनका साहित्य की दिशा में विशेष संकेत नहीं है। ऐसा समझा जाता है कि भारतीय भाषा में कुछ शब्द वे छोड़ गए, जैसे—मेला, कलमो, पुस्तक, खलिन, सुरूँगा आदि।[१] पर इनकी संख्या न्यून है।

कुषाणों के अभिलेख से भी भाषा अथवा साहित्य का विशेष निर्देश नहीं होता, क्योंकि पहले तो लेखों की सीमाएँ बड़ी संकुचित हैं, अधिकतर वे पूजनीय मूर्तियों पर लिखी दान संबंधी हैं, और जो हैं भी उन्हें जन-बोली च-हे हम कह लें, पर उनको न शुद्ध संस्कृत कह सकते हैं न प्राकृत, साहित्य तो वे हैं ही नहीं। संस्कृत और प्राकृत

१. ग्रीक्स इन बैक्ट्रिया एण्ड इंडिया, पृ० ३७६-७।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh


दोनों ही उनकी विकृति है।

यही बात शकों के संबंध में निःसंदेह नहीं कही जा सकती। यह सही है कि उनके भी अनेक फुटकल लेख भाषा की दृष्टि से सर्वथा शुद्ध नहीं हैं, पर कम से कम महाक्षत्रप रुद्रदामन प्रथम का लेख अत्यन्त महत्त्व का है, भाषा और साहित्य दोनों दृष्टियों से।

शक जब तक भारत के पश्चिमोत्तर सीमा-प्रदेश में रहे तब तक वहीं की भाषा लिपि का सहारा लिया। भाषा तो उनकी प्राकृत रही पर लिपि खरोष्ठी थी। जैसे-जैसे वे मध्यदेश की ओर बढ़ते गए (भारतीय हृदय के निकट पहुँचते गए) उनकी भाषा और लिपि में भी परिवर्तन होता गया। मथुरा आते-आते उनकी लिपि में परिवर्तन हो जाता है। मथुरा का सिंह शीर्ष लेख इसका अपवाद है। उनकी प्राकृत भाषा अधिकाधिक संस्कृत-मिश्रित होने लगी तथा लिपि भी ब्राह्मी हो गयी। महाराष्ट्र एवं उज्जयिनी के शकों के काल में काफी परिवर्तन हुआ। वह अब प्राकृत न रहकर संस्कृत मिश्रित प्राकृत का रूप धारण कर लेती है। संस्कृत के प्रति उनकी यह निष्ठा इतनी बलवती हुई है कि रुद्रदामन का जूनागढ़ लेख शुद्ध संस्कृत भाषा में लिखा गया।

भाषा और साहित्य के क्षेत्र में समसामयिक प्रवृत्ति को भी जान लेना चाहिए। यदि उस काल की भाषा और साहित्य का अनुशीलन किया जाय तो समसामयिक प्रवृत्ति को जाना जा सकता है। उस काल में भाषा दो तरह की थी—साहित्यिक और बोलचाल की। साहित्यिक भाषा सुगठित होती थी। बोलचाल की भाषा प्राकृत थी, टूटी-फूटी होती थी। इसको सर्वप्रथम लिपिबद्ध पाँचवी शती ईसवी पूर्व में किया गया[1]। इसका मुख्य कारण अवैदिक धर्मों का वैदिक धर्म के विरुद्ध प्रतिक्रिया थी। वैदिक धर्म की भाषा संस्कृत थी, जो

---

१. ज० रा० ए० सो० १८९८ पृ० ३८७।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh


जन-भाषा नहीं थी, पर इन नए सुधारणाओं की भाषा प्राकृत थी, जो जन-भाषा थी। इन्होंने इसको न केवल प्रचार का साधन ही बनाया बल्कि अपने साहित्य का सृजन भी उसमें किया। फलस्वरूप, धर्म-प्रचार के साथ-साथ 'प्राकृत' का भी प्रचार हुआ। यह इतना लोकप्रिय था कि अशोक के काल में यह 'राज्यभाषा' हो गयी। किन्तु इससे यह न समझ लेना चाहिए कि संस्कृत का सर्वथा लोप हो गया। संस्कृत थी। उस काल के कई ग्रन्थ संस्कृत ही में लिखे गए। कौटिल्य का अर्थशास्त्र शुद्ध संस्कृत में है। रामायण और महाभारत के कुछ भाग इसी काल में संपादित हुए।[१] पतंजलि का महाभाष्य इसी काल में लिखा गया। ब्राह्मण धर्म तथा संस्कृति को मानने वाले संस्कृत का ही प्रयोग करते थे। शुंग-काल में संस्कृत को राज्य-भाषा के रूप में पुनः प्रतिस्थापित किया गया। परंतु उसके बाद विदेशियों ने, जिसको कि चातुर्वर्ण्य ( वैदिक धर्म ) में कोई स्थान नहीं मिल सकता था, प्राकृत का ही प्रयोग किया। इस प्रकार विदेशी आक्रमणकारियों के काल में प्राकृत पुनः अपना स्थान ग्रहण कर लेती है। लेकिन भाषा को संस्कृत-गर्भित करने की प्रवृत्ति गयी नहीं थी। प्रथम शती ई० पू० से यह प्रवत्ति स्पष्ट दृष्टिगोचर होने लगती है।[२]

शकों ने अपने लेखों में दो प्रकार की लिपियों का प्रयोग किया है—खरोष्ठी और ब्राह्मी। खरोष्ठी लिपि का प्रयोग काफी बड़े भूभाग में हुआ है—उत्तर में स्वातघाटी से लेकर दक्षिण में सुई-विहार और मोहेंजोदड़ो तक, पूर्व में मथुरा से लेकर पश्चिम में वार्दक और लोहारी तक।[३] इन सभी लेखों की भाषा प्रायः एक ही सी थी।[४]

इसी पश्चिमोत्तर पठान-प्रदेश ( यूसुफजई ) में पाणिनि-व्याडि

१. डा० पाण्डेय; विक्रमादित्य आफ उज्जयिनी; पृ० २००।
२. वही।
३. का० इं० इं०; कोनो; ग्रामेटिकल स्केच, पृ० ९५।
४. वही।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh


आदि व्याकरणाचार्य पैदा हुए थे। तक्षशिला विद्या का केन्द्र थी। सर्वास्तिवादी जो कि संस्कृत का प्रभूत प्रयोग करते थे इस प्रदेश में काफी प्रभावशाली थे।[१] यदि खरोष्ठी अभिलेखों का अनुशीलन किया जाय तो उस पर संस्कृत और मध्यदेशीय तथा शौरसेनी प्राकृत भाषाओं का प्रभाव स्पष्ट दिखायी देगा।[२] मथुरा का सिंह शीर्ष लेख शौरसेनी प्रभाव में है।[३] पतिक का तक्षशिला ताम्रपत्र लेख धम्मपाद के नियमों तथा संस्कृत से प्रभावित दीखता है।[४] नम, नगरे, नवकमिक और उत्तरेण, शकमुणिस, रोहिणिमित्रेण आदि शब्दों का चयन धम्मपाद के नियमों के अनुसार हुआ है, पर उसी में पनेमस, महदनपति, सवबुधन आदि शब्द संस्कृत के अनुसार हैं। इससे पता चलता है कि संस्कृत के नियमों का अनुकरण करने की प्रवृत्ति हो चली थी।[५]

शकों द्वारा प्रयुक्त दूसरी लिपि ब्राह्मी थी। इस लिपि में लिखे गए शकों के प्रारंभिक लेख प्राकृत में ही हैं, परन्तु बाद में चलकर वे संस्कृत मिश्रित हो जाते हैं। उदाहरण के लिए मथुरा के शक-कुल में शोडास के लेख को लिया जा सकता है। अमोहिनी अयागपट्ट प्राकृत में लिखा गया है। परन्तु शोडास के कोषाध्यक्ष (गंजवरेण) का लेख संस्कृत मिश्रित है। इसी प्रकार नहपान का प्रारंभिक लेख प्राकृत में है, बाद में वे संस्कृत मिश्रित हो जाती हैं। इस प्रकार प्राकृत को संस्कृत गर्भित करने की प्रवृत्ति हो चली थी। इस प्रवृत्ति को चष्टन-वंश में राज्याश्रय प्राप्त हुआ। उनके काल में शुद्ध संस्कृत का प्रयोग होने लगा था, जहाँ शुद्ध संस्कृत का प्रयोग नहीं हुआ है,

१. वही।
२. वही० पृ० १०२।
३. वही।
४. वही पृ० १०२-३।
५. वही।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उसकी भाषा संस्कृत मिश्रित प्राकृत हो गयी है। इसके विपरीत सातवाहनों के लेख जो कि ब्राह्मण थे—विदेशी नहीं—प्राकृत भाषा का ही प्रयोग करते थे, परन्तु यह भाषा संस्कृत मिश्रित होती थी इस प्रकार इस काल से संस्कृत भाषा की ओर लोगों की रुझान होने लगी थी। इससे यह मालूम होता है कि जन-साधारण की भाषा प्राकृत थी। सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर यह भी ज्ञात होता है कि साधारण जन की भाषा तो प्राकृत थी, किन्तु उच्च वर्ग साहित्य में संस्कृत का ही प्रयोग करता था।[१]

संस्कृत मिश्रित प्राकृत भाषा को विद्वानों ने 'गाथा संस्कृत' की संज्ञा दी है। मिश्र अथवा 'गाथा संस्कृत' संस्कृत का वह रूप है जो पाणिनि के नियमों के अनुसार नहीं चलता पर प्राकृत व्याकरण के रूपों एवं शब्द-समूह से यत्रतत्र प्रभावित मिलता है। डा० भोलाशंकर व्यास ने इस प्रकार की भाषा के उत्पन्न होने के संबंध में दो कारणों पर प्रकाश डाला है[२]—

(१) "कुछ लेखकों ने किसी मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषा को संस्कृत या साहित्यिक रूप देने की चेष्टा की हो तथा उसमें संस्कृत तत्त्वों की बहुलता भर दी हो।"

(२) "संस्कृत में कई अपाणिनीय देशी प्रयोग स्वभाविक रूप से मिल गए तथा उसका यह रूप पाणिनि संमत न होने के कारण मिश्र संस्कृत बन गया। उदाहरण के लिए बौद्ध मिश्र संस्कृत में हमें 'भिक्षुस्य'[३] जैसे रूप मिलते हैं। यह रूप अपाणिनीय है क्योंकि 'भिक्षु' शब्द के षष्ठी एकवचन में 'भिक्षो;' रूप होना चाहिए। संभवतः यह रूप रामस्य, देवस्य आदि के सादृश्य पर बना लिया गया है। अकारान्त शब्दों में संस्कृत विभक्ति-चिन्ह 'स्य' है, किन्तु इकारान्त, उका-

१. दि एज आफ इंपीरियल यूनिटी, पृ० २८२।
२. हि० सा० बृ० इ०, प्रथम भाग, पृ० ३०१।
३. एपि०इं० ८।१७३।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रान्त में यह 'अस्' ( कवेः, विष्णोः, भिक्षोः ) है । भिक्षु शब्द के साथ यह अकारान्त शब्दों का षष्ठी एक वचन का विभक्ति-चिन्ह 'स्य' जोड़कर 'भिक्षुस्य' रूप बना दिया गया । ऐसा भी हो सकता है कि प्राकृत रूप 'भिक्खुस्स' का संस्कृतीभूत रूप ( भिक्षुस्य ) रहा हो । प्राकृत में भिक्षु शब्द के षष्ठी एक वचन में 'भिक्खुनो, भिक्खुस्स' ये दोनों वैकल्पिक रूप पाये जाते हैं । इस प्रकार प्राकृत के प्रभाव पर बनाए गए संस्कृत रूपों को प्रचुरता मिश्र संस्कृत को जन्म देती है। इसके अतिरिक्त-प्राकृत शब्दों तथा प्राकृत मुहावरों का प्रयोग भी इस भाषा की विशेषता है । इस भाषा के तीन रूप पाये जाते हैं—बौद्ध मिश्र या बौद्ध संकर संस्कृत ( बुद्धिस्ट हाइब्रिड संस्कृत ) जैन मिश्र संस्कृत तथा हिन्दू मिश्र संस्कृत ।"

इस प्रकार क्षत्रप-काल में, विशेष कर पश्चिमी भारत के क्षत्रपों के, प्राकृत का स्थान संस्कृत भाषा ले रही थी, बौद्ध साहित्य ललित-विस्तर तथा महावस्तु आदि में प्राकृत को संस्कृत में बदलने का प्रयास किया जा रहा था । शुद्ध संस्कृत का प्रयोग दिव्यावदान में मिलता है जिसका काल-निर्धारण द्वितीय शती-ईसवी किया गया है ।[१]

शुद्ध संस्कृत का बड़ा और सुन्दर प्रयोग महाक्षत्रप रूद्रदामन प्रथम के जूनागढ़ लेख में मिलता है । शुंगों के बाद उसी का राजकीय लेख शुद्ध संस्कृत में मिलता है । यह गद्य में लिखा है पर काव्य-शैली का भी कहीं-कहीं पुट मिलता है ।[२] इसका एक उत्कृष्ट उदाहरण उसी के लेख में मिलता है जिसमें वह गद्य और पद्य दोनों में प्रवीण बतलाया गया है—

....गद्य-पद्य-काव्यदिनां प्रवीणेन....

प्राचीन साहित्य, प्राकृत और संस्कृत दोनों, अधिकतर, प्राय

१. हि० सं० लि०; कीथ; पृ० १५१।
२. कीथ० हि० सं० लि०, पृ० ४६ ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मूलतः, पद्य में हैं। वस्तुतः ब्राह्मणों और आरण्यकों के गद्य सहित्य के बाद, सूत्रों को छोड़कर रुद्रदामन के गिरनार-प्रशास्ति लेख के पहले संस्कृत गद्य का कोई धारावाही स्वरूप हमें नहीं मिलता। संस्कृत गद्य के विकास में अनेक शताब्दियों का यह अंतराल वस्तुतः समझ में नहीं आता। वैसे गद्य अथवा सूत्र पद्धति का आभास हमें कौटलीय अर्थशास्त्र, भारत के नाट्य-शास्त्र और वात्स्यायन के कामसूत्रों से मिल जाता है, किन्तु पहले तो वह आभास मात्र है, दूसरे इन ग्रन्थों को रुद्रदामन का पूर्ववर्ती होना निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। वात्स्यायन तो निश्चय रुद्रदामन के पीछे के अथवा आसपास के हैं, भरत के नाट्यशास्त्र के कुछ ही अंश संभवतः उस शकाभिलेख से पहले रखे जा सकेंगे और यद्यपि अर्थशास्त्र अधिकांश में उससे पहले का हो सकता है उसके गद्य को हम विशिष्ट साहित्य की दृष्टि से नहीं देख सकते। इससे ब्राह्मणों के बाद पहला गद्य संबंधी उदाहरण हमें रुद्रदामन की इस प्रशस्ति में ही मिलता है।

इसके पद्य की विशेषताओं को थोड़ा समझ लेना चाहिए। श्री डी० वी० डिस्काल्कर ने अपनी पुस्तक 'सिलेक्शंस फ्राम संस्कृत इंस्क्रिप्शन्स' में जूनागढ़ लेख के गद्य की विशेषताओं को बतलाते हुए कहा है कि यह काव्य-शैली में तथा वैदर्भी रीति के अनुसार लिखा गया है।

"अभिलेख की भाषा में क्रियाओं का अत्यंत ही आभव दिखाई पड़ता है। जितना लेख प्राप्त है, उसमें केवल दो सकर्मक क्रियाएँ मिलती हैं—वर्तते और आसीत। अनुमानतः पूरे लेख में इस प्रकार की चार और क्रियाएं रही होंगी। क्रियाओं का यह अभाव संस्कृत साहित्य के गद्य-काव्य के पाठकों के लिए कोई आश्चर्यजनक नहीं है। यद्यपि संस्कृत-व्याकरण में क्रिया-पद के रूपों को बहुत विस्तार में दिया गया है तथापि संस्कृत गद्य लेखक बहुत ही प्रचलित और क्रिया के सरल रूपों का प्रयोग करते हैं। दूसरी तरफ यह लेख

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh


सर्वोत्तम गद्य कृतियों से समानता रखता है, क्योंकि इसमें सरल शब्दों की अपेक्षा समासों के प्रयोग को अधिक महत्त्व दिया गया है। पूरे लेख में इन समासों के सीधे और सरल रूप का ही प्रयोग किया गया है, जिससे उनके समझने में किसी प्रकार की कठिनाई नहीं होती।"

"लेखक की विषय-वर्णन की शैली सरल और प्रवाहमयी है। लेख का उद्देश्य महाक्षत्रप रुद्रदामन द्वारा सुदर्शन तडाक के पुनर्निमाण का वर्णन करना है, इसलिए अभिलेख 'इदं तडाकं सुदर्शनं' से प्रारंभ होता है और यही पद ६ वाक्यों में कर्ता के रूप में प्रयुक्त हुआ है, जिसमें लेखक ने विषय का वर्णन किया है।"

"इस तडाक को रुद्रदामन ने इस तरह सुन्दर बनवाया कि वह सांचे में ढला हुआ सा लगता था। यह तडाक मौर्य राजा चन्द्रगुप्त के राष्ट्रिय (राज्यपाल) वैश्य पुष्यगुप्त द्वारा बनवाया गया था और मौर्य राजा अशोक के प्रान्तीय शासक यवन तुषास्प ने उसमें नालियों और सीढ़ियों का निर्माण कराया। भयंकर आंधी और वर्षा के कारण पलाशिनी और स्वर्णसिक्ता नदियों में बाढ़ आ गयी और उसके वेग से झील की दीवार में चार सौ बीस हाथ चौड़ा उतना ही लंबा तथा पचहत्तर हाथ गहरा दरार पड़ गया जिससे झील का सारा पानी बाहर निकल गया और सुदर्शन तडाक दुदर्शन हो गया। इससे स्पष्ट है कि लेख का अधिकांश भाग झील के पुनर्निमाण का वर्णन करता है। इसमें लेखक ने रुद्रदामन के व्यक्तित्व का भी गुणगान किया है।"

"झील के इतिहास को एक ही वाक्य में लेखक ने बड़े सुन्दर ढंग से चित्रित किया है, दूसरी तरफ भयानक तूफान का विस्तृत वर्णन है, जिससे लेखक की काव्य-प्रतिभा की उत्कृष्टता का पता चलता है। लेखक ने कुछ इस प्रकार के अलंकारों का प्रयोग किया है जिनका प्रयोग बाद के शिलालेखों में बहुत अधिक मिलता है। अर्थालंकार

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Jodhpur

का प्रायः अभाव ही है। केवल सुदर्शन शब्द पर शब्द-क्रीडा और दो-एक अन्य स्थानों पर उपमालंकारों का प्रयोग दिखायी पड़ता है। दूसरी तरफ शब्दालंकारों के प्रयोग में लेखक विशेषरूप से पटु दिखायी पड़ता है। शब्दालंकार का वह रूप जिसमें एक ही वाक्यांश के निकटस्थ शब्दों में प्रयोग होता है विशेष रूप से दिखाई पड़ता है। उदाहरण के लिए—प्रहरण वितरण, समग्राणां....विषयाणां, अविधेयना यौधेयाना, नाम्ना....दाम्ना....रुद्रदाम्ना, शक्तेनदान्तेन-चपलेन वस्मितेनार्येणाहार्येण सेतुबन्धेनोपपन्नसुप्रतिष्ठित प्रणाली-परी वाहमीढविधान ( कीलहार्न )।"

संस्कृत-काव्य के उदय एवं विकास पर भी एक विहंगम दृष्टि डाल लेनी चाहिए। संस्कृत काव्य के उदय तथा विकास के प्रसंग में मैक्समूलर का 'काव्य के पुनर्जागरण' का सिद्धान्त द्रष्टव्य है[१] मैक्समूलर के अनुसार विक्रम की आरम्भिक चार शताब्दियों में विदेशी शकों के प्रबल आक्रमणों के कारण भारत की आंतरिक दशा नितांत अशान्त थी, राजनीतिक वातावरण एकदम क्षुब्ध था जिसके कारण काव्य पनप न सका। साहित्य-रचना के लिए आवश्यक शान्त वातावरण की छाया भी इस युग में दृष्टिगोचर नहीं होती। फलतः यह अंधकारमय युग संस्कृत काव्य की घोर निशा का काल है और इसका अंत तथा कल्पना का मंगलमय प्रभात तब उदित हुआ, जब गुप्त साम्राज्य के वैभव का सूचक शंखनाद उद्घोषित हुआ। अतः गुप्त-काल में ललितकला का अभ्युदय संपन्न होने से संस्कृत काव्य का पुनर्जागरण हुआ। इस प्रकार विक्रम की दूसरी-तीसरी शताब्दी का युग, मैक्समूलर के अनुसार काव्य के अभाव का युग था।

परन्तु डा० बूलर ने सप्रमाण सिद्ध किया है कि इस युग में भी कमनीय स्तुतिकाव्यों की रचना हुई थी।[२] यह युग गद्य तथा पद्य

---

१. पं० बलदेव उपाध्याय, सं० सा० इ०, पृ० १३७।
२. इं० एं० १९१३।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. Digitized by eGangotri Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS and Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उभयविध काव्यों के प्रणयन का था। शक क्षत्रप रुद्रदामन का गिरनार शिलालेख अपनी शैली की रोचकता, भावप्रवणता आदि के हेतु एक लघु गद्य-काव्य का आनन्द देता है। यहाँ रुद्रदामन स्फुट, लघु, मधुर, चित्र, कान्त, शब्द-समय-संपन्न, उदार तथा अलंकृत गद्य-पद्य की रचना में प्रवीण बतलाया गया है।[१] गद्य-पद्य के गुणबोधक ये शब्द, नितांत पारिभाषिक हैं और किसी मान्य आलोचना सिद्धान्त की ओर स्पष्ट संकेत करते हैं।[२] इस प्रकार मैक्समूलर ने ईसवी की आरंभिक दो शताब्दियों में शकों के आक्रमण के कारण संस्कृत के साहित्यिक प्रयत्नों में ह्रास की कल्पना की थी, परन्तु इतिहास के साक्ष्य के आधार पर पश्चिमी शक संस्कृत के उन्नायक सिद्ध होते हैं, न कि विध्वंसक।[३]

इस चेतना को सामने रखते हुए रुद्रदामन के गद्य का महत्त्व और भी बढ़ जाता है। प्रकट है कि समसामयिक अन्य जातियाँ इस देश में आकर भी, यहाँ की भाषा और धर्म को अंगीकार करके भी, भाषा के अपने ज्ञान में वह प्रवीणता प्राप्त नहीं कर सकीं जिसे शकों ने अपनी निष्ठा से प्राप्त किया था। संभवतः विदेशी राजकुलों की स्थानीय प्राकृत अथवा संस्कृत की पकड़ इसलिए भी दुर्बल थी कि एक तो उनका देश से संपर्क इतनी मात्रा और सीमा में न हो सका और संभवतः इससे भी कि वे देश की प्रतिनिधि जातियों के विजेता होने के कारण प्रतिनिधि भाषा के भी शत्रु हो गए। शकों का शक्ति-विस्तार अपेक्षाकृत विस्तृत था, प्रायः सिंध और झेलम की घाटी से नर्मदा की घाटी तक, फिर मालवा के पूर्वी सिरे से काठियावाड़ और

---

१. स्फुटलघु मधुरचित्रकान्तशब्दसमयोदारालंकृतगद्यपद्य—( काव्य-विधान प्रवीणे ) न।

२. ब्यूलर, इं० एं० १९१३।

३. पं० बलदेव उपाध्याय, सं० सा० इ०, पृ० १४०।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

महाराष्ट्र तक। ग्रीक ज्योतिष के शब्दों का संस्कृतीकरण शकों के ही काल में, विशेषतः उज्जयिनी के केन्द्र में हुआ। नहपान और उषवदात स्वयं सांस्कृतिक दृष्टि से इस विचार के पोषक हुए और रुद्रदामन तो संस्कृत को राज्याश्रय दे और राजभाषा के पद पर प्रतिष्ठित कर पुष्यमित्र शुंग और ब्राह्मणों का समानधर्मा बन गया। कुछ आश्चर्य नहीं जो शकों के आंध्रसातवाहनों के निरंतर प्रतिस्पर्धी बने रहने के बावजूद, दोनों के बीच सदियों संघर्ष बने रहते हुए भी भाषा और साहित्य संबंधी राष्ट्रीयता के कारण ही संभवतः शक अराष्ट्रीय नहीं कहे जा सके और देश से निकाले न जा सके। इस परंपरा को शकों ने इस जोर से पकड़ा, यद्यपि स्पष्ट प्रमाण इस बात के नहीं हैं, कि बुद्ध और महावीर द्वारा आक्रांत संस्कृत के पक्षपाती होने के कारण वे श्रमण विरोधी और समाज के नेता ब्राह्मणों के, उनकी देवभाषा संस्कृत का पल्लवन करने के कारण कृपापात्र बन गए हों। यह परंपरा शकों के आचरण में इतनी रूढ़ हो गयी कि जब गुप्तों के प्रयत्न से उन्हें देश छोड़ना पड़ा और प्रयाग स्तम्भ के समुद्रगुप्त के प्रशस्ति लेख ने उन्हें काबुली सीमा-प्रांत पर निर्दिष्ट किया तब से सदियों के उत्तरवर्ती काल में शाहि राजकुल के रूप में उन 'शाहिशाहानुशाहि शक मुरुण्डों' ने भारत के सिंहद्वार की उसके आक्रान्ता तुर्कों से १० वीं-११ वीं सदी तक रक्षा की।

संस्कृत भाषा और साहित्य के प्रति उनका यह अनुराग इतने महत्त्व का इस कारण और भी हो जाता है कि उस काल के प्रायः सभी राजकुल संस्कृत में न लिखकर प्राकृत ही में अपने लेख लिखवाते थे। स्वयं आंध्र सातवाहनों ने तो प्राकृत को अपना संरक्षण इस मात्रा में दी कि न केवल उस काल का बल्कि समूचे प्राकृत साहित्य का महानतम् काव्य-ग्रन्थ 'गाहासतसई' (गाथा सप्तशती) की रचना सातवाहन स्वयं हाल द्वारा हुई। इस गाथा सप्तशती का

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh


प्रभाव अभी पिछले दिनों तक, बिहारी की हिन्दी सतसई तक पर पड़ता रहा है।[१]

साहित्य से भी अधिक शक राजाओं को सरक्षा ज्योतिष विज्ञान को मिली। उज्जयिनी उस काल की 'ग्रानधिच' बनी और वहीं नक्षत्र-विद्या और गणित का केन्द्र बना जो अभी हाल तक किसी न किसी रूप में बना रहा है।[२] यद्यपि यवनों का भारतीय ज्योतिष पर प्रभाव है तथापि उनका प्रभाव इस देश की राजनीति में प्रभुत्व रहते उतना नहीं पड़ा। वस्तुतः यवन ज्योतिष का यह भारतोन्मुख संक्रमण शक शासन के मध्यान्ह में पहली और तीसरी सदियों के बीच हुआ। शीघ्र ही बाद वराहमिहिर ने देशी-विदेशी ज्योतिष के प्रचलित पाँच सिद्धान्तों की अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'पंचसिद्धांतिका' में संगृहीत किया। इसके अतिरिक्त भी 'बृहत्संहिता' और 'होराशास्त्र' में उन्होंने गणित और फलित ज्योतिष का अध्ययन प्रस्तुत किया।

भारत का सबसे महत्त्वपूर्ण संवत् शक संवत् है। शक संवत् पश्चिमोत्तर भारत में नहीं मध्यभारत में प्रथमतः प्रचलित हुआ। इसका प्रवर्तक उज्जयिनी नगर का क्षत्रप चष्टन था।[३] शक संवत् का प्रचलन काफी होता है। अनेक बार तो एकमात्र, पंचागों और जन्म-पत्रों में व्यवहृत होता है। भारत का राष्ट्रीय कैलेण्डर शक संवत् में ही है। यह संभवतः इसीलिए क्योंकि ज्योतिष-विद्या में ये शक काफी प्रवीण थे। नक्षत्र और गणित का इनको अधिक ज्ञान था। उज्जयिनी इस काल शिक्षा का केन्द्र थी।

---

१. डा० उपाध्याय, विश्व साहित्य की रूपरेखा, पृ० ५०२।

२. हि० सा० बृ० इ०, प्रथम भाग, पृ० ७०६।

३. डा० पाण्डेय, इंडियन पेलियोग्राफी, पृ० १६२।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

# कला

## (१) पृष्ठभूमि

भारतीय कला की सामग्रियाँ ऐतिहासिक काल में कम से कम मौर्य युग से मिलने लगती हैं और उनमें दो विभिन्न धाराएँ परिलक्षित होती हैं। एक ओर स्थानीय भारतीय शैली के उदाहरण विशेष रूप से यक्षों की मूर्तियों में प्राप्त होते हैं दूसरी ओर अशोक की राज्याश्रयी कला में उसका बहुत ही समुन्नत रूप प्रकट होता है। शुंग काल में ऐसा जान पड़ता है कि भारतीय कला में प्राचीन परंपरा पुनः प्रतिष्ठित हो गयी थी, जिसके उदाहरण मथुरा, बोधगया, भरहुत, साँची आदि में प्राप्त होते हैं। शक काल में ये सब परंपराएँ विद्यमान थीं। यही वह संक्रान्ति काल था, जब भारतीय जीवन में राजनीतिक और सांस्कृतिक पक्षों के रूप में एक नवीन क्रान्ति उपस्थित होती है। विशेष रूप से ब्राह्मण और श्रमण दोनों ही धर्मों में भक्ति की भावना प्रस्फुटित और विकसित हुई। भक्तिपरक संप्रदायों में मूर्ति-पूजा का विशेष स्थान है। अतएव यही वह काल था, जिस समय नवीन कल्पनाओं का और उनके अनुसार भिन्न-भिन्न संप्रदायों के उपास्य दोनों का सृजन हुआ एवं तदनुसार उनकी मानुषी प्रतिमाएँ बनाई गयीं।

एक ओर तो समाज में एवं धर्म में ये क्रान्तियाँ हो रही थीं, दूसरी ओर शक राजाओं के प्रतिपालन में इनका समुचित विकास हो रहा था। विशेष रूप से कठफिस वर्ग और कनिष्क वर्ग के सम्राटों में धर्म-सहिष्णुता उल्लेखनीय है। उनके सिक्कों में जो देवमूर्तियाँ उपस्थित होती हैं उनका बहुत व्यापक क्षेत्र है। इनमें मुख्य रूप से यूनानी, रोमन, ईरानी एवं भारतीय सभी प्रकार के देवी-देवता समान

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh


रूप से प्रतिष्ठित हुए हैं।[१] स्वयं सम्राटों के विरुद् में उनके भारतीय धर्मों के प्रति श्रद्धा प्रकट हुई है। दूसरी ओर उनके विरुद् 'देवपुत्र' में चीनी परंपरा स्पष्ट है।

इन सब दृष्टियों से शक काल में कला के क्षेत्र में अभूतपूर्व उन्नति हुई और तदनुसार क्षेत्रीय क्षत्रपों के मण्डलों में भी उसको एक नया दृष्टिकोण प्राप्त हुआ। मुख्य रूप से इस काल में कला-प्रगति को निम्नलिखित क्षेत्रीय विभाजन में रखा जा सकता है।

( १ ) पश्चिमी पंजाब और गंधार।

( २ ) मध्यदेश और

( ३ ) मध्यदेश से लगा प्रदेश जो काठियावाड़ और महाराष्ट्र तक पश्चिम में चला गया है।

पश्चिमी पंजाब और गंधार पर कुषाणों के पहले शकों का शासन था। यह समय गंधार-शैली के विकास का था। इस शैली का प्रारंभ शकों से पहले इण्डो-ग्रीक राजाओं के शासन-काल में हुआ और परिणति कुषाण काल में हुई। और दोनों कालों के संधि पर जिस गंधार कला का विस्तार हुआ, उसको संरक्षा संभवतः गंधार के इन्हीं क्षत्रपों ने दी। पहली शती ईसवी पूर्व में जो मूर्तियाँ और अन्य कला-कृतियाँ तक्षशिला और उसके निकटवर्ती गंधार-प्रदेश में मिलती हैं उनके निर्माण का श्रेय शक-संरक्षा को मिलनी चाहिए। मथुरा की सिलेनस, आसवपायी, कुबेर आदि की जो इण्डो-ग्रीक शैली में बहु-व्यक्तिक मूर्तियाँ मिली हैं, वे निश्चय तब की हैं जब पहले शकों और बाद में कुषाणों ने अपने पूर्वाभिमुख संक्रमण के क्रम में मथुरा को अपना केन्द्र बना लिया था। चूँकि शक कुषाणों और इण्डो-ग्रीक के मध्यवर्ती थे और इण्डो-ग्रीक शैली से उनका संपर्क कुषाणों से पहले हुआ, कुछ आश्चर्य नहीं जो इन मूर्तियों को पश्चिमी प्रदेशों से,

---

१. ज० रा० ए० सो० १८९७, पृ० ३२२।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh


कम से कम शैली की दृष्टि से, मथुरा ले गए हों। साधारणतः ये मूर्तियाँ कुषाणकालीन कही जाती हैं। वे सर्वथा कुषाण ही हैं, या वे शक नहीं हैं, इस संबंध में निश्चित और अंतिम राय नहीं दी जा सकती, क्योंकि जैसा पहले लिखा जा चुका है, कुषाणों और शकों की शैलियों में कोई अंतर नहीं है और जो कुछ बताया भी जाता है वह या तो नगण्य है या कृत्रिम। सौ वर्ष के भीतर का अंतर कला की दृष्टि से जब तक कि उसमें नवागतुक जाति ने अपने महत्त्व के योग-दान द्वारा, अपनी जातीय-कला विशेषता द्वारा क्रान्ति न उत्पन्न कर दी हों, कोई अंतर नहीं होता।[१] ये मूर्तियाँ इस अर्थ में शक भी कहला सकती हैं[२]।

मध्यदेश पर भी इसी प्रकार पहले शकों का फिर कुषाणों का शासन स्थापित हुआ। मध्यदेश से यहाँ तात्पर्य गंगा-जमुना के पश्चिमी कांठे से है, प्रयाग और काशी तक और जब-तब पाटलिपुत्र तक। शक शासन का एक केन्द्र वाराणसी भी थी, जहाँ शकों का वनस्पर नामधारी क्षत्रप शासन करता था। कुछ पहले, शकधारा के पहले प्रवाह में अम्लाट नामक शक ने, जैसा युगपुराण से प्रकट होता है, मगध के हृदय पाटलिपुत्र तक आक्रमण कर उसे आक्रान्त कर दिया था, यद्यपि कला की दृष्टि से इस आक्रमण को कोई महत्त्व नहीं दिया जा सकता। वाराणसी में शकों का होना निश्चय सारनाथ की कला पर उनकी संरक्षा प्रतिष्ठित करता है, जो मथुरा की ही भाँति पूर्व में कला का एक केन्द्र बन गयी। वहाँ की अनेक बोधि-सत्वादि की मूर्तियाँ मथुरा परंपरा में हैं--शक-कुषाण-शैली की परिचायक हैं। वाराणसी से पूर्व, पटना और काशी के बीच, बक्सर में जो

---

१. डा० भगवतशरण उपाध्याय, वि० स्मृ० अंक; सं० २००३ पृ० २६१-८०।

२. वही।

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh 

कुषाणकालीन मृण्मूर्तियाँ मिली हैं, उन पर भी शक-कुषाण-शैली की छाप स्पष्ट है[१]। वस्तुतः शैली का संक्रमण सामाजिक प्रवृत्तियों की संक्रमण की ही भाँति जातियों के दूर के संपर्क से भी हुआ करता है[२]। यदि इस दृष्टि से हम देखें तो पटना संग्रहालय में रखी अनेक मिट्टी की मूर्तियाँ उस शैली की ओर संकेत करेंगी जो मथुरा और सारनाथ की थीं, जिस पर शक-कुषाण-शैली की मुहर थी[३]।

शकों का तीसरा प्रादेशिक विभाग और उसके शासन का प्रधान विस्तार मालवा और नर्मदा की घाटी से काठियावाड़, गुजरात और महाराष्ट्र तक हुआ। आश्चर्य है कि इन स्थलों में शकों के शासन-काल की विशिष्ट कला-मूर्तियाँ विशेषतः नहीं मिलतीं। उज्जयिनी की खुदायी में उसकी उपलब्ध सामग्री बहुत उत्साहवर्धक नहीं कही जा सकती। उसी तरह ग्वालियर, सांची, भेलसा-भरहुत आदि केन्द्र या तो शकों के पूर्व के हैं या उनके कुछ बाद के गुप्तकालीन। जैसे, उदयगिरि, बाघ, अजंता, भूमरा, खोह आदि। शकों और गुप्तों के बीच वाकाटकों की स्थिति थी और उनके प्रभाव से भी बना कुछ कलाकृतियाँ उपलब्ध हैं, पर शकों का पश्चिमी भारत में निर्माण-कार्य प्रायः बहुत थोड़ा है। हाँ, अमरावती स्तूप के ऊपर की संगमरमर की सांकृतिक पट्टिकायें जो कुषाणकालीन बतलायी जाती हैं उनका सीधा संपर्क निश्चय कुषाणों से उतना न रहा होगा जितना शकों से। यद्यपि कला की दृष्टि से आकृति-लक्षणों का आग्रह मथुरा की ओर था, उज्जयिनी की ओर नहीं, तथापि यह निश्चय है कि मथुरा से दक्षिण जाने वाला मार्ग उज्जयिनी से होकर ही जाता था, जो शकों का इस दिशा में प्रधान केन्द्र था।

---

१. वही।

२. वही।

३. वही।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इस युग में भारतीय कला में एक ऐसी नवीनता और ओज का समावेश हुआ जैसा पहले कभी नहीं हुआ था। यह तो ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता कि किन-किन कारणों से प्रेरित होकर कला अपने पुराने तथा जीर्णशीर्ण आवरण को छोड़कर नवीनता की ओर झुकने लगती है, पर इतिहास इस बात की साक्षी है कि किसी महान् घटना, राजनीतिक उथल-पुथल के साथ ही कलाकारों के दृष्टिकोणों में भी अंतर आने लगता है उनके हृदय के कोनों में छिपे हुए जीर्णशीर्ण कला के सिद्धान्त नई स्फूर्ति से प्रेरित होकर युग की कला को एक नये साँचे में ढालते हैं। राजा और प्रजा की धमनियों में बहते हुए सांस्कृतिक ओज को ये कलाकार मूर्त-रूप देते हैं। उदाहरण के लिए गुप्त-युग को लीजिए। कुषाण साम्राज्य के अंतिम दिनों की ओजहीन कला उस टिमटिमाते हुए दीपक के समान है, जिसका तेल जल चुका है फिर भी उसकी बत्ती उकसाई जाती है, जिससे उस दीपक का प्रकाश चाहे वह कितना ही धीमा क्यों न हो थोड़ी देर तक ढहते हुए महल में उजाला रख सके। लेकिन गुप्त-युग की कला को लीजिए तो मालूम पड़ता है कि दीपक तो वही पुराना है, लेकिन नवीन तेल बत्ती से सुशोभित होकर अपने जाज्वल्यमान स्निग्ध प्रकाश से वह दिशाओं को आपूरित करने लगता है।[1] यह इसी युग की प्रेरणात्मक शक्ति का फल है जिससे अनुप्राणित होकर भारतीय कला देश-की चहार-दीवारी लांघते हुए अफगानिस्तान, मध्यएशिया, चीन, जापान, कोरिया, बरमा, लंका, मलाया इत्यादि में जा पहुँचा।

## (२) मूर्तिकला :

जिस प्रकार शुंगकाल में साँची और भरहुत कला के केन्द्र थे उसी प्रकार शक काल में मथुरा भारतीय कला का महान केन्द्र बनी। मथुरा में प्राप्त शक क्षत्रपों का सिंहस्तम्भ पर के खरोष्ठी लेखों से पता

---

१. वि० स्मृ० ग्र०, से० २००१, पृ० ८१।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh


चलता है कि प्रथम शती ई० पू० के शक-क्षत्रप बौद्ध-धर्म और कला के पोषक थे[१]। मथुरा के तक्षण कला के अध्ययन से पता चलता है कि मथुरा कला पूर्णतः भारतीय कला थी। यद्यपि इसका प्रेरणा-स्रोत भरहुत और साँची की कला थी तथापि न्यूनाधिक वह उत्तर-पश्चिमी कला (गंधार कला) से भी अनुप्राणित थी (रोमन कला का जो भारतीयकरण हुआ उसका नाम गंधार शैली है)। परन्तु फोगल के मतानुसार मथुरा-कला में गंधार कला का भारतीयकरण हो जाता है[२]। यानी मथुरा कला गंधार के किसी ज्ञात प्रकार से मेल नहीं खाती[३]। मथुरा की इस मूर्तिकला में एक नवीन दिशा दिखाई देती है, जिसमें बुद्ध-विग्रह का अंकन अधिक उल्लेखनीय है। इस काल की मथुरा की बुद्ध और बोधिसत्व की मूर्तियों की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं—

"मूर्तियाँ या जो चारों ओर कुरेदकर अथवा बहुत गहरी कुरेदकर बनाई गई हैं, वे रूपवास के लाल रेतीले पत्थर की बनी हैं, सिर घुटा हुआ दिखाया जाता है और उस पर घुंघराले बाल नहीं होते। जहाँ भी उष्णीष होता है, प्रलम्बन होता है, भौंहों के बीच ऊर्णा तथा मूछें नहीं होतीं, दायाँ हाथ अभय-मुद्रा में उठा रहता है और बायें हाथ की मुट्ठी बँधी रहती है, जो बैठी मूर्तियों में जाँघ पर रखा रहता है। कंधे खुले हुए रहते हैं, आसन पर कमल नहीं होता वरन् वह सिंहासन के रूप में छोटे-छोटे परिषदों रहित होता है। खड़ी मूर्ति की दशा में सिंह पैरों के बीच रहता है, गुप्तकालीन बुद्ध मूर्तियों के समान मुख पर शांति एवं सौम्यता के भाव के स्थान पर पौरुष एवं शील का भाव होता है और प्रभामण्डल सादा होता है या किनारों पर हल्की

---

१. एपि० इं० ६। १४१।

२. मथुरा म्यू० कैटलाग, पृ० ३३।

३. वि० स्मृ० ग्र०, सं० २००१, पृ० ८०४।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Jammu

खुदायी का काम होता है। यह विशेषताएँ 'जिन' मूर्तियों में भी पायी जाती हैं[१]।" उदाहरण के लिए सारनाथ संग्रहालय में कनिष्क के राज्य के तीसरे वर्ष में भिक्षु बल द्वारा निर्मित बोधिसत्व की विशाल प्रतिमा का उल्लेख किया जा सकता है, जिसका छत्र अत्यधिक अलंकृत है, पैरों के बीच में सिंह है तथा मूर्ति अत्यंत भव्य तथा शक्तिपूर्ण है। ऐसी ही एक प्रतिमा भिक्षु बल द्वारा निर्मित इण्डियन म्यूजियम में है, जो जेतवन में पायी गयी थी। कनिष्क के राज्य-काल के दूसरे वर्ष में निर्मित एक सुन्दर बुद्ध-प्रतिमा जिसका एक हाथ टूट गया है, अभी हाल में कौशाम्बी में मिली है और अब इलाहाबाद संग्रहालय में है जिसके निर्माणकर्ता भी भिक्षु बल ही थे।

मथुरा कला को सबसे बड़ी विशेषता बुद्ध-प्रतिमा की देन है। प्रश्न हो सकता है कि बुद्ध-मूर्ति का अंकन क्यों किया था। परिनिर्वाण प्राप्त करते समय बुद्ध ने अपने शिष्यों से कहा था, "आनन्द! जिस धर्म और विनय का मैंने तुम्हें उपदेश दिया है, जिसे मैंने तुम्हें बताया है, वही मेरे बाद तुम्हारा शास्ता होगा।"[२] इसी प्रकार बीमार वक्कलि भिक्षु से जिसने भगवान के दर्शनों की इच्छा व्यक्त की थी, और जिसकी इच्छा पूर्ति के लिए भगवान स्वयं गए, कहा था, "वक्कलि! मेरी इस गंदी काया के देखने से तुझे क्या लाभ! वक्कलि! जो धर्म को देखता है वह मुझे देखता है, जो मुझे देखता है वह धर्म को देखता है।"[३] बुद्ध मानव-गुरु ही रहना चाहते थे इसी लिए वह अपने शिष्यों को इस प्रकार का उपदेश दिया करते थे। एक जगह कहा भी है—

---

१. वि० स्मृ० ग्रं०, २००१, पृ० ८०४।

२. महापरिनिब्बाण सुत्त (दीघ, २।३)

३. अलं वक्कलि कि ते पूतिकायेन दिट्ठेन। यो खो वक्कलि धम्मं पस्सति, सो मं पस्सति। यो मं पस्सति सो धम्मं पस्सति (संयुक्त-निकाय)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तापाच्छेदाच्च निकषात् सुवर्णमिव पण्डितैः ।
परीक्ष्य भिक्षवो ग्राह्यं मद्वचो न तु गौरवात् ॥

अर्थात—हे भिक्षुगण ! जिस प्रकार लोग सोने को अग्नि में तपा कर, कसौटी में कसकर और अच्छी तरह ठोक-पीटकर पूर्व परीक्षा करने के बाद उसे खरा मानते हैं उसी प्रकार आप लोग मेरे वचनों को ज्ञानाग्नि में तपाकर, बुद्धिरूपी कसौटी में कसकर तथा उनकी हरप्रकार पूर्ण परीक्षा करके ही उन्हें ग्रहण करना, केवल मेरे प्रति आदर और श्रद्धा के कारण ही उन्हें सत्य मत मानना ।

यदि बुद्ध-प्रतिमा के आविर्भाव के कारणों की खोज की जाय तो निम्नलिखित कारण हमारा ध्यान आकर्षित करेंगे—

(क) पहले को हम सामाजिक कारण कहेंगे । शक वैदिक प्रति क्रिया के काल में भारत आये थे । ब्राह्मण धर्मावलम्बी अपने अपौरुषेय धर्म को अवैदिकों के सामने नीचा नहीं देखना चाहते थे । उन्होंनें श्रमण-परंपरा के विरुद्ध, जो कि इस काल तक विलासी हो चलें थे, आन्दोलन किया—गृहस्थाश्रम धर्म का प्रचार किया और बतलाया कि सच्चे सुख और स्वर्ग की प्राप्ति उसी में है । इससे उन नवयुवकों और नवयुवतियों पर जो श्रमण धर्म को बहुत तेजी से ग्रहण करने लगे थे एक अवरोध लगा और हीनयानियों के अर्हतों और प्रत्येक बुद्धों की प्रतिष्ठा को धक्का । परिणामस्वरूप महायान के बोधिसत्वों का अविर्भाव हुआ तथा बुद्ध की मूर्ति भी कोरी जाने लगी जिसकी पूजा-अर्चना कर गृहस्थ भी मुक्ति प्राप्त कर सकते थे ।

(ख) दूसरा कारण धार्मिक था । जन-विश्वास तर्क और दर्शन से परे होता है । ऐसी जनता के लिए व्यक्तिगत देवता अनिवार्य होता है जिसको वह अपना दुःख सुना सके, अपने आपत्ति काल में जिसकी वह शरण ले सके । हिंदू धर्म के भक्ति-मार्ग में तो श्रद्धा-भक्ति का पूरा आचरण किया जा सकता था परन्तु बौद्ध धर्म में इसकी व्यवस्था न हो सकी थी । जब साधारण जनता भी बौद्ध धर्म में दीक्षित हुई तो

भक्ति मार्ग में परचे होने के कारण उसे एक बड़ी कमी का बोध हुआ। प्राचीन बौद्ध बुद्ध को केवल मानव-गुरु, आचार्य और पथ-प्रदर्शक के रूप में मानते थे। उनकी प्रतिष्ठा अभी देवपद पर नहीं हुई थी। बौद्ध धर्म का यह प्रारंभिक रूप हीनयान था। पर बौद्ध धर्म 'धर्म' कहलाने लायक महायान काल में हुआ।[1] क्योंकि भक्तिभावना का उद्रेक सर्वप्रथम इसी में हुआ उसके पहल तो वह 'प्रज्ञान्वया' थी।

महायान में बुद्ध की मूर्ति के साथ-साथ अनेक 'बोधिसत्वों' की भी कल्पना हुई, उनकी भी मूर्तियाँ बनी और कालान्तर में हिन्दुओं की ही भाँति बौद्धों में भी देवमण्डल बना जिसमें अधिकतर हिन्दू देवता—शक्र, ब्रह्मा, कुबेर आदि—अपने पुराने नाम से अथवा नाम बदलकर ले लिये गये। बुद्ध, बोधिसत्वों और अन्य देवताओं की सहस्रों मूर्तियाँ कोरी गयीं और साधारण बौद्ध जनता की उपासना का केन्द्र बनी।

(ग) इस काल की बुद्ध अथवा बोधिसत्व की प्रतिमाओं का यदि अवलोकन किया जाय तो तीसरा कारण भी स्पष्ट हो जायेगा जिसको हम जातीय कारण कहेंगे। ये मूर्तियाँ तत्कालीन भावना का पूरा अंकन करती हैं। वह काल विदेशी आक्रमकों का था। शक्ति और बल का ही चारों तरफ बोलबाला था। विदेशी स्वयं शक्तिशाली थे; श्रेष्ठता का मापदण्ड उनमें पौरुष और शील था। इसीलिए पौरुष और शील का—बुद्ध एवं बोधिसत्वों के मुखों पर—उद्रेक होता दिखाया गया है। इस संबंध में यह भी जान लेना चाहिए कि शक लोग आमू दरिया की घाटी में बसने से पूर्व बर्बर, डाकू, खानाबदोश थे। खानाबदोशों का न कोई धर्म होता है और न दर्शन। यहाँ आने पर उनका ईरानी और ग्रीक संस्कृतियों से संपर्क हुआ जो मूर्ति-पूजक थे।

---

१. टी. आर. वी. मूर्ति, दि सेंट्रल फिलासफी आफ बुद्धिज्म पृ. ६।

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh. 

इस प्रकार बुद्ध प्रतिमा का मूर्तन एक ऐसी जाति के द्वारा संभव हुआ जो युद्ध के लिए हमेशा तत्पर रहती थी जिनके देवता यम और हेराकल्स—मृत्यु के देवता—बर्बरता के द्योतक देवता थे। परन्तु भारतीय सीमा में प्रवेश करते ही वे शील की प्रतिमा बुद्ध से प्रभावित हुए बिना न रह सके। इसको इन विदेशी शासकों के सिक्के और अभिलेख प्रमाणित करते हैं। इस प्रकार बल और शील का समन्वय हुआ। यही कारण है कि बुद्ध की प्रारंभिक प्रतिमाओं में पौरुष और शील का उद्रेक होता दिखाया गया है। जैसे-जैसे विदेशियों की युद्ध-लिप्सा क्षीण होती गयी, धर्म का वास्तविक अर्थ वे समझने लगे। बुद्ध-प्रतिमा के अंकन में परिवर्तन भी होता गया—पौरुष और शील के स्थान को शान्ति और सौम्यता ग्रहण करता गया।

इस प्रकार मथुरा कला ने बौद्ध कला का अपने काल में विकास का भरपूर अवसर प्रदान किया। कनिंघम के अनुसार जहाँ कहीं भी वह उत्तरी-पश्चिमी भारत में गये सीकरी के रेतीले पत्थर में बने बोधिसत्वों की मूर्तियों को पाया[1]। इससे विदित होता है कि मथुरा बौद्ध तक्षण कला का बहुत बड़ा केन्द्र था। कनिंघम के इस वाक्य का समर्थन उस काल का अभिलेख भी करता है[2]।

सारनाथ में प्राप्त कनिष्क के बौद्ध मूर्ति पर लेख से पता चलता है कि बोधिसत्व की एक प्रतिमा, महाक्षत्रय खरपल्लान के क्षत्रप वनष्पर ने जो कि वाराणसी का क्षत्रप था, कनिष्क के शासन-काल के तीसरे वर्ष में उसको भेंट किया था। जिसको भिक्षुबल ने बनाया था। फोगल के अनुसार वह मथुरा का निवासी था[3]।

---

१. मथुरा म्यू० कैटलाग, पृ० २८।

२. एपि० इं० ८। १७३।
भिक्षुस्य बलस्य त्रेपिटकस्य बोधिसत्व प्रतिष्ठापितो।
महाक्षत्रपेन खरपल्लानेन सहा क्षत्रपेन वनष्परेन॥

३. मथुरा म्यू० कैटलाग, पृ० २८।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शक क्षत्रप बौद्ध कला के विकास ही में नहीं लगे थे बल्कि वे धर्मसहिष्णु थे और अन्य धर्मों को भी विकास का अवसर देते थे। इसको मथुरा में पाये गए जैन स्तूप, अयागपट्ट आदि प्रमाणित कर देते हैं।

## (४) भारतीय कला की व्यापकता :

भारतीय कला सभी संप्रदायों का सर्वतोनिष्ठ एक ही मूल था। अतएव कोई मूर्ति जैन है अथवा बौद्ध इसका हम तब तक निर्धारण नहीं कर सकते हैं, जब तक उस पर इस बात का कोई द्योतक लेख नहीं मिलता। अयागपट्ट को ही लीजिए। ऐसा कहा जाता रहा है कि अयागपट्ट जैनों के होते हैं, किन्तु इसकी असारता तब सिद्ध हो जाती है जब हम यह जान जाते हैं कि अयागपट्ट बौद्ध भी बनवाते थे। इसका ज्ञान हमें अमरावती के किस्तुआ नामक स्थान से होता है[१]।

भारतीय कला पर किसी धर्म विशेष का एकांतिक प्रभाव नहीं था, इसका समर्थन 'कल्पनामण्डटीका' भी करता है, जहाँ कनिष्क भ्रमस्वरूप जैन स्तूपों को बौद्ध स्तूप समझ लेता है। यह बात यहीं तक लागू नहीं होती। यदि प्राचीन भारतीय कला में प्रयोग किये गये कुछ चिन्हों, प्रतीकों, को देखा जाय तो ज्ञात होगा कि वे समान रूप से सभी धर्मों में प्रयुक्त किये गये हैं। उदाहरण के लिए 'त्रिशूल' को लीजिए। साधारणतया त्रिशूल शिव धारण करते हैं और इससे शैव धर्म का बोध होता है। पर प्राचीन कला में यह समान रूप से सभी धर्मों में प्रयुक्त हुआ है, जो भिन्न-भिन्न अर्थों और प्रयोजनों के साथ प्रकट होते हैं[२]। इसी तरह 'स्वस्तिक' से भी साधारणतया जैन मत का बोध होता है। किन्तु 'त्रिशूल' की ही भाँति यह भी सभी धर्मों

---

१. लूजां, सी० पी० इं० हि०, पृ० १५१।
२. एपि० इं० २। ३११।

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh 

द्वारा अपनाया गया है—पवित्र और भाग्यशाली प्रतीक के रूप में।

यहाँ जो भ्रम पैदा करने वाली चीज है वह है 'धमचक्र'। इसका जैनों ने उतना ही प्रचार किया जितना बौद्धों ने। कहने का तात्पर्य यह है कि इस प्रतीक का जैनों और बौद्धों ने अपनी कला में प्रभूत प्रयोग किया। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण मथुरा-तक्षण कला है। यह कोई आश्चर्यान्वित कर देने वाली बात नहीं है, क्योंकि 'चक्र' प्राचीन राजनीति-शास्त्र और हिन्दू जन-विश्वासों में बहुत महत्त्व का स्थान रखता था। संस्कृत कोश 'चक्र' का अर्थ 'राष्ट्र' भी करते हैं। चक्र का अर्थ समझ लेने पर ही राजा-चक्रवर्ती बनने की महत्त्वकांक्षा रखता था।

इस प्रकार कंकालीटीला के ये तक्षण इस बात का प्रमाणित करते हैं कि जैनों की प्राचीन कला बौद्ध कला से पूर्णरूप से अंतर नहीं रखती थी। दोनों संप्रदाय एक ही प्रकार के आभूषणों का प्रयोग करते, एक ही जैसे कलात्मक 'मोटिफ' और पवित्र प्रतीकों का प्रयोग करते थे। उनमें यदि विषमता थी तो छोटी-छोटी बातों में। यह प्रश्न हो सकता है कि एक संप्रदाय का मानने वाला दूसरे संप्रदाय की बातों को क्यों अपनाता है, इसके लिए कहा जा सकता है कि दोनों भारत की राष्ट्रीय-कला से प्रभावित थे और एक ही कलाकार से अपनी चीजों का निर्माण कराते थे[१]।

## (४) भारतीय कला की सर्वग्राहिकता :

इस टिप्पणी की आवश्यकता इसलिए अनिवार्य हो गई कि जिसे हम शक कला कहेंगे वस्तुतः शुद्ध वैज्ञानिक दृष्टि से वह मात्र भारतीय कला है। पहली सदी ईसवी पूर्व से लेकर तीसरी सदी ईसवी तक की भारतीय कला, उससे भिन्न शक-कला नहीं। वैसे साधारणतः तिथि-क्रम और स्थानभेद के कारण हम शक-कला, कुषाण-कला आदि में

---

१. बूलर, एपि० इं २। ३११।

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh 

भेद करते हैं। परन्तु वह भेद वस्तुतः कृत्रिम है। यदि उसी को हम शककालीन भारतीय कला और कुषाणकालीन कला कहें तो शायद वस्तुस्थिति की वह अधिक सही परिचायक होगी। शकों और कुषाणों की संस्कृति में तो वैसे भी बहुत अंतर न था, कारण कि दोनों ही प्रायः एक ही स्थान—मध्यएशिया, बाख्त्री ( बहलीक ) आदि—से आये थे। ऊँचे मध्यएशियाई बूट पहनते थे, सलवार पहनते थे, भीतर लंबा कुरता और बाहर कारचोबी के हाशिये का चोगा पहनते थे, सूर्य की पूजा करते थे। दोनों के साथ उनकी एक निजी बात यह थी कि उनकी भारत से बाहर अपनी कोई विशिष्ट संस्कृति नहीं रही थी, कोई जीवन-दर्शन नहीं था। यही कारण है कि उन्होंने भारतीय संस्कृति धर्म और कला को, भाषा और शासन-पद्धति को सर्वशः अपना लिया। इसके विपरीत यही कारण उस भेद का भी है कि इण्डो-ग्रीक कला बहुत काल तक अपना निजत्व बनाये रही, परिणामतः कि उसके स्रष्टा ग्रीकों की अपनी संस्कृति थी, अपना साहित्य था, अपना जीवन-दर्शन था, अपनी कला थी। किन्तु जैसे-जैसे भारतीय संस्कृति के सर्वग्रासी प्रभाव से ग्रीक संस्कृति की, मूल से संबंध छूट जाने से, निजीपन लुप्त होने लगा वैसे ही वैसे गंधार शैली की प्रखरता भी अपना रूप-रंग बदल चली और धीरे-धीरे गंधार-शैली गुप्त-काल में ऐसी लुप्त हुई कि फिर पहचानी न जा सकी। भारतीय कलावंत फिर उसकी ओर नहीं लौटे।

## (५) स्थापत्य कला :

अभिलेखों से शक-स्थापत्य का पता चलता है और उससे यह भी मालूम होता है कि ये दो प्रकार के थे—(१) धार्मिक और (२) लौकिक।

(अ) धार्मिक प्रकार—पतिक के तक्षशिला ताम्रपत्र[1] और

१. पतिको तक्खशिलए नगरे उतरेण प्रचु देशो क्षेम नाम अत्र देशे पतिको अप्रतिठवित भगवत शकमुणिस शरीरं प्रतिथवेति संघरमं च सर्वबुधन पुये।

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh 

शोडास के मथुरा सिंह शीर्ष अभिलेखों[१] से पता चलता है कि शकों ने स्तूप, चैत्य, विहार आदि का निर्माण कराया था। स्तूप, चैत्य और विहार अधिकतर, कम से कम पिछले काल में, एक ही परंपरा के है। स्तूप और चैत्य दोनों का उद्देश्य प्रायः एक सा था। दोनों ही अति प्राचीन काल में मृत्यु और शव-समाधि से संपर्क रखते थे, बाद में दोनों भिन्न-भिन्न उद्देश्यों की पूर्ति करने लगे।

(आ) स्तूप—स्तूप पहले केवल मृत्यु संबंधी थे और उनका उपयोग शव अथवा मृतक की अस्थियाँ रखने में होता था। भारत के प्राचीनतम स्तूप साधारणतः केवल एक प्रकार के टीले हैं। ऐसी एक समाधि जो आठवीं और सातवीं ईसवी पूर्व की है, उत्तर बिहार के लौरिया नन्दनगढ़ ग्राम में मिली थी।[२]

प्राचीनतम स्तूप मिट्टी के मृतक के ऊपर उठाये ठोस टीले थे। बाद में वे बिना पकाई इंटों के भी बनने लगे। पहले उनका उद्देश्य केवल अस्थिसंचय था, बाद में वे निर्वाण अथवा महत्त्वपूर्ण घटनाओं आदि के स्मारक भी बन गए और तब उनका निर्माण बिना उन्हें अस्थिस्थापना के लिए खोखला बनाए हुए पत्थर, ईंट या मिट्टी का होने लगा। पाली ग्रन्थों के अनुसार बुद्ध के परिनिर्वाण के पश्चात उनके फूल आठ भागों में बांटे गए जिन पर प्रत्येक भाग-ग्रहीता ने एक-एक स्तूप बनाया। इस प्रकार मूल में केवल आठ ही स्तूप थे। दिव्यावदान के अनुसार यह संख्या अशोक ने बढ़ाकर ८४००० कर दी। फाहयान के अनुसार विहारों में मौद्गलायन, सारिपुत्र और आनन्द तथा अभिधर्म, विनय, सूत्रों आदि के लिए स्मारक स्तूप बनाने की प्रथा चल पड़ी थी।

---

१. शकमुनिस बुधस मुकिश्रिरय सश्य अभुसवित थुव च सघरम च चत्र दिश्रस सघस....गुहाविहार धमदन।

२. कुमारस्वामी, हि० इं० इण्डो० आर्ट, पृ० १०।

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh 

प्राचीन स्तूप भीतर से खोखले या ठोस कच्ची ईंटों के बने हैं और पत्थर की रेलिगों से घिरे हुए हैं। मिट्टी की ईंटों से बने होने पर भी अक्सर इन्हें पक्की जुड़ाई से ऊपर से ढक देते हैं। सांची और सारनाथ के स्तूप इसी प्रकार के हैं। स्तूपों के नीचे आधार होता है जो मेधि कहलाता है। मेधि की भूमि रेलिंग और स्तूप के बीच प्रदक्षिणाभूमि का काम देती है। मेधि पर सोपान मार्ग से चढ़ते हैं। स्तूप के ठोस मेध्यासीन भाग को अंड अथवा गर्भ कहते हैं जो गुंबजाकार होता है। उसके ऊपर हर्मिका होती है, जिससे ऊपर निकली हुई धातुयष्टि नीचे अंड को भेदती गहरी चली जाती हैं। यह यष्टि ऊपर के छत्र अथवा छत्रों का दण्ड बन जाती है। चोटी पर कलश बने होते हैं, जिन्हें वर्षस्थल कहते हैं। यह स्तूप का साधारण रूप है, वैसे उसके आकार-प्रकार में पीछे परिवर्तन होता गया है।

वेदिका (रेलिंग) के भी, जो स्तूप को घेरते हैं, अनेक भाग होते हैं। उसका नीचे का आधार आलंबन कहलाता है। बीच-बीच में स्तंभ (थंब) होते हैं जिनसे होकर अथवा जिन तक वेदिका दौड़ती है। स्तंभों में सूराख होते हैं, जिन्हें सूचीमुख कहते हैं, उन्हीं में वेदिका की सूची प्रवेश करती है। सबसे ऊपर की बाड़ 'उष्णीष' कहलाती है। इस वेदिका में चारों दिशाओं में चार तोरण द्वार बने होते हैं। तोरण एक अथवा, एक के ऊपर एक, तीन तक होते हैं। समूची वेदिका और तोरण लकड़ी से बने होने का आभास उत्पन्न करते हैं। उनकी बनावट बांस से भी हुई है।

भरहुत और सांची के स्तूप, जो कि अशोककालीन माने जाते हैं, की वेदिकाएं शुंग काल में बनी। भरहुत की वेदिका खण्ड रूप में कलकत्ता के 'इण्डियन म्यूजियम' में सुरक्षित हैं। इन वेदिकाओं पर उभरी यक्षयाक्षियों, नागराजों, देवताओं की दीर्घाकृतियां असाधारण आकर्षक हैं। उनके नीचे उनके नाम भी खुदे हुए हैं। उनके अति-

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh 

रिक्त अनंत मात्रा में नरनारियों के मस्तक, कमल आदि के प्रतीक उन पर उत्कीर्ण हुए हैं। अभी महायान का उदय न होने के कारण बुद्ध की प्रतिमा नहीं बनी थी और उनकी उपस्थिति का बोध 'बोधि-वृक्ष' 'छत्र' 'धर्म चक्रप्रवर्तन' 'पादुका' आदि के रूप में ही कराया जाता था। ये प्रतीक वहां अत्यंत आकर्षक बने हुए हैं। जातक चित्र दर्शक को बुद्ध के जीवन की अनेक घटनाओं से परिचय कराते हैं। उस पर बने गज-मृग-बानरों की सजीवता तो संसार की समूची कला में अलभ्य है। फरगूसन का कथन आज भी सत्य है—"कुछ पशु जैसे हाथी, हिरन तथा बन्दरों का चित्रण ऐसा हुआ है जैसे संसार की और किसी मूर्तिकला में नहीं हो पाया है। कुछ पेड़ों तथा वस्तु की सूक्ष्मताओं का चित्रण ऐसी सुन्दरता तथा खूबी के साथ हुआ है, जिससे हमारा चित्त उनकी ओर खिंचता है। मनुष्य-मूर्ति की बनावट भी, जब कि उनकी बनावट हमारी सुन्दरता के मापदण्ड से भिन्न है, सादृश्यता के लिए हुए हैं। जहाँ उनकी कल्पना समूह में होती हैं, वहाँ वह बड़ी खूबसूरती तथा सरलता से अपनी योजना के उद्देश्यों को भली-भांति प्रकट कर देती है"।[१]

शक काल में भी अनेक स्तूप बने। मथुरा के बौद्ध और जैन स्तूप तो नष्ट हो चुके हैं परन्तु उनकी वेदिकाओं के टूटे खण्ड मथुरा और लखनऊ के संग्रहालयों में आज भी सुरक्षित हैं। स्तूपों की यह परंपरा पिछले काल तक लगातार चलती रही। इनका निर्माण साधारणतः पूजा के लिए ही होता था। तीर्थस्थान पर जाते ही बौद्ध-जैन लोग अपने निजी दो-दो, चार-चार, दस-दस फुट ऊँचे स्तूप खड़े कर लेते थे।

## (३) चैत्य व बिहार :

प्राचीन विहार चैत्यगृह के चारों ओर बने छोटे कमरों का परि-

---

१. हि० इं० ईस्टर्न आर्किटेक्चर, पृ० ३६।

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh 

वार था। इन छोटे कमरों को कुटी भी कहते थे। सारनाथ के विहार में बुद्ध की कुटी का नाम पीछे मूलगंधकुटी पड़ा और उसके विहार का नाम मूलगंधकुटी विहार। उन कुटियों के बीच बड़े चैत्यगृह में ठोस स्तूप होता अथवा संप्रदाय विशेष की पूजा-मूर्ति प्रतिष्ठित होती थी। हीनयान विहार के चैत्यों के सामने की दीवार पर अर्थचित्र में संप्रदाय का प्रतीक उभरा रहता था।

ईंट-पत्थरों से बने प्राचीन विहार तो अब न रहे पर पर्वतों को काट कर बनाये प्राचीनतर विहार आज भी खड़े हैं। गोदावरी तट के निकट के प्राचीन नहपान विहार, लेण नं० ८, हीनयान संप्रदाय का था। उसके स्तम्भ तिकोने आधार और घट पर खड़े हैं और उनके शीर्ष घंटेनुमा आकृतियों से मंडित हैं। उसके भी ऊपर पिरामिड है, जिस पर वृषभ है, कार्ले के स्तंभों के अनुकरण में। नहपान विहार के अतिरिक्त इसी नहपान का अभिलेखों से युक्त दो अन्य विहारों का भी पता चलता है। एक हैं कार्ले का गुहाविहार और दूसरा है जुन्नर का।

नहपान विहार के अलंकार कार्ले के चैत्य-गृह में अधिक विकसित हैं। कार्ले की लेण भारतीय वास्तुकला के उत्कृष्टतम उदाहरणों में है। इस लेण के नाम १२४-४५ फुट है। स्तूप दो वेदिकाओं से परिवेष्टित है तथा ऊपर का लकड़ी का पुराना छत्र अब भी सुरक्षित है। नासिक की तरह चैत्य-गृह का मुखड़ा दो खण्डों में विभाजित है। निचले खण्ड में तीन द्वार हैं तथा ऊपरी सहन में एक बड़ा चन्द्रशाला वातायन है। चैत्य-गृह के दोनों ओर गलियारे छोड़ते हुए स्तंभों की पंक्तियां है। इनके सिरे से उठती हुई काठ की तिल्लियां अण्डाकार छत को छाती थीं। नीचे के खण्ड में द्वारों के अंतरालों में मूर्तियां अंकित हैं। निचले दरवाजों के आगे निकलता हुआ एक दूसरा द्वारा है जिसके बगल में कई खण्ड तक वास्तु-अलंकरण (इमारती लिखावट) अंकित है। इनमें सबसे निचली इमारती लिखावट को हाथियों की

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh


मूर्तियां अपनी पीठों पर संभाले हुए हैं। पत्थर में बहुत से गड्ढे इस बात के साक्षी हैं कि सिंहद्वार के पहले कोई लकड़ी का दरवाजा रहा होगा। चैत्य के बाहर एक धर्मचक्र से मण्डित ध्वजस्तंभ है।

प्रारंभ में कारीगर पत्थर के ऊपर लकड़ी के ढाँचे के रूप में अथवा पूर्णतः लकड़ी के विहार एवं चैत्य-मण्डप बनाते थे। ईसवी पूर्व प्रथम शताब्दी के प्रारंभ में पश्चिमी भारत के बौद्ध एवं जैनों ने ईसवी पूर्व तीसरी शती में अशोक द्वारा 'बराबर' नामक पहाड़ी में बनवाई। आजीवकों के गुहानिवासों के समान गुहाओं का निर्माण किया। इस गुहा के पुरोभाग में घोड़े के नाल के आकार के तोरण ही इसके एकमात्र अलंकरण हैं। इसमें संदेह नहीं कि ईसवी पूर्व दूसरी एवं पहली शताब्दी में भाजा, अजन्ता, विदिशा, नासिक एवं कार्ले आदि के चैत्य मण्डप बराबर की लोमश ऋषि की गुहा की अनुकृति में बनाये गये हैं। उनके पुरोभाग में भी नाल के आकार के तोरण हैं। परन्तु उनपर मानव आकृतियाँ एवं अन्य दृश्य अंकित करके उन्हें अधिक सुन्दर बना दिया गया है।

चैत्य मण्डपों की रचना ईसाई गिरजों से मिलती जुलती हुई होती है। बीच में सभामण्डप होता है, उसमें पूजास्थल पर ठोस स्तूप होता है। यह सब या तो चट्टान को काटकर बनाया जाता है या लकड़ी और ईंटों का बना होता है। सभामण्डप के चारों ओर प्रदक्षिणापथ होता है।

## ( ई ) मन्दिर :

शक नृपति बौद्ध और जैन धर्म तथा कला का ही विकास करने में संलग्न नहीं थे, बल्कि वे धर्म के क्षेत्र में सहिष्णुता बर्तते थे। उनके काल में अन्य धर्मों की कला का भी विकास हुआ। भागवत-मंदिरों और मूर्तियों का इस काल में निर्माण हुआ, इसका पता तत्कालीन अभिलेखों[१] से चलता है। यदि तथोक्त मेमायर्स पर

१. मे० आर्के० सर्वे इंडिया ५। १६६।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दृष्टिपात किया जाय तो पता चलेगा कि भगवान वासुदेव की प्रसन्नता के लिए तथा स्वामि महाक्षत्रप शोडास के राज्य के संवर्धन एवं विकास के लिए 'चतुःशाला', 'तोरण' और 'वेदिका' का निर्माण किया गया[1]।

## (उ) लौकिक प्रकार :

यदि शक-कालीन अभिलेखों पर दृष्टिपात किया जाय तो इसका पता चलेगा कि उस काल में जितना धार्मिक स्थापत्यों पर बल दिया जाता था, उतना ही लौकिक स्थापत्य पर भी ध्यान दिया जाता था। वापी, तडाक, कूप, धर्मशाला आदि बनवाने के दृष्टान्तों से शक-कालीन अभिलेख भरे पड़े हैं। ऐसा करना पुण्यकर समझा जाता था और अधिक संख्या में राज्य और राज्येतर व्यक्ति इन्हें खोदवाकर प्रस्तुत करते थे। चंद्रगुप्त मौर्य के समय में सौराष्ट्र प्रान्त का राष्ट्रिय पुष्यगुप्त ने गिरनार पर्वत पर दो नदियों को बाँधकर एक सुंदर झील बनवा दिया था। अशोक के काल में यवनराज तुषास्य ने उसे अनेक नालियों से अलंकृत कर दिया था, जिनका प्रयोजन जल का प्रवेश और निष्कासन रहा होगा[2]। यह झील प्रायः चार सौ वर्ष पश्चात् १५० ईसवी में टूट गयी। चार सौ बीस हाथ लम्बे, उतने ही चौड़े और ७५ हाथ गहरे छेद हो जाने के कारण इसका सब पानी निकल गया था। इन मापों से ऐसा प्रतीत होता है कि तालाब अति विशाल रहा होगा। रुद्रदामन ने इसका पुनरुद्धार कराया और अब इसकी लम्बाई, चौड़ाई तिगुनी कर दी गयी[3]।

---

१. वसुना भगवतो वासुदेवस्य महास्थान चतुःशालं तोरणं वेदिकाः प्रतिष्ठापितो प्रीतो भवतु वासुदेवः स्वामिस्य महाक्षत्रपस्य शोडासस्य संवर्तेयातम्।

२. एपि० इं० ८। ४२। प्रणालिभिरलंकृतं।

३. वही।

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh 

तालाब के तैयार कराने में गारा ( मृत्तिका ) और पत्थर (उपल) को काम में लाया गया था। इसके विस्तार और आयाम में पालिकाओं ( मोल्डिंग्स ) को बनाकर उसकी मजबूती को और दृढ़ कर दिया गया था। उसकी संधियाँ सुश्लिष्ट थीं। सीढ़ियों की भी व्यवस्था थी।

अट्टालिका, उपतल्प, द्वार, शरण, चतुःशाला, आराम, उदपान-कूप आदि का भी निर्माण होता था। अट्टालिका, उपतल्प, द्वार, शरण आदि स्थापत्य कला संबंधी शब्दों को हम रुद्रदामन के जूनागढ़ लेख में पाते हैं।[१] उसी प्रकार चतुःशाला, आराम, उदपान का वर्णन उषवदात के अभिलेख में मिलता है[२]।

## ( ६ ) वस्त्राभूषण :

सभी शक जातियों का प्रायः एक ही सा लिबास होता था। वे एक लम्बा ओवरकोट पहनते थे जो ठीक आजकल के 'मार्निंग ड्रेस' की तरह होते थे, जिस पर फर लगा होता था। पैर तथा कटि-प्रदेश को ढकने के लिए वे लम्बा जूता तथा सलवार पहनते थे। शिर पर वे टोपी भी रखते थे। टोपी ऐसी होती थी, जो उनके कान तथा गाल के कुछ हिस्से को ढके रहती थी। उनके अस्त्र में एक लम्बा तलवार होता था जो उनके कमर पर एक बेल्ट के सहारे हमेशा लटका रहता था। उनके कमरबंद पर सोने का काम किया होता था। इस प्रकार का एक कमरबंद ब्रिटिश संग्रहालय में सुरक्षित है, जो कि आमूदरिया की खुदायी में प्राप्त एक निधि से मिली है। शकों का ऐसा वस्त्राभूषण उनके ठण्डे प्रदेश के होने की ओर अनायास ही हमारा ध्यान आकर्षित करता है। प्रोफेसर हर्जफील्ड के अनुसार[३]

---

१. गिरि-शिखर-तरु-तटाट्टालकापतल्प-द्वार-शरणोच्छ्रय।

२. एपि० इं० ८। १५। ७८।

३. मे० आर्के० सर्वे इं० ३४। ५।

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh 

ऐसा भेष प्रायः सभी शक जातियाँ बनाए हुए थीं जिससे मालूम होता है कि शक अपने देश को भूले नहीं थे। हमारे यहाँ भी पुरातत्त्व-संग्रहालयों में सुरक्षित इन शकों के आदमकद स्टेच्यू और तस्वीरें प्रोफेसर हर्जफील्ड के कथित वाक्य की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करती हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

# उपसंहार

शक विशाल स्कीथियन जाति की एक शाखा थे जिसका मूल-निवास मध्यएशिया का भूमि प्रदेश था। यूहचियों के भय से उनको अपनी मूल भूमि को छोड़ना पड़ा। उनकी वह निवास भूमि जहाँ वे बसे 'शकस्थान' कहलाई। कालांतर में मज्दात द्वितीय के भय से उन्हें वह स्थान छोड़ना पड़ा। बोलन दर्रे को पार कर वह सिंध में पहुँचे और उन्होंने वहाँ अपना डेरा डाला। उनका वह आवास 'शकद्वीप' कहलाया। इन शकों ने कालान्तर में, भारत में, कई राजवंशों की स्थापना की और भारतीय संस्कृति को प्रायः ६०० वर्षों तक पल्लवित एवं पुष्पित किया। सिंध, तक्षशिला, मथुरा, महाराष्ट्र और उज्जयिनी उनके शासन के केन्द्र बने। समूचा उत्तरी और पश्चिमी प्रदेश उनके अधिकार में आ गया।

उन्होंने पहले अपने को ईरानी पार्थव सम्राटों का 'क्षत्रप' कहा, फिर वे 'महाक्षत्रप' कहलाये और अंत में 'शाहिशाहानुशाही'।[1] परन्तु एक दिन के लिए भी उनकी सत्ता ईरानी सम्राटों के अधीन नहीं रही, वे प्रारंभ से ही भारत में स्वतंत्र शासक की हैसियत से शासन करने लगे थे।

शकों का पश्चिम में उत्कर्षकाल तीसरी शती ईसवी तक था, यद्यपि वहाँ उनका राज्य चौथी शती के अंत तक बना रहा। दूसरी शती ईसवी में रुद्रदामन का शासनकाल उनकी शक्ति का चरम-उत्कर्ष था। सारे पश्चिमी जगत का भारतीय व्यापार उनके हाथ में आ गया और उनकी सजाई नगरी उज्जयिनी व्यापार, कला और विद्या का केन्द्र बनी। उत्तर से दक्षिण और पूरब से पश्चिम जाने

---

१. समुद्रगुप्त का प्रयाग स्तंभ का प्रशस्ति लेख।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वाले वणिकपथ उज्जयिनी ही में मिलते थे।

इस दीर्घकाल में अनेक प्रकार से उन्होंने यहाँ की राजनीति समाज, धर्म, भाषा-साहित्य और कला आदि को प्रभावित किया। इन्हीं की शक्ति से टक्कर लेने के कारण इस देश में विक्रमादित्यों की परंपरा चली।[१] एक ओर तो वे सातवाहन सम्राटों के साथ भूमि के लिए लड़ते थे, दूसरी ओर भारत की संस्कृति को सँवारते थे। शक सभी प्रकार से भारतीय हो चले थे। भाषा और साहित्य को उनकी संरक्षा से बड़ा आश्रय मिला। एक नई चेतना, एक नया उद्दीपन उस दिशा के साधकों को मिला।

हमारे संस्कृत साहित्य की अनेक कृतियों में उनके कृत्यों की प्रतिध्वनि उठी। गार्गी संहिता के युगपुराण में उन्हीं के शक सेनापति अम्लाट के पाटलिपुत्र पर भीषण आक्रमण का विवरण दिया हुआ है।[२] मगध पर शुंगों के पश्चात काण्वायनों का शासन हुआ था, फिर उनके हाथ से दक्षिण के आंध्र सातवाहनों ने सत्ता छीन ली। किन्तु जब शकों के पश्चिमी भारत पर अधिकार कर लेने पर आंध्रों को उस नई विपत्ति का अपने घर में ही सामना करना पड़ा, तब उत्तर का अधिकारदण्ड उनके हाथ से निकल गया। उसी समय शक अम्लाट ने मगध पर भीषण आक्रमण किया और मध्यप्रदेश को रौंदता पाटलिपुत्र तक जा पहुँचा। वहाँ उसने इतनी मारकाट की कि नगर और जनपद नरविहीन हो गए। युगपुराण के अनुसार उस नरसंहार के कारण पुरुष उस धरा से सर्वथा लुप्त हो गए। सारे कार्य स्त्रियों को ही करने पड़े। तलवार से लेकर हल तक उन्हीं के हाथों में आ गये। इससे उस काल की राजनीतिक उथल-पुथल का भी पता चलता है। इसका समाज पर क्या प्रभाव पड़ा होगा, इसका अंदाज लगाया जा सकता है। स्वाभाविक है कि वर्ण-व्यवस्था टूट गयी होगी और म्लेच्छ

१. भारतीय समाज का ऐतिहासिक विश्लेषण, पृ० १७४-९४।
२. ज० बि० उ० रि० सो० १६।१८-६६।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh


कहे जाने के बावजूद विजयी होने के कारण शकों को समाज में निम्न स्थान स्वीकार नहीं हुआ होगा, जिससे उनको वर्णों के उपरले स्तर पर कहीं रखना पड़ा होगा। आज भी ब्राह्मणों में एक ऐसा परिवार मिलता है जो अपने को 'शाकद्वीपी' कहने में गर्व का अनुभव करता है।

शकों का इस देश की धर्म और कला पर असाधारण गहरा प्रभाव पड़ा। साधारणतः भी इतनी विभिन्न जातियों पर शासन करने के नाते उनको विश्वास के संबंध में सार्वभौम और उदार होना चाहिए था। इसीलिए उनके देवमण्डल में मध्यएशियाई देवता सूर्य, चंद्रमा और यूनानी देवी-देवताओं के साथ ही भारतीय बुद्ध की भी आकृतियाँ बनी हैं। ये ही सिक्के गुप्तों के सिक्कों के लिए आदर्श बने थे। गुप्त सिक्के कुषाणों के सिक्कों से प्रभावित थे, यह उनके सिक्कों को देखने से स्पष्ट मालूम पड़ता है।[१]

इस काल में बौद्ध धर्म के विशिष्ट संप्रदाय महायान का जन्म हुआ, जिसने आदि मार्ग के अनुकूल वैयक्तिक देवता का सृजन किया और परिणामस्वरूप भारत को बुद्ध की पहली प्रतिमा मिली। तत्काल भारतीय तक्षक अगणित संख्या में बुद्ध की मूर्ति कोरने लगे। मथुरा तक्षण कला का केन्द्र बनी।

भारतीय कला की मुद्रा अधिकतर मूक, गम्भीर और चिन्तन प्रधान थी। इस विदेशी कुषण-भाव सत्ता ने उसे अपनी प्रसन्न मुद्रा प्रदान की। बुद्ध के मूक और शान्त रूप पर बोधिसत्व की अभिराम प्रसन्न छटा छिटकी।[२] स्तूप 'निर्वाण' के प्रतीक थे, पर उनको घेरने वाली रेलिंगों पर उल्लसित अनियंत्रित जीवन लहराता था और जीवन के उस उल्लास को महायान ने गति दी। स्तूपों की रेलिंग ( वेष्टिनी, वेदिका ) स्तंभों के शिखर पर और सामने लंबाय-

१. डा० अल्तेकर, बयाना होर्ड।

२. हि० सा० वृ० इतिहास १।७१४।

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh 

मान दण्डों पर, द्वारतोरणों पर जीवन उछल चढ़ा, उसके हँसते प्रतीक उत्कीर्ण हो गए। वृक्ष की डाल पकड़े झुकी शालभंजिकाएँ, अल्हड़ नग्न यक्षिकाएँ अनंत रूपों में अभिव्यक्त हुईं।

आज के हमारे राष्ट्रीय परिधान—अचकन और पाजामा—का मूल और अविकसित रूप पहले-पहल इस देश में शकों ने ही प्रस्तुत किया।[१] प्राचीन से प्राचीन काल में भी भारतवर्ष में वसन के क्षेत्र में केवल दो वस्त्र—धोती और शाल या चादर प्रयुक्त होते थे। आर्यों ने उष्णीष, द्रापी और नारियों के लिए एक प्रकार के कंचुक का प्रचलन किया। इनमें द्रापी आर्यों के मध्यएशियाई संपर्क का परिणाम थी। प्राचीन हिन्दू काल में भी प्रायः उष्णीय उत्तरीय और अधोवस्त्र का ही प्रयोग रहा। इनको बिना सिले ही प्रयोग में लाया जाता था। परन्तु पश्चात्कालीन वह सारी भारतीय वेष-भूषा जो आज राष्ट्रीय कही जाने लगी है, वास्तव में अभारतीय है और भारतीय इतिहास के विविध आक्रामकों की देन है। अचकन, जिसे मुगलों ने परिष्कृत कर प्रायः आज का रूप दिया, वास्तव में प्रथम शती ईसवी में कुषाणों ने भारत में चलाया था।[२] कुषाणकालीन कुषाण-सैनिकों के वेष से यह स्पष्ट है। नागार्जुनीकोंडा में प्राप्त एक शक सैनिक के वेष से यह प्रमाणित हो जाता है। पाजामा भी जिसका आधुनिक रूप मुसलमानों ने भारत में सँवारा, उन्हीं शकों की देन है। पगड़ी का कोई न कोई रूप सारे मध्यएशिया में प्रचलित रहा। भारत के प्रथम सूर्य-प्रतिमा में हम इसी परिधान को परिलक्षित करते हैं। इस प्रकार का परिधान कोई भारतीय देवता नहीं पहनता, पगड़ी और जूते तो कभी नहीं। सूर्य की प्रतिमा कभी खंजर धारण नहीं करती और यदि दूसरे हाथ में कमलदण्ड न होता तो मूर्ति को भ्रमवश शक

---

१. हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास, १।७०६।

२. भारतीय इतिहास का ऐतिहासिक विश्लेषण, पृ० २२८।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh


या कुषाण नृपति की प्रतिकृति मान लेना स्वाभाविक था और एकाध विद्वानों को पहले यह भ्रम हुआ भी था।[१]

इस विदेशी संपर्क का भारतीय जीवन पर अपूर्व प्रभाव पड़ा। लोगों के सामाजिक दृष्टिकोण में प्रभूत अंतर पड़ा। जहाँ विदेशी भारतीय जीवन और विचारों से आकृष्ट होकर उसके धर्म और संस्कृति को अपनाने और उसकी साहित्य, कला संवारने लगे, वहीं समाज का एक अंग नई सामाजिक व्यवस्था के संगठन में लगा। स्मृतियां और धर्मशास्त्र नए सिरे से लिखे गए। उनके नए संस्करण ने वर्णों की पवित्रता की रक्षा के लिए उनके विधान और कठोर कर दिए। उनको नए अनुबंधों से जकड़ दिया, यद्यपि विदेशियों के निरंतर आघातों से वे जर्जर हो उठे थे। बाल-विवाह का विधान किया गया जिससे तरुण कन्याओं की विदेशी लुटेरों से रक्षा हो सके, क्योंक पति का अपनी पत्नी को रक्षा कर सकना अनेक बच्चों वाले पिता की अपेक्षा सहज था। परंतु इन विधानों के रहते हुए भी पर्याप्त मात्रा में सम्मिश्रण हो चुका था। सम्मिश्रण रोकने के सारे प्रयत्न निष्फल हुए। क्योंकि विदेशी विजेता थे उन्हें न तो अनुबंधों का डर था और न घोषित करने वाले अनुबंधकों का। इस प्रकार उनका भारतीकरण होता जा रहा था। वे अपने को भारतीय समझने लगे थे। ब्राह्मण वर्ग उनसे प्रसन्न था क्योंकि उन्होंने ब्राह्मणों की भाषा में अपने लेख लिखवाये एवं उसको 'राजभाषा' के पद पर आसीन किया। संभवतः उनके भारतीय विचारों के प्रति इसी प्रेम ने उनको अराष्ट्रीय न बनने दिया। यह परंपरा शकों के आचरण में इतनी रूढ़ हुई कि जब गुप्तों के प्रयत्न से उनको देश छोड़ना पड़ा और प्रयाग स्तंभ के समुद्रगुप्त के लेख ने उन्हें काबुली सीमाप्रांत पर निर्दिष्ट किया तब से सदियों के उत्तरवर्ती काल में 'शाहि' राजकुल के रूप में उन 'षाहिषाहानुषाहि शकमुरुण्डों' ने भारत के सिंह द्वार की उसके आक्रान्ता तुर्कों से १० वी०—११वीं सदी तक रक्षा की।

---

१. कुमारस्वामी, हि० इं० इण्डो० आर्ट, प्लेट १८ चित्र ६४।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

# शक-अभिलेख

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

## १
## मैरा अभिलेख

भाषा : प्राकृत
लिपि : खरोष्ठी तिथि : ५८ ( ९७ ई० पू० )

अ

१. संकरमिस चतुपुररोधिवलस
२. अतिवलन....यपदन

ब

१. .....शत.....सम २० २० १० ४४ ।
२. श्प....१० ११....
३. ....मि श्रमणमि दिव

का० इं० इं०, कोनो, भाग १, पृ० ११ ।

## २
## दमिजद का शहदौर लेख

भाषा : प्राकृत
लिपि : खरोष्ठी तिथि : ६० ( ९५ ई० पू० )

१. रजनो दमिजदस सकस....ष्टिहथ २०२०२०
सभदुस सवलवधपित्र सर्ध च
२. मित्रवधनपुत्र हिते विप्रमतभ्रतर

का० इं० इं०, कोनो, भाग १, पृ० १३ ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh


## ३
## पतिक का तक्षशिला ताम्रपत्र-लेख

भाषा : प्राकृत

लिपि : खरोष्ठी तिथि : ७८ ( ७७ ई० पू० )

१. ( संवत्स ) रये अठसततिमए २०२०२०१०४४ महरयस महंतस ( मो ) गस प ( ने ) मस मसस दिवसे पंचमे ४१ एतये पूर्वये क्षहर ( स )

२. क्षुख्सस च क्षत्रपस लिअको कुसुलुको नम तस पुत्रो ( पतिको ) तखशिलये नगरे ( । ) उतरेण प्रचुदेशो क्षेम नम ( । ) अत्र

३. ( दे ) शे पतिको अप्रतिठवित भगवत शकमुनिस शरिरं ( प्रति-थवेति ) ( सं ) घरमं च सर्व-बुधन पुयए मत-पितरं पुयय ( ं तो )

४. क्षत्रपस स-पुत्र-दरस अयु-बल-वर्धिए भ्रतर सर्व ( च ) ( ञतिग ) ( त्रि ) धवस च पुययंतो ( । ) महदनपति पतिक सज उव (झ) ए ( नि )

५. रोहिणिमित्रेण य इम ( मि ? ) संघरमे नवकमिक ( ॥ )

६. पतिक क्षत्रप लिअक ( ॥ ) एपि० इं० खण्ड ४ पृ० ५५ ।

## ४
## मथुरा सिंह शीर्ष अभिलेख

भाषा : शौरसेनी प्राकृत

लिपि : खरोष्ठी तिथि : ( लगभग २२ ई० पू० )

ग्रुप—१

अ ( क )

१. महस ( त्र ) बस रजुलस

२. अग्रमहेषि अयसिअ

३. कमु ( स ) अधित्र

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh


४. खर्र ( र्इ ) ओस्तस युवरज
५. मत्र नददि ( सि ? ) अकस ( ? )

अ ( ख )

६. सत्र मत्र अबुहोल ( ए )
७. पित्रमहि पिश्प्रस्त्रिअ भ्र–
८. त्र हयुअरन सघ हन धि ( त्र )
९. अतेउरेन होरक-प-
१०. रिवरेन इश्र प्रढ्वि-प्रत्रे-
११. श्रे निसिमे शरिर प्रत्रिठवित्रो
१२. भक्रवत्रो शकमुनिस बुधस
१३. म ( ? ) कि हि ( ? ) रयस श्प [ अ ] भुसवित ( ? )
१४. थुव च सघरम च चत्रु-
१५. दिश्रस सघस सर्व-
१६. स्तिवत्रन परिग्रहे

ब

१. कलुइ अ-
२. वरजो [ । ]

स

१. नउलुदो [ । ]

ग्रुप—२

द

१. महत्रवस
२. वजुलस्य पुत्र
३. शुडसे त्रवे

ध ( अ )

१. खर्र ( र्इ ) ओस्तो युवरय
२. खलमस कुमर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh


३. मज कनिठ
४. समनमोत्र-

ध ( ब )

१. क करित

क और ल

१. अयरिअस
२. बुधत्रेवस
३. उत्रएन अयिमित ( स ? )

ह

१. गुहविहरे

ह ( अ )

१. धमदन ( ? )

फ

१. बुधिलस नक्करअस
२. भिखुस सर्वस्तिवत्रस [ । ]

म

१. महत्त ( त्र ) वस्य कुसुलअस पदिकसं मेव ( ? ) किस
२. मियिकस क्षत्रवस पुयए [ ॥ ]

इ ( अ )

१. कमुइअो [ । ]

ग्रुप—३

म

१. त्तत्रवे शुडिसे
२. इमो पढूवि-
३. प्रत्रेश्रो

य

१. वेयउदिर्न कधवरो बुसप-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

२. रो कध-

३. वरो

४. वियउ-

ज ( १—२ )

१. वं.....पलिछिन ( ? )

२. निसिमो करित नियत्रित्रो

ज ( ३ )

१. सर्वस्तिवत्रन परि ( ? ) ग्रहे

न

१. अयरिअस बुधिलस नक्करक्कस भिखु-

२. स सर्वस्तिवत्रस पग्र

३. न महसधिअन प्र-

४. य ( ? ) ज - वित्रवे खलुलस [ ॥ ]

ओ

१. सर्वबुधन पुय [ । ] धमस

२. पुय [ । ] सघस पुय [ । ]

प

१. सर्वस सक्रस्त

२. नस पुयए [ । ]

व

१. खदंअस

२. त्रत्रवस [ । ]

र

१. र ( त ? ) त्रिलस

२. क्रोनिनस [ । ]

ज ( अ )

१. खलशमु—

२. शो [ । ]

सिलेक्ट इंस्क्रृप्शन्स, डी० सी० सरकार खं० १ पृ० ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh


## ५

## मोरा कूप लेख

भाषा : प्राकृत मिश्रित संस्कृत

लिपि : ब्राह्मी। तिथि : ( लगभग २२ ई० पू०—१६ ई० पू० )

१. महाक्षत्रपस राजूवुलस पुत्रस स्वामि....

२. भगवतां वृष्णीनां पंचवीराणां प्रतिमाः शैलदेवगृ....

३. यस्तोषायाः शैलं श्रीमद्गृह मतुलम दधसमधार....

४. आर्चादेशां शैलां पंच ज्वलत इव परमवपुषा....

जा० उ० प्र० हि० सो० खण्ड २४—२५ पृ० १३०।

## ६

## मथुरा अयागपट्ट लेख

भाषा : प्राकृत मिश्रित संस्कृत

लिपि : ब्राह्मी तिथि : ७० ( १४ ई० )

१. नम अरहतो वर्धमानस ( । )

२. स्व ( । ) मिस महाक्षत्रपस शोडाससस ( ˙ ) वत्सरे ७० हेमंत मासे दिवसे हरिति पुत्रस पालस भयाये सम ( नं ) स ( । ) विकाये

३. कोछिये अमोहिनिये सहा पुत्रे हि पालघोषेन पोठघोषेन धन-घोषेन आर्यवति ( प्र ) तिथापिता प्रियं....

४. आयवंति अरहत- पूजाये ( ॥ )

एपि० इं० खण्ड २ पृ० १९९।

एपि० इं० खण्ड ९ पृ० २४३—४४।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

## ७

## शोडास के समय का मथुरा प्रस्तर लेख

भाषा : प्राकृत मिश्रित संस्कृत

लिपि : ब्राह्मी तिथि : ( लगभग १६ ई० पू० )

१. स्वामिस्य महाक्षत्रस्य शोंडासस्य गंजवरेण ब्रह्मणेन शेग्रव-सगोत्रेण ( पुष्क )

२. रणि इमाषां यमड-पुष्करणीनं पश्चिमा पुष्करणि उदपानो आरामो स्तम्भो इ ( मो )

३. ( शिला ) पट्टो च..... ( ॥ )

एपि० इं० खण्ड ६ पृ० २४७ ।

## ८

## शोडास के समय का मथुरा प्रस्तर लेख

भाषा : प्राकृत मिश्रित संस्कृत

लिपि : ब्राह्मी तिथि : ( लगभग १६ ई० पू० )

६. वसुना भगव ( तो वासुदे )

७. वस्य महास्थान....( चतुःषा )

८. लं तोरणं वे ( दिकाः प्रति )

९.ष्ठापितो प्रीतो भू ( अवतु वासु )

१०. देवः स्वामिस्य ( महाक्षत्र )

११. पस्य शोडास ( स्य )

१२. संवर्त ( ` ) यातम् ।

मे० आर्के० सर्वे इं० नं० ५, पृ० १६६ ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh


## ९
## मथुरा में प्राप्त जैन-मूर्ति पर लेख

भाषा : प्राकृत मिश्रित संस्कृत
लिपि : ब्राह्मी तिथि : अज्ञात

१. नमो अरहतो वर्धमानस्य गोतिपुत्रस पोठयशक-
२. कालवालस
३. .....कोशिकिये शिमित्रामे अयागपटो प्रा.....

एपि० इं० खं० १. नं० ३३ पृ० ३९६ ।

## १०
## मथुरा-जैन-मूर्ति-लेख

भाषा : प्राकृत मिश्रित संस्कृत
लिपि : ब्राह्मी तिथि : अज्ञात

१. सिद्धम् । नमोस्त्वर्हद्भ्मय :
२. महाराजमहात्त्र म.....

एपि० इं० खं० २ नं० ३ पृ० १९९ ।

## ११
## कनिष्क का बौद्ध मूर्ति पर अंकित लेख

भाषा : प्राकृत मिश्रित संस्कृत
लिपि : ब्राह्मी तिथिः ३ ( ८१ ई० )

( १ )

१. महारजस्य कणिष्कस्य सं ३ हे ३ दि २०२
२. एताये पूर्वये भिक्षुस्य पुष्यबुद्धिस्य सद्धयेवि-
३. हारिस्य भिक्षुस्य बलस्य त्रेपिटकस्य

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

४. बोधिसत्वो छत्रयष्ठि ( च ) प्रतिष्ठापितो
५. वाराणसिये भगवतो च ( ' ) कमे सहा मात-
६. पितिहि सहा उपद्धयाचर्येहि सद्धयेविहारि-
७. हि अंतेवासिकेहि च सहा बुद्धमित्रये त्रेपिटिक-
८. ये सहा छत्रपेण वनस्परेन खरपल्ला-
९. नेन न सहा च च ( तु ) हि परिपाहि सर्वसत्वनं
१०. हितसुखाय (॥)

( २ )

१. भिक्षुस्य बलस्य त्रेपिटकस्य बोधिसत्वो प्रतिष्ठापितो।
२. महाक्षत्रपेन खरपल्लानेन सहाक्षत्रपेन वनष्परेन॥

( ३ )

१. महारजस्य क ( णिष्कस्य ) सं ३ हे ३ दि २० २
२. एतये पूर्वये भिक्षुस्य बलस्य त्रेपिट ( कस्य )
३. बोधिसत्वो छत्रप ( ष्टि ) ( च ) ( प्रतिष्ठापितो। )

एपि० इं० खं० ८ पृ० १७३।

## १२

# नहपान-वंश के अभिलेख

## नासिक गुहाभिलेख (अ)

भाषा : प्राकृत मिश्रित संस्कृत

लिपि : ब्राह्मी तिथि : ४१, ४२, ४५ (११९, १२०, १२३ ई०)

१. सिधं [ ॥ ] बसे ४० २ वेसाख-मासे राजो क्षहरातस क्षत्रपस नहपानस जामातरा दीनीक-पुत्रेन उषवदातेन संघस चातुदिसस इमं लेणं नियातितं [ । ] दत चानेन अक्षय-निवि काहापण-सहस्रा
२. नि त्रीणि ३००० संघस चातुदिसस ये इमस्मि लेणे वसांतान

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh


[ ˙ ] भविसंति चिवरिक कुशाणमूले च [ । ] एते च कहापणां प्रयुता गोवधनं वाथवासु श्रेणिसु [ । ] कोलीक-निकाये २००० वृधि पडिक-शत अपर-कोलीक-निका—

३. ये १००० बाधे पा [ यू ] न-[ प ] डिक-शत [ । ] एते च कहापणा [ अ ] पडिदातवा वधि-भोजा [ । ] एतो चिवरिक-सहस्रानि वे २००० ये पडिके सते [ । ] एतो मम लेणे वसवुथान भिखुनं वीस [ । ] य एकीकस चिवरिक वारसक [ । ] य सहस्र प्रयुतं पायुन-पडिके शते अतो कुशन—

४. मूल [ । ] कापूराहारे च गामे चिखलपद्रे दतानि नाडिगेरान मुल-सहस्राणि अरु ८००० [ । ] .एत च सर्व स्रावित [ नि ] गम-सभाय निबध च फलकवारे चरित्रतो ति [ । ] भूयोनेन दतं वसे ४०१ कातिक-शूधे पनरस पुवाक वसे ४०५

५. पनरस नियुतं भगवता [ ˙ ] देवानं ब्राह्मणानं च कार्षापण-सह-स्राणि सतरि ७००० प [ ˙ ] चत्रि [ ˙ ] शक सुवण कृता दिन सुवर्ण-सहस्रणं मूल्यं [ ॥ ]

६. फलकवारे चरित्रतो ति [ ॥ ]

एपि० इं० खं० ८ नं० १२ पृ० ८२ ।

## नासिक गुहाभिलेख ( ब )

भाषा : प्राकृत मिश्रित संस्कृत

लिपि : ब्राह्मी तिथि : ( ११९—२४ ई० )

१. सिद्धम् [ ॥ ] राज्ञः क्षहरातस्य नहपानस्य जामात्रा दीनीकपुत्रेण उषवदातेन त्रिगोशतसहस्रदेन नद्या बाणगंसायां सुवर्णदानतीर्थक-रेण देवताभ्यः ब्राह्मणेभ्यश्य षोडशग्रामदेन अनुवर्षं ब्राह्मण शत-साहस्रीभोजापयित्रा

२. प्रभासे पुण्यतीर्थे ब्राह्मणेभ्यः अष्टभार्याप्रदेन भरुकच्छे दशपुरे गोवर्धने शोर्पारगे च चतुशालावसधप्रतिश्रयप्रदेन आरामतडाग-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh


उदपानकरेण इबा-पारादा-दमण-तापी-करवेना (णा)-दाह-नुका-नावा पुण्यतरकरेण एतासां च नदीनां उभतो तीरं सभा—

३. प्रपाकरेण पीडीतकावडे गोवर्धने सुवर्णमुखे शोर्पारगे च रामतीर्थे चरकपर्षभ्यः ग्रामे नानंगोले द्वात्रीशतनालीगेरमूलसहस्रप्रदेन गोवर्धने त्रिरश्मिषु पर्वतेषु धर्मात्मना इदं लेणं कारितं इमा च पोढियो भटारका अंजातिया च गतोस्मिं वर्षारतुं मालये [ हि ] रुधं उत्तमभाद्रं मोचयितुं

४. ते च मालया प्रनादेनेव अपयाता उतमभद्रकानं क्षत्रियानं सर्वे परिग्रहाकृता ततोस्मिं गतो पोक्षरानि तत्र च मया अभिसेको कृतो त्रीणि च गोसहस्रानि दतानि ग्रामो च दत चानेत क्षेत्रं ब्राह्मणस वाराहिपुत्रस अश्विभूतिस हथे कीणिता मुलेन काहापणसहस्रेहि चतुहि ४००० य सपितुसतक नगरसीमाय उत्तरापराय दीसाय एतो मम लेणे वस—

५. तानं चातुदीसस भिखुसघस मुखाहारो भविसति

एपि० इं० खं० ८ नं० १५ पृ० ७८।

## नासिक गुहाभिलेख ( स )

भाषा : प्राकृत मिश्रित संस्कृत

लिपि : ब्राह्मी तिथि : ( ११९-२४ ई० )

१. सीधं [ ॥ ] राजो क्षहरातस क्षत्रपस नहपानस दीहि

२. तु [दीनीक पुत्रस उषवदातस कुडुंबिनिय दखमित्राय देयधम ओवरको [ ॥ ]

एंपि० इं० खं ७ नं० ११ पृ० ८११ ।

## नासिक गुहाभिलेख ( द )

भाषा : प्राकृत मिश्रित संस्कृत

लिपि : ब्राह्मी तिथि ( ११९-२४ ई० )

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh


१. सिद्धम् राजो क्षहरातस क्षत्रपस नहपान-
२. स दहितु दीनीक पुत्रस उषवदातस
३. कुडुंबिनिय दखमित्राय देयधंमं ओवर को

एपि० इं० खं० ८ नं० १३ पृ० ८५।

## नासिक गुहाभिलेख ( घ )

भाषा : प्राकृत मिश्रित संस्कृत

लिपि : ब्राह्मी तिथि : ( ११९-२४ ई० )

१. ....टस क्षत्रपस नहपानस जामा—
२. ....शकस उषवदातस नेत्यकेसु
३. ....चेचिंञे दाहनूकानगर केकापुरे
४. ....ए अनुगामिम्हि उजेनिय साखाय
५. ....तो ब्राह्मणा भुजते सतसाह—
६. ....वता ब्राह्मणानं गवां सतस
७. ....भगवता देवान ब्राह्मणानं च दता
८. ....चेत्रसुधे पनरस क्षहरा—
९. ....गवां ? त सहस्रदेन उप—
१०. ....नदीये वणासया द—
११. ...सुवण तिथ चे जयते तस
१२. .....

एपि० इं० खं० ८ नं० १४ ( अ ) पृ० ८५-८६।

## १३

## कार्ले-गुहाभिलेख ( अ )

भाषा : प्राकृत

लिपि : ब्राह्मी तिथि : ( ११९-२४ ई० )

१. सिधं [ ॥ ] रजो खहरातस खतपस नहपानस जा [ म ] तरा [ दीनीक ]-पूतेन उसभदातेन ति

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

२. गो सतसहस [ दे ] ण नदिया बणासाया [ सु ] वण [ ति ] थकरेन ( देवतान ) ब्रह्मणन च सोडस गा—
३. म-दे ( न ) पभासे पूत-तिथे ब्रह्मणाण, अठ-भाया-प ( देन ) [ अ ] नुवासं पितु सतसहसं भो—
४. जपयित वलूरकेसु लेण-वासिनं पवजितानं चातुदिसस सघस
५. यापणथ गामो [ क ] रजिको दतो स [ वा ] न [ वा ] स वासि तानं

एपि० इं० खं० ७ नं० १३ पृ० ५७।

## कार्ले गुहाभिलेख ( ब )

भाषा : प्राकृत
लिपि : ब्राह्मी तिथि : ( ११६-२४ ई० )

१. धेनुकाकटा उसभदत पुतस मितदे—
२. वणकस थमो दानं

एपि० इं० खं० ७ नं० ११ पृ० ५६।

## १४
## जुन्नर गुहाभिलेख

भाषा : प्राकृत
लिपि : ब्राह्मी तिथि : ४६ ( १२४ ई० )

१. [ राज्ञो ] महाखतपस सामि-नहपानस
२. [ आ ] मतस वछ-सगोतस अयमस
३. [ दे ] [ यधम ] च [ पो ] ढि मटपो च पुत्रथय वासे ४००६ कतो [ ॥ ]

आर्के० सर्वे वे० इं० खण्ड ४ पृ० १०३।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh


# चष्टन-वंश के अभिलेख

## १५

## अन्दउ प्रस्तर लेख

भाषा : प्राकृत मिश्रित संस्कृत

लिपि : ब्राह्मी तिथिः ५२ ( १३० ई० )

( १ )

१. [ राज्ञो ] [ चाष्ट ] नस ष्सामोतिकपुत्रस राज्ञो रुद्रदामस जयदाम पुत्रस

२. व [ र्षे ] द्विप [ ं ] चाशे [ ५० ] २ फगुण बहुलस द ( द्वि ) तिय व २ मदनेन सीहिल पुत्रेन [ भ ] गिनिये जेष्टवीराये

३. [ सी ] हि [ ल-धि ] त जोपशति सा गोत्राय लष्टि उथापित

( २ )

१. राज्ञो च [ ा ] ष्टनस ष्सामोतिक-

२. पु [ त्र ] स राज्ञो ( रु ) द्रदामस

३. जयदाम पुत्रस वर्षे द्वि-पं-

४. [ चा ] शे ५० २ फगुण बहुलस

५. द्वितियं व २ ऋषभदेवस

६. सीहिल-पुत्रस ओपशति-स-गोत्रस

७. भ्रात्र [ ा ] मदनेन [ सीहि ] ल पुत्रेन

८. लष्टि उथापित

( ३ )

१. राज्ञो चाष्टनस ष्सामोतिक-पुत्रस राज्ञो रुद्रदामस जयदाम-पुत्रस वर्षे द्वि-पंचाशे ५० २

२. फगुण बहुलस द्वितिय वा २ यशदताये सीहमित धीता शेनिक ( शिनिक ) - सगोत्राण शामणेरिये

३. मदनेन सीहिल-पुत्रेन कुटुबिनिये [ लष्टि ] उथापिता

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh



१. राज्ञो क्षाष्टनस य्सामोतिक पु [ त्रस ] [ राज्ञो ] रु [ फामस ] जयदाम

२. पुत्र [ स ] वर्षे ५० २ फगु [ न ] बहुलस द्वितियं व २

३. ऋषभदेवस त्रेष्टदत-पुत्रस ओपशति-गोत्रस

४. पित्र [ ा ] त्रेष्टदतेन श्रामण [ ` ] रेन लष्टि उथापित

एपि० इं० खं० १६ पृ० २३-२५ ।

## १६

## रुद्रदामन प्रथम का जूनागढ़-प्रस्तर-लेख

भाषा : संस्कृत

लिपि : ब्राह्मी तिथि : ७२ ( १५० ई० )

१. सिद्धं [ । ] इदं तड़ाकं सुदर्शनं गिरिनगराद [ पि ].... [ मृत्ति ] कोपल-विस्तारा यामोच्छ्रय-निःसन्धि-बद्ध-दृढ़-सर्वपाली-कत्वा त्पर्व्वत-पा-

२. द-ग्रतिपद्धिं-सुश्लि [ ष्ट ]-[ बन्ध ]....[ वा ] जातेनाकृत्रि-मेण सेतुबन्धेनोपपन्नं सुप्रतिविहित-ग्रनाली-परीवाह-

६. मीढ़ विधानं च त्रिस्क [ न्ध ]....नादिभिरनुग्र [ है ] र्महत्यु-पचये वर्त्तते [ । ] तदिदं राज्ञो महाक्षत्रपस्य सुगृही—

४. त-नाम्न : स्वामि-क्षाष्टनस्य पौत्र [ स्य ] [ राज्ञ : क्षत्रपस्य सुगृही तानाम्न : स्वामि जयदाम्न ] : पुत्रस्य राज्ञो महाक्षत्रपस्य गुरु-भिरभ्यस्त-नाम्नो रु [ द्र ] दाम्नो वर्षे द्विसप्ततित [ मे ] ७० २

५. मार्गशीर्ष-बहुल- प्र [ ति ] [ पदि ]....सुष्टवृष्टिना पर्ज्जन्येन एकार्णवभूतायामिव पृथिव्यां कृतायां गिरेरूर्जयत : सुवर्णसिकता—

६. पलाशिनी प्रभृतीनां नदीनां अतिमात्रोद्वृत्तैर्व्वेगै : सेतुम.... [ यमा ] णानुरूप-प्रतीकारमपि गिरि-शिखर-तरु-तटाट्टालकोपत [ ल्प ] द्वार-शरणोच्छ्रय-विध्वंसिना युगनिधनसद्द—

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh


७. श-परम-घोर-वोगेन वायुना प्रमथि [ त ] सलिल-विक्षिप्त-जर्ज्जरीकृताव [ दी ][ र्ण ]....[ क्षि ] प्ताश्म-वृक्ष-गुल्म-लताप्रतानं आ नदी [ त ] लादित्युद्घाटितमासीत् [ । ] चत्वारि हस्तशतानि वीशदुत्तराव्यायतेन एतावंत्येव [ वि ] स्ती [ र्णे ] न

८. पंचसप्रति-हस्तानवगाढेन भेदेन निस्सृत-सर्व्व-तोयं मरु धन्व-कल्पमतिभृशं दु [ र्द ]..[ । ] [ स्य ] र्थे मौर्यस्य राज्ञ : चन्द्र [ गुप्तस्य ] राष्ट्रियेण [ वै ] श्येन पुष्यगुप्तेन कारितं अशोकस्य मौर्यस्य [ कृ ] ते यवनराजेन तु [ षा ] स्फेनाधिष्ठाय

९. प्रण [ ा ] लीभिरल [ ं ] कृतं ] [ । ] [ त ] त्कारित [ या ] च राजानुरुप कृत-विधानया तस्मिं [ मे ] दे दृष्टया प्रनाड्या वि [ स्तृ ] त से [ तु ]....णा आ गर्भात्प्रभृत्यवि [ ह ] तसमुदि [ वरा ] जलक्ष्मी-धारणा-गुणतस्सर्व्व-वणैरभिगम्य रक्षणार्थं पतित्वे वृतेन [ आ ] प्राणोच्छासात्पुरुषव धनिवृत्ति-कृत—

१०. सत्यप्रतिज्ञेन अन्य [ त्र ] संग्रामेष्वभिमुखागत-सदृश-शत्रु-प्रहरण-वितरणत्वा विगुण-रि [ पु ]....त-कारुव्येन स्वयमभिगजतन-पद-प्रणिपति [ ता ] [ यु ] प-शरणदेन दस्यु-व्याल-मृग-रोगादिभिरनुपसृष्टपूर्व्व-नगर-निगम—

११. जनपदानां स्ववीर्य्यर्जितानामनुरक्त-सर्व्व-प्रकृतीनां पूर्व्वापराक रावन्त्यनूपनी-वृदानर्त्त-सुराष्ट्र-श्व [ भ्र मरु-कच्छ-सिन्धु-सौवी ] र- कुकुरापरां-निषादा-दीनां समग्राणां तत्प्रभावाद्य [ थावत्श्रास्त-धर्मार्थ ]-काम-विषयाणां विषयाणां पतिना सर्व्वक्षत्रविष्कृत—

१२. वीर-शब्द-जा [ तो ] त्सेकाविधेयानां यौधेयानां प्रसह्योत्सादकेन दक्षिणापथ-पतेस्सातकर्णेर्द्विरपि-नीर्व्याजमवजीव्यावजीत्य संबंधा [ वि ] दूर [ त ] या अनुत्सादनात्प्राप्त-यशसा [ वाद ].... [ प्राप्त ] विजयेन भ्रष्टराज-प्रतिष्ठापकेन यथार्त्थ-हस्तो

१३. च्छ्रयार्जित-धर्मानुरागेन-शब्दार्थ-गान्धर्व्व-न्यायाद्यानां विद्यानां महतीनां पारण-धारण विज्ञान-प्रयोगावाप्त-विपुल-कीर्त्तिना तुरग-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

गज-रथचर्य्यासि-चर्म-नियुद्धद्य....ति परबल-लाघव-सौष्टव-क्रियेण अहरहर्दान-मानान—

१४. वमान-शीलेन स्थूललक्षेण यथावत्प्रदेयबलिशुल्कभागै : कानक-रजत-वज्र-वैडूर्य-रत्नोपचय-विष्यन्दमान-कोशेन स्फुट लघु-मधुर-चित्र-कान्त-शब्दसमयोदारा-लंकृत-गद्य-पद्य- [ काव्य-विधान-प्रवीणे ] न प्रमाण-मानोन्मान-स्वर-गति-वर्ण-सारसत्वादिभिः

१५. परम-लक्षण-व्यंजनैरुपेत-कान्त-मूर्त्तिना स्वयमधिगत-महाक्षत्रप-नाम्ना नरेंद्र क [ न्या ] स्वयंबरानेक-माल्यं-प्राप्त-दाम्न [ ा ] महाक्षत्रपेण रुद्रदाम्ना वर्षसहस्राय गो-ब्रा [ ह्म ] [ ण ].... [ र्थं ] धर्म्माकीर्त्तिवृद्धत्रर्थं च अपीडपि [ त्व ] कर-विष्टि-

१६. प्रणयक्रियाभिः पौरजानपदं जनं स्वस्मात्कोशा महता धनौघेन अनतिमहता च कालेन त्रिगुण-दृढतर-विस्तारामं सेतुं विद्या [ य-स ] र्व्वत [ टे ]....[ सु ] दर्शन-तरं कारितमिति [ । ] [अस्मि] न्नर्त्थे

१७. [ च ] महा [ क्ष ] त्रप [ स्य ] मतिसचिव-कर्मसचिवैरमात्य-गुण-समद्युक्तैरप्यतिमहत्वाडेदस्यानुत्साह विमुख मतिभि [ : ] प्रत्याख्यातंरभ [ . ]

१८. पुनः—सेतुबन्ध-नैराश्यादुद्विग्नाभूतासु प्रजासु इहाधिष्ठाने पौर-जानपदजना-नुग्रहार्थं पार्थिवेन कृत्स्नानामानर्त्त-सुराष्ट्रानां पाल-नार्त्थनियुक्तेन

१९. पहलवेन-कुलैप-पुत्रेणामात्येन-सुविशाखेन यथावदर्थं धर्म-व्यवहार-दर्शनैरनुरागमभिवर्द्धयता शक्तेन दान्तेनाचपलेनाविस्मितेनार्य्य-णहार्य्येण

२०. स्वधितिष्ठता धम-कीर्त्ति-यशांसि भर्तुरभिवर्द्धयतानुष्ठित [भि] ति

एपि० इं० खं० ८ पृ० ४२ ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh


## १७

## जीवदामन प्रथम का जूनागढ़ लेख

भाषा : संस्कृत

लिपि : ब्राह्मी तिथि : १०० ( १७८ ई० )

१. ....[ च ] त्रपस्य स्व [ ा ] मि जीवदामस्य एताय पूर्व्वाय वर्ष [ ा ] १००....

२. ....[ व ] स्त्रदत्तस्य वास्तुन [ म् ] दिकस्य व [ स्तु ] शर्म्म-कस्य रामकस्य पुत्र [ ा ]....

एपि० इं० खं० १८ पृ० ३४० ।

## १८

## रुद्रसिंह प्रथम का गुण्डा-लेख

भाषा : प्राकृत मिश्रित संस्कृत

लिपि : ब्राह्मी तिथि : १०३ ( १८१ ई० )

१. सिद्ध [ . ] रज्ञो महक्षत्र [ पस् ] य स्वमि चाष्टन प्रपौत्रस्य राज्ञो क्षत्रपस्य स्वमि जयदाम पौत्रस्य

२. ( स्य ) राज् [ ज्ञो ] महक्षत्रपस्य स्व [ ा ] मि-रुद्रदाम पुत्रस्य राज्ञो क्षत्रपस्य स्वामि रुद्र

३. सीहस्य [ व ] र्षे [ त्र् ] युत्तरशते १०० ३ वैशाख शुद्धे पञ्चम [ मि ] धत्य तिथौ रो [ हि ] णि नक्ष

४. त्र- मुहूर्त्त आभीरेण सेनापति बापकस्य पुत्रेण सेनापति-रुद्रम [ भू ] तिना ग्रामे रसो

५. [ प ] द्रिये वा [ पी ] [ ख ] नि [ तो ] [ बद्ध ] ापितश्च सर्व्व-सत्वानां हित सुखार्थमिति

एपि० इं० खं० १६ पृ० २३५ ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

## १९

## जयदामन के पौत्र का जूनागढ़-प्रस्तर लेख

भाषा : संस्कृत

लिपि : ब्राह्मी तिथि : अज्ञात्

१. ....स्तथा सुरगणेन [ क्षत्रा ] णां प्रथ [ म ]....

२. ....चाष्टनस्य प्र [ पौ ] त्रस्य राज्ञः क्ष [ त्रप ] स्य-स्वामि-जयदाम [ पौ ] त्रस्य राज्ञो म [ हाक्ष ]....

३. [ चैत्र ] शुक्लस्य दिवसे पंचमें ५ ३ [ ह ] गिरिनगरे देवासुर-नाग-य [ क्ष ] - रा [ क्ष ] से....

४. ....तथा [ पु ] रमिव....केवलि-[ ज्ञा ] न-सं ( प्राप्ता ) नां.... जरा....मरण

एपि० इं० खं० १६ पृ० २४१ ।

## २०

## रुद्रसेन प्रथम-गरहा ( जस्डन ) प्रस्तर-लेख

भाषा : प्राकृत मिश्रित संस्कृत

लिपि : ब्राह्मी तिथि : १२७ ( २०५ ई० )

१. [ व ] र्षे १०० २० [ ७ ] [ भा ] द्रपद-बहुलस ५ र [ ा ] ज्ञो महक्ष [ त्र ] पस

२. भद्रमुखस स्वम् ( स्वामि ) चाष्टनपुत्रपपौत्रस्य राज्ञो क्ष [ त्र ] पस

३. स्वामि जय [ दा ] म-पुत्र-पौत्रस्य राज्ञो मह-क्षत्रपस्य भद्र मुखस्य

४. [ स्व म रुद् [ द्र ] दाम पौ [ त्र ] स्य राज्ञो म [ ह ] क्ष [ त्र ] पस्य भद्र-मुख्स्य स्वा [ म ] ि

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh


रुद्रसीह [ पुत्र ] स्य राज्ञो महत्त्रपस्य स्वामि रुद्रसेनस्य इदम् शत्रं

६. मानस-स-गोत् [ त्र ] स्य प्र [ ता ] शक-पुत्रस्य खर [ र ] पत्थस्य भात्रभि : उत्थवित [ ं ] स्व [ र्ग ]

७.....

एपि० इं० खं० १६ पृ० २३८ ।

## २१

## स्वामि जीवदामन का कानखेरा-लेख

भाषा : प्राकृत मिश्रित संस्कृत

लिपि : ब्राह्मी तिथि : २०१ ( २७९ ई० )

१. सिद्धं ॥ भगवतस्त्रिदश् गण-सेनापतेरजितसेनस्य स्वामि महासेन महातेज....सादित्यवीर्य्य जीवदाम....

२. धर्म्मविजयेन शकनन्दपुत्रेण महादण्डनायकेन शकेन श्रीधरव [ र्म्म ] णा वर्म्म....स्रा [ श्रि ] स्वराज्याभिवृद्धिकरे वेजयि के स [ ं ] वत्सरे त्रयोशम [ ं ]

३. श्रवण-बहुलस्य दशमी- पूर्व्वकमतद्दिवसं कल्याणाभ्युदय-वृद्धय-र्थमक्षयस्वर्गावातिमेतद्धर्म्मयशोर्थं धर्म्मासिसंबुद्धया-श्राद्ध....

४. शाखाते चतु : सत्य....तुकोयम्....इ....मापि....कापि ( ज ) च म सलिल : सर्व्वाधिगम्य : सदा

५. सत्वाना [ ं ] प्रिय-दर्शनो जल-निधिर्द्धर्म्मामल :....गत :.... प्य्....प्राच्य्

६. कू [ प : ] श्री धरवर्म्मणा गुणवता खानापितोयं शुभ : २००१....स्....स्तु....

एपि० इं० खं० १६ पृ० २३२ ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

## २२

## रुद्रसेन का मूलवासार-प्रस्तर लेख

भाषा : प्राकृत मिश्रित संस्कृत
लिपि : ब्राह्मी तिथिः ( ३१० ई० )

१. राज्ञो महाक्षत्रस [ स्य ] सा [ स्वा ] मि रुद्रसेनस्य
२. वर्षे २३२ [ १२२ ] वैशाख बहुल पंचम्यां
३. इमं....वानिजकस्य पुत्रेण
४. प्रति जिवितं दत्तं थ [ स्व ] मित्रे [ त्राय ] हि जि [ नि ] जस् [ स्य ]....

प्राकृत एण्ड संस्कृत इंस्क्रृप्शन्स आफ काठियावाड़, पृ० २३ ।

## २३

## बसाढ़—मिट्टी की मुद्रा

भाषा : संस्कृत
लिपि : ब्राह्मी तिथि : अज्ञात

राज्ञो महाक्षत्रपस्य स्वामी—रुद्रसिंहस्य दुहितु राज्ञो महाक्षत्रपस्य स्वामी—रुद्रसेनस्य भगिन्या महादेव्या प्रभुदमाया :

आर्के० रि० १९१३-१४ नं० २४८ पृ० १३६ ।

## २४

## महाक्षत्रप भद्दिदम के प्रपौत्र के काल का मेत्रसा-प्रस्तर लेख

भाषा : संस्कृत
लिपि : ब्राह्मी तिथि : ( ३७८ ई० )

१. सिद्धम् [ इ ] राज्ञो महाक्षप्र [ त्र ] पस्य स्वामि चष्टण
२. पुत्रपुपुत्रस्य राज्ञो महाक्षत्रपस्य भद्दिदम
३. पुत्रपुपुत्रस्य राज्ञो महाक्षपस्य वर्षशत
४. त्र्युत्तर के वसपुत्रस्य प्रलदपुपुत्रस्य आभिरस्य
५. हरिहोवकसगोत्रस्य वसुराकस्य गुत्थज्जदुहितुस्य
६. कार्तिकस्य शु ५ राज्ज्येश्वरस्य भर्तुर तट्टि प्रष्टापि
७. ..... भवनम् च..... ...

प्रोसीडिंग्स फिफ्थ इंडियन ओरियंटल कान्फरेंस खं० १ पृ०५६५ ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

# परिशिष्ट

## शक-तिथिक्रम :

शक अभिलेखों में प्रयुक्त तिथियों को हम किसी एक संवत् में नहीं रख सकते। सबसे पहले हम खरोष्ठी अभिलेखों में प्रयुक्त तिथियों का ही वर्णन करेंगे। रैप्सन, टार्न, मार्शल आदि उद्भट विद्वानों के मतानुसार खरोष्ठी अभिलेखों के काल का आरंभ १५० ई० पू० के आस पास रहा होगा।[१] परन्तु लूँजा ने सभी खरोष्ठी अभिलेखों को एक ही काल में वर्णित किया है, जबकि अन्य विद्वान खरोष्ठी अभिलेखों के संबंध में दो कालों का वर्णन करते हैं। लूँजा के अनुसार खरोष्ठी अभिलेखों के काल का प्रारंभ १२६ ई० पू० से हुआ, जब यूहची जाति ने बाख्त्री पर विजय प्राप्त की। इस विदुषी के अनुसार ये यूहची और कोई नहीं शक रहे होंगे। किन्तु यूहची जाति शक जाति से भिन्न थी।[२] इस प्रकार इस महिला का यह सोचना कि ये यूहयी 'शक' रहे होंगे गलत है, और इसका भी कोई प्रमाण नहीं है कि इन यूहचियों ने बाख्त्री को जीता ही होगा[३] (ई० पू० १६२—१२८ के लगभग)।[४]

इस प्रकार एक समस्या को हल करते समय लूँजा कई समस्याओं को जन्म देती है। यदि उसके सिद्धान्त को मान भी लिया जाय तो कई

---

१. कै० हि० इं० पृ० ५७०; टार्न० पृ ४६४; मार्शल, तक्षशिला, पृ० ४५।
२. लूँजा, सी० पी० इं० हि० पृ० ६४—६५।
३. डा० अवधकिशोर नारायन, दि इण्डो ग्रीक्स, पृ० १४३।
४. वही।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा। सर्वप्रथम और विकट समस्या जो हमारे सामने उपस्थित होती है, वह है शक-पहलव राजाओं का क्रम। उनके अनुसार अय प्रथम, अयलिशिष और अय द्वितीय ये सब एक ही व्यक्ति के विभिन्न नाम थे। उसी प्रकार स्पलिरिस और स्पलिराइसेस भी एक ही व्यक्ति के दो नाम हैं। उनका यह कहना बुद्धि को कुण्ठित करना है। इसी प्रकार वे मथुरा के राजाओं को तथा दखन के क्षत्रप नहपान को माउस के पूर्व सोचने को बाध्य करती हैं, जो कि सर्वथा असंभव है तथा हास्यास्यद है।[१]

रैप्सन, टार्न, मार्शल आदि विद्वानों के कथित मत को ही मान कर हम शहदौर, मैरा, तक्षशिला ताम्र-पत्रादि, शकों के प्राचीनतम भारतीय क्षेत्र में प्राप्त, अभिलेखों का काल निर्धारण करेंगे। शकों का सबसे प्राचीन अभिलेख उस क्षेत्र में पाया गया है जहाँ यवन शासक राज्य करते थे।[२] और यह स्पष्ट हो चुका है कि यूनानी शासकों में मिलिन्द महान् शासक था, जिसने संभवत : एक संवत् भी चलाया था। उसका काल-निर्धारण १५५ ई० पू० किया गया है।[३] यूनानी महीनों का प्रयोग (शकों तथा उनके बाद के शासकों में) यह प्रमाणित करता है कि उनके पूर्वज किसी संवत् का प्रयोग करते थे। तक्षशिला ताम्रपत्र में पनेमस (ग्रीक महीना) का उल्लेख हुआ है[४]।

मिलिन्द ने किसी संवत् को चलाया था इसका पता बजौर अभिलेख से चलता है—"मिनद्रस महरजस कटिअस दिवस ४४४११ प्र (ए) (स) में (द)....।"[५]

---

१. बी० एस० ओ० ए० सो० १९५३ पृ० ८२१—८४।
२. डा० नारायन, दि इण्डोग्रीक्स, पृ० १४४।
३. वही, पृ० ७७।
४. एपि० इं ४।५५।
५. वही, २४।१-८।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इस प्रकार शहदौर, मैरा और तक्षशिला ताम्रपत्रादि अभिलेखों का काल ९५, ९७ और ७७ ई० पू० निर्धारित होता है। शक संवत् के संबंध में डा० अवधकिशोर नारायन; अध्यक्ष प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व, भारती महाविद्यालय, काशी विश्व-विद्यालय, का मत उल्लेखनीय है। उनके अनुसार "शकों ने अपना संवत् तब चलाया जब उन्होंने अपने प्रथम राज्य की स्थापना की— अर्थात् इली की घाटी से निकलने के पश्चात ही, ईसवी पूर्व १५५ में। चाहे जो हो, पर जो संवत् चलाया गया, वह ईसवी पूर्व १५५ में ही चलाया गया होगा। एक ही समय में दो संवत् के चलाने के कारण हमें बाध्य हो कर पहले को मानना पड़ता है जो कि 'यवन संवत्' के नाम से प्रचलित है, जिसको मिलिंद ने चलाया था।"[१]

सिंध-पंजाब एवं पश्चिमोत्तर भारत के बाद शकों का दूसरा कुल मथुरा का था। मथुरा के शक-कुल के बारे में पर्याप्त प्रकाश 'मथुरा सिंह शीर्ष लेख' डालता है। इस लेख से इस कुल के क्रम का पता चलता है। लूँजा के अनुसार यह लेख अमोहिनी अपागयट्ट से प्राचीन है।[२] लूडर ने इस लेख पर खुदे अंक को ७२ पढ़ा था। बूलर ने उसको ४२ पढ़ा है। रैप्सन ने भी उसको ४२ ही पढ़ा।[३] इस प्रकार अमोहिनी अयागपट्ट के काल का विषय विवादग्रस्त बन गया। मथुरा सिंह शीर्ष लेख अमोहिनी लेख से प्राचीन है इसका निष्कर्ष सरलता से निकाला जा सकता है। अमोहिनी लेख में शोडास को महाक्षत्रप कहा गया है जबकि मथुरा सिंह शीर्ष लेख में उसे केवल क्षत्रप कहा गया है।

मथुरा अभिलेख से पता चलता है कि मथुरा क्षत्रपी का पहला

---

१. डा० नारायन, दि इण्डोग्रीक्स, पृ० १४४।
२. सी० पी० इं० हि० पृ० ३३४।
३. कै० हि० इं० १।५१९।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh


राजा राजुबुल था। यह महाक्षत्रप शोडास का पिता था। राजुल के बाद उसका पुत्र उत्तराधिकारी हुआ। पिता की मृत्यु के बाद ही वह महाक्षत्रप बना होगा। मथुरा सिंह शीर्ष लेख में वह सिर्फ़ क्षत्रप कहा गया है। अर्थात् पिता के मातहत युवराज की हैसियत से शासन में सहायता करता था। उसी लेख में पडिक महाक्षप कहा गया है जब कि तक्षशिला ताम्रपत्र उसके महाक्षत्रप के संबंध में सर्वथा मूक है।[1]

यहाँ संवत् का पचड़ा पुनः उठ खड़ा होता है। यदि रैप्सन के मतानुसार विक्रम संवत में इसे हम निर्दिष्ट माने तो शोडास का काल ५८-४२ = १७-१६ ई० पू० होता है[2]। अमोहिनी लेख से मथुरा सिंह शीर्ष लेख प्राचीन कहा गया है। यदि मथुरा लेख को अमोहिनी लेख से ६ वर्ष प्राचीन मान लें तो मथुरा अभिलेख का २२-२१ ई० पू० काल-निर्धारित हो जाता है। स्तेन कोनो ने भी इस अंक को विक्रम संवत् में निर्दिष्ट माना है।[3]

यदि अमोहिनी लेख के ७२ को मानकर उसको विक्रम संवत् में न डालकर यवन संवत् में, ई० पू० १५५, रखें तो कुछ कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा। पहला तो यही कि तक्षशिला ताम्रपत्र का काल हमें ७८ मालूम है और मथुरा सिंह शीर्ष लेख में पतिक को महाक्षत्रप कहा गया है जबकि तक्षशिला से वह अपने पिता के साथ शासन करता हुआ मिलता है अर्थात सिर्फ क्षत्रप था। और यह ज्ञात है कि अमोहिनी लेख मथुरा सिंह शीर्ष लेख से प्राचीन है, तो क्या पतिक ( महादानपति ) तक्षशिला ताम्रपत्र से भी पहले एकबार महाक्षत्रप रह चुका होगा और बाद में क्या अपने पद से वह च्युत कर दिया गया ! क्योंकि तक्षशिला ताम्रपत्र में उसको केवल क्षत्रप उपाधि से अभिहित किया गया है। यह ठीक नहीं जँचता। और फिर इस

---

१. एपि० इं० ६।१४१।
२. कै० हि० इं० १।५१६।
३. एपि० इं० १४।१३६-४१।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh



प्रकार की घटना शक-इतिहास में कहीं घटित हुई नहीं मिलती। अत-एव अमोहिनी अयागपट्ट और मथुरा सिंह शीर्ष लेख विक्रम संवत् में ही रहे होंगे और अमोहिनी लेख का अंक संभवतः ४२ ही रहा होगा। इससे पतिक के शासन की तिथि भी मालूम हो जाती है,[1] जिसका कि ठीक-ठीक पता नहीं चल पाया था। उसने लगभग ५० वर्षों तक शासन किया।

इस प्रकार जब तक शक यवन-प्रभाव में रहे उन्होंने यवनों का अनुकरण किया और ज्यों-ज्यों वे भारतीय होते गए, भारतियों का अनुकरण करते गए। मथुरा में आकर उन्होंने भारतीय संवत् क अपनाया और कालान्तर में ७८ ईसवी से चलाए हुए 'शक संवत' को अपनाया। महाराष्ट्र के क्षहरातों, उज्जयिनी और काठिया-वाड़ के महाक्षत्रपों के लेख इसी संवत के हैं।

●

१. कै० हि० इं० १।५१६।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

# सहायक ग्रन्थ-सूची

## १. संस्कृत एवं प्राकृत ग्रन्थ

पाणिनि का अष्टाध्यायी
पतंजलि का महाभाष्य
युगपुराण
कालकाचार्य कथानक

## २. क्लासिकल ग्रन्थ ( यवन )

हेरोडोटस, अनु० रालिसन
जस्टिन, अनु० वाट्सन
पेरिप्लस आफ दि रीप्रियन सी, अनु० मैक्रिंडल
( इंडियन ऐंटिक्वेटी खण्ड ८ )

## ३. अंग्रेजी ग्रन्थ

कैंब्रिज हिस्ट्री आफ इंडिया
अर्ली हिस्ट्री आफ इंडिया, स्मिथ ।
ग्रीक इन बैक्ट्रिया एण्ड इंडिया, टार्न ।
तक्षशिला, मार्शल ।
कार्पस इन्स्क्रिप्शन इण्डिकेरम, खण्ड २,३।
ऐंसेंट हिस्ट्री आफ दकन, अनु० दीक्षितार
सीथियन पीरियड आफ इंडियन हिस्ट्री, लूँजा
सिलेक्ट इंस्क्रिप्शन्स बियरिंग आन इंडियन हिस्ट्री एण्ड सिविलाइ-जेशन, दिनेशचंद्र सरकार ।
हिस्ट्री आफ इंडियन एण्ड इण्डोनेशियन आर्ट, कुमारस्वामी
हिस्ट्री आफ इंडियन एण्ड ईस्टर्न आर्किटेक्चर, फरगूसन

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh



दि इण्डो-ग्रीक्स, डा० अवधकिशोर नारायन ।
ऐंसेंट इंडिया, टी० एल०शाह
दि शकास इन इंडिया, श्री सत्यश्रव
दि " " " डा० सुधाकर चट्टोपाध्याय
विक्रमादित्य आफ उज्जयिनी, डा० राजबली पाण्डेय
दि इंडियन पैलियोग्राफी, डा० " " "
दि एज आफ इंपीरियल यूनिटी ।
ए न्यू हिस्ट्री आफ इंडियन पीपुल ।

( ख )

आउट लाइन्स आफ महायन बुद्धिज्म, डा० टी० सुजुकी
दि सेंट्रल फिलासफी आफ 'बुद्धिज्म, डा० टी० आर० वी० मूर्ति
मथुरा म्यूजियम कैटलाग, फोगल
कैटलाग आफ दि क्वायंस आफ दि आंध्र डाइनेस्टी
वैस्टर्न क्षत्रप आदि, रैप्सन
क्वायंस आफ दि इण्डो-सीथियन, कनिंघम
दि कंप्रिहेंसिप हिस्ट्री आफ इंडिया, खण्ड २.
बनाया होर्ड, डा० अल्तेकर
पोजीशन आफ वीमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन, डा० अल्तेकर
इकोनामिक हिस्ट्री आफ ऐंसेंट इंडिया, एस० के० दास
कारपोरेट लाइफ इन ऐंसेंट इंडिया आर० सी० मजूमदार
सिलेक्शंस फ्राम संस्कृत इंस्क्रृप्शंस, डी० वी० डिस्काल्कर
हिस्ट्री आफ धर्मशास्त्र, पी० वी० काणे
वैश्नविज्म, शैविज्म एंड अदर माइनर देलिजस सिस्टम,
आर० जी० भंडारकर
स्टोरी आफ कालक, नार्मन बाउन
हिस्ट्री आफ इंडियन फिलासफी-सु० ना० दासगुप्त

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh



## ४. हिन्दी ग्रन्थ

प्राचीन भारत का इतिहास, डा० रमाशंकर त्रिपाठी
" " " " ' डा० भगवतशरण उपाध्याय
पाणिनिकालीन भारतवर्ष, 'डा० वासुदेवशरण अग्रवाल
हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास, प्रथम खण्ड
भारतीय समाज का ऐतिहासिक विश्लेषण, डा० भगवतशरण उपाध्याय
संस्कृत साहित्य का इतिहास, पं० बलदेव उपाध्याय
बौद्ध दर्शन तथा अन्य भारतीय दर्शन, भरतसिंह उपध्याय
हिन्दू-परिवार-मीमांसा, श्री हरिदत्त वेदालंकार
हिंदू-राजतंत्र, काशीप्रसाद जायसवाल.
भारतीय इतिहास की मीमांसा, जयचन्द्र विद्यालंकार
प्राचीन भारतीय शासन-पद्धति, डा० अल्तेकर
जैन-दर्शन, न्या० न्या० मुनि श्री न्यायविजय जी
शैवमत— डा० यदुवंशी
भागवत संप्रदाय, पं० बलदेव उपाध्याय.

## ५. शोध संबंधी पत्रिकायें

( क ) अंग्रेजी :

इंडियन एंटिक्वेटी
एपिग्राफिया इंडिका
जनरल रायल एशियाटिक सोसाइटी
जनरल बांबे ब्रांच आफ रायल एशियाटिक सोसाइटी
मेमायर्स आफ दि आर्केलाजिकल सर्वे इंडिया

( ग )

मेमायर्स आफ दि आर्केलाजिकल सर्वे एन्युअल रिपोर्ट
जनर र उड़ीसा रिसर्च सोसाइटी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

न्यूमिसमेटिक क्रानिकल
जनरल उत्तर प्रदेश हिस्टारिकल सोसाइटी
आर्केलाजिकल सर्वे आफ वेस्टर्न इंडिया
इंडियन हिस्टारिकल क्वाटर्ली
प्रोसीडिंग्स आफ दि इंडियन हिस्टारिकल कांग्रेस

( ख ) हिन्दी :

विक्रम-स्मृति-ग्रन्थ ( ग्वालि र
नागरी प्रचारिणी पत्रिका ( विक्रम स्मृति-अङ्क )
विक्रमादित्य : संवत्-प्रवर्तक ( डॉ० राजबली पाण्डेय )

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh



जे० के० आर्ट प्रेस, ( खुल्दाबाद गुरुद्वारा ) इलाहाबाद-१